# निवेदन ।

धरणगांवनिवासी सेठ झूमकराम भगवानसा दिगम्बरी जैन ओसवाल, आजसे चारवर्ष पहिले ( वी. सं. २४४३ ) आठसौ रुपये प्रदान कर संस्थाके दानी सहायक हुये थे । यह रकम उन्होंने अपने मृत्युसमय ज्ञानावरणीय कर्मक्षयार्थ जिनवाणीके प्रचारार्थ निकाली थी । तदनुसार "तत्त्वज्ञानतरंगिणी" ग्रंथ प्रकाशित किया गया और उसकी आई न्यौछावरसे आज यह दूसरा ग्रन्थ सुलभजैनग्रंथमालामें निकाला जाता है ।

संस्थामें दान दिये गये द्रव्यसे दाताकी इच्छानुसार ग्रंथ प्रकाशित कर लागत मात्र न्यौछावरसे सर्वसाधारणको दिये जाते हैं और उनका मूल द्रव्य उठ जानेपर दूसरा ग्रन्थ छपाया जाता है ।

इसप्रकार एक बार दान देकर सैकडों वर्षोंतक अपनी व अपने पूर्वजोंकी कीर्तिको जीवित रखनेवाले श्रीमानोंको संस्थाके दानी सहायक हो अपना कल्याण करना चाहिये ।

मंत्री.

# प्रस्तावना.

## ( प्रथम संस्करण )

पाठक महाशय ! हमारी इच्छा थी कि मूल ग्रन्थकर्त्ताका जीवन चरित्र यथाशक्ति संग्रह करके प्रकाशित किया जाय परंतु यथासाध्य अन्वेषण करनेपर भी ग्रन्थकर्त्ताका कुछ भी तथ्य संग्रह नहिं हुवा. विशेष खेदकी बात यह है कि स्वामिकार्त्तिकेय मुनिमहाराज कौनसी शताब्दीमें हुए सो भी निर्णय नहिं हुवा यद्यपि दंतकथापरसे प्रसिद्ध है कि ये आचार्यवर्य विक्रम संवतसे दो तीनसौ वर्ष पहिले हुये हैं. परंतु जबतक कोई प्रमाण न मिले इस दंतकथापर विश्वास नहिं किया जा सकता. आचार्योंकी कई पट्टावली भी देखी गई उनमें भी इनका नाम कहीं पर भी दृष्टिगोचर नहिं हुवा किंतु इस ग्रंथकी गाथा ३९४ की संस्कृत टीका वा भाषा टीकामें इतना अवश्य लिखा हुवा मिला कि–" स्वामिकार्त्तिकेय मुनि क्रौंचराजाकृत उपसर्ग जीति देवलोक पाया " परंतु क्रौंचराजा कब हुवा और यह वाक्य कौनसे ग्रंथके आधारसे टीकाकारने लिखा है सो हमको मिला नहीं. एक मित्रने कहा कि इनकी कथा किसी न किसी कथाकोषमें मिलेगी. परंतु प्रस्तुत समयतक कोई भी कथाकोष हमारे देखनेमें नहिं आया परंतु इसमें कोई संदेह नहीं कि ये स्वामिकार्त्तिकेय दो हजार वर्षसे पहिले हो गये हैं. क्योंकि इस ग्रन्थकी प्राकृत भाषा [illegible] [illegible] श्री [illegible] आचार्योंके बने प्राकृत ग्रन्थोंसे मिलती [illegible] है [illegible] [illegible] हुई. क्योंकि आधुनिक प्राकृतभाषाके व्याकरणोंसे भी इस ग्रन्थके शब्दप्रयोगोंकी सिद्धि बहुत कम मिलती है. इसकारण [illegible] [illegible] इस ग्रंथके [illegible] प्राचीन प्रतियोंके [illegible] [illegible] नहीं हुआ है ।

इस ग्रन्थमें मूल गाथा ४८९ हैं जिनमें मुमुक्षुजनोंके लिये प्रायः आवश्यकीय सब ही विषय संक्षिप्त स्पष्टतया वर्णन किये गये हैं. परन्तु मुख्यतया इसमें संसारके दुःख दिखाकर वैराग्यमें स्थिर होनेका उपदेश है, इसकारण समस्त विषय द्वादश अनुप्रेक्षाके कथनमें ही गर्भित करके वर्णन किये गये हैं. मानो गागरमें सागर भर दिया गया है।

इस ग्रंथपर एक टीका तो वैद्यक ग्रंथके कर्ता जगत्प्रसिद्ध दिगंबरजै-नाचार्य वाग्भट विरचित है. जिसका उल्लेख पिटर्सनसाहब तथा बूलरसा-हब की किसी रिपोर्टमें किया गया है. उसके आदि अन्तके श्लोक छपे हुये एकबार हमारे देखनेमें आये थे। दूसरी टीका—पद्मनंदी आचार्यके पट्ट-पर सुशोभित त्रैविद्यविद्याधरषड्भाषाकविचक्रवर्त्ति भट्टारक शुभचन्द्राचार्य सागवाडा पट्टाधीशकृत है. जिसमें अनेक प्राचीन जैनग्रंथोंके प्रमाणोंसे ७००० श्लोकोंमें विस्तृतव्याख्या की है. तीसरे—किसी महाशयने प्राकृत पदोंकी संस्कृत छाया लिखी है. इसके सिवाय एक प्राचीन गुर्जर भाषामि-श्रित टिप्पणिग्रन्थ भी प्राप्त हुवा है. इन्हीं सब ग्रंथोंपरसे मूल, तथा जय-चन्द्रजीकी दो वचनिकापरसे शुद्ध करके मुद्रणयंत्रद्वारा इस ग्रंथकी सुलभ प्राप्ति की गयी है. मूलपाठमें जहां कहीं पाठान्तर था, कहीं २ टिप्पणीमें दिखाया गया है तथा संस्कृत टीकाकी प्रतिका पाठ शुद्ध समझकर वही पाठ रक्खा गया है।

यद्यपि हमारे कई मित्रोंकी सम्मति थी कि जयचन्द्रकृत वचनिका ( भाषाटीका ) ढुंढाडीभाषामिश्रित पुराने ढंगकी है. इसको वर्तमानकी प्रचलित हिंदीभाषामें परिवर्तन करके छापना उचित है. परन्तु हमने ऐसा नहि किया, कारण जैनियोंका जो कुछ हिंदी साहित्य—धर्मशास्त्र, पार-लौकिक पदार्थविद्या वा अध्यात्म पुराणादिक हैं वे सब जयपुरीभाषा और

आगरेकी प्राचीन ब्रजभाषाके गद्यपद्यमें ही हैं. यदि इस प्राचीन हिंदी साहित्यको सर्व साधारणमें प्रचार नहिं करके सर्वथा आजकलकी नवीन गढी हुई भाषामें ही अनुवादके ग्रंथ छपाये जांयगे तो कहांतक अनुवाद किया जायगा क्योंकि प्रथम तो प्राचीन भाषाके ग्रंथ बहुत हैं. दूसरे-हमारी क्षुद्रजैनसमाजमें ऐसे बहुत कम विद्वान हैं जो प्राचीन हिंदी साहित्यके समस्त विषयोंके सैंकडों ग्रंथोंका नयी हिंदीमें अनुवाद कर सके हों. तीसरे ऐसा कोई समझदार धर्मात्मा धनाढ्य सहायक भी तो नहीं दीखता, जो सबसे पहिले करने योग्य जिनवाणीके जीर्णोद्धार करनेमें पुण्य वा नामवरी समझता हो. जब समस्तप्रकारके प्राचीन हिंदी जैनग्रंथोंके अनुवादपूर्वक प्रकाशित करनेका वर्तमानमें कोई साधन नहीं है और उपदेशकोंके द्वारा पाठशालायें स्थापन करनेका प्रचार बढाया जाता है तो कुछ ग्रन्थ प्राचीन भाषाके भी छापकर सर्व साधारणको इस भाषाके जानकार कर देना बहुत लाभ दायक हो सक्ता है क्योंकि नयी भाषाके ग्रन्थोंकी प्राप्ति नहीं होगी तो प्राचीन भाषाका ज्ञान होनेसे हस्तलिखित प्राचीन भाषाके ग्रंथोंकी स्वाध्याय करके ही हमारे जैनीभाई ज्ञानप्राप्ति कर सकेंगे. परंतु-यह भाषा कुछ मराठी गुजरातीकी तरह सर्वथा पृथक भी तो नहीं है ? हम जहांतक विचारते हैं तो कोई २ ठेठ ढुंढारी शब्द होने तथा द्वितीया पंचमी आदि विभक्तिव्यवहारका किंचिन्मात्र विभेदरूप होनेके सिवाय कोई भी दोष इस भाषामें दृष्टिगोचर नहिं होता. किन्तु आजकलकी नवीन हिंदी भाषामें बहुभाग लेखकगण व वंग भाषाके अनुवादकगण संस्कृत शब्दोंकी इतनी भरमार करते हैं कि इस भाषाको पश्चिमोत्तरप्रदेशके काशीप्रयागादि मुख्य २ शहरोंके सिवाय ग्रामनिवासी, मारवाडी ( राजपूतानानिवासी ) गुजराती आदि कोई भी नहीं समझ सके. ऐसा दोष इस प्राचीन जय

भाषामें नहीं है. क्योंकि यह भाषा बहुत सरल है तथा इस भाषाके हजारों ग्रंथ समस्त देशोंके बडे २ जैनमंदिरोंमें मोजूद हैं तथा बडे २ शहरों और ग्रामोंके पढे लिखे जैनी भाई नित्यशः स्वाध्याय भी करते रहते हैं. अतएव इस प्राचीन भाषाका अनादर नहिं करकें इस भाषामें ही ग्रन्थोंका छापना युक्तिसंगत समझकर इस ग्रंथको नवीन भाषामें परिवर्तन नहिं किया गया किंतु खास विद्वद्वर्य पंडित जयचन्द्रजीकी भाषामें ही छपाया है. परंतु प्रमादवशतः यत्र तत्र इस भाषासंबंधी नियमोंका पालन नहिं हुवा हो तो जयपुर निवासी विद्वद्गण क्षमाकरेंगे।

मुम्बयी　　　　जैनीभाइयोंका दास,

ता. १-१०-१९०४ ई०　　　　पन्नालाल वाकलीवाल.

## वक्तव्य।

इस ग्रंथकी पहिली आवृत्ति नहीं मिल सकनेके कारण हमने सर्व साधारणके हितार्थ यह सुलभ संस्करण कराया है। पहिले गाथाओंके नीचे छाया थी वह इस बार नहीं छपाई गई क्यों कि संस्कृतज्ञ थोडासा ही परिश्रम करनेसे गाथाओं द्वारा भी अपना प्रयोजन सिद्ध कर सक्ते हैं। संशोधनमें यथाशक्ति सावधानी रक्खी हैं पं० जयचंद्रजी कृत पीठिका और विषय सूची साथमें छपाकर पहिली त्रुटि दूर करदी गई है।

आशा है पाठक गण! इस संसारके सच्चे स्वरूपको वतलानेवाले मनकी चंचलताके निवारक ग्रन्थका स्वाध्याय कर वास्तविक शांतिका लाभ करेंगे।

मंत्री.

# विषयसूची।

वर्णन करि तिनकी संख्याका कही है ताका अल्प बहुत्व
कह्या है। बहुरि आयु कायका परिमाण कह्या है। बहुरि
अन्यवादी केई जीवका स्वरूप अन्य प्रकार मानै हैं, तिनि-
का युक्ति करि निराकरण किया है। बहुरि अंतरात्मा ब-
हिरात्मा परमात्माका वर्णन करि कह्या है—जो अंतरतत्त्व
तो जीव है अर अन्य सर्व बाह्य तत्त्व हैं। ऐसैं कहि करि
जीवनिका निरूपण समाप्त किया है। पीछै अजीवका नि-
रूपण है। तहां पुद्गल द्रव्य धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य आकाश-
काल द्रव्यका वर्णन किया है। बहुरि द्रव्यनिकै परस्पर
कारण कार्य भावका निरूपण किया है। बहुरि कह्या है
जो द्रव्य सर्व ही परिणामी द्रव्य पर्यायरूप हैं ते अनेकान्त
स्वरूप हैं। अनेकान्त विना कार्य कारण भाव नाहीं बनै
है। कारण कार्य विना काहेका द्रव्य? ऐसैं कह्या है। बहु-
रि द्रव्य पर्यायका स्वरूप कहिकरि पीछै सर्व पदार्थकूं जान-
नेवाला प्रत्यक्ष परोक्ष स्वरूप ज्ञानका वर्णन किया है। ब-
हुरि अनेकान्त वस्तुका साधनेवाला श्रुतज्ञान है, ताके भेद
नय हैं। ते वस्तुकूं अनेक धर्मस्वरूप साधै हैं तिनिका वर्णन
है। बहुरि कह्या है जो प्रमाण नयनितैं वस्तुकूं साधि मोक्ष-
मार्गकूं साधै है ऐसे तत्त्वके सुननेवाले, जाननेवाले, भाव-
नेवाले विरले हैं विषयनिकै वशीभूत होनेवाले बहुत हैं।
ऐसे कहिकरि लोकभावनाका कथन संपूर्ण किया है। बहु-
रि आगैं बोधदुर्लभानुप्रेक्षाका वर्णन अठारह गाथानिमैं
कीया है। तहां निगोदतैं लेकरि जीव अनेक पर्याय

पाया करै है। ते सर्व सुलभ हैं। अर सम्यग्ज्ञान चारित्र स्वरूप मोक्षका मार्गका पावना अति दुर्लभ है। ऐसैं कह्या है। आगैं धर्मानुप्रेक्षाका वर्णन एकसौ छत्तीस गाथामें है, तहां निवै गाथामें तो श्रावक धर्मका वर्णन है। तामैं छत्तीस गाथामें तो अविरत सम्यग्दृष्टीका वर्णन है। पीछै दोय गाथामें दर्शन प्रतिमाका, इकतालीस गाथामें व्रतप्रतिमाका, तिनमें पांच अणुव्रत तीन गुणव्रत, च्यारि शिक्षाव्रत ऐसे बारह व्रतनिका, दोय गाथामें सामायिक प्रतिमाका, छह गाथामें प्रोषध प्रतिमाका, तीन गाथामें सचित्त त्याग प्रतिमाका, दोय गाथामें अनुमति त्याग प्रतिमाका दोय गाथामें उद्दिष्ट आहार त्याग प्रतिमाका, ऐसैं ग्यारा प्रतिमाका वर्णन है। बहुरि बियालीस गाथामें मुनिके धर्मका वर्णन है। तहां रत्न त्रयकरि युक्त मुनि होय उत्तम क्षमा आदि दश लक्षण धर्मकूं पालै, तिन दश लक्षणका जुदा २ वर्णन है। पीछै अहिंसा धर्मकी बडाई वर्णन है। बहुरि फेरि कह्या है जो धर्म सेवना सो पुण्य फलके अर्थि न सेवना, मोक्षके अर्थि सेवना। बहुरि शंका आदि आठ दूषण हैं सो धर्ममें नाहीं राखणे। निशंकित आदि आठ अंग सहित धर्म सेवना, ताका जुदा जुदा वर्णन है। बहुरि धर्मका फल माहात्म्य वर्णन किया है। ऐसैं धर्मानुप्रेक्षाका वर्णन समाप्त कीया है। बहुरि आगै धर्मानुप्रेक्षाकी चूलिका स्वरूप बारह प्रकार तप है। तिनिका जुदा जुदा वर्णन है। ताकी गाथा इक्यावन हैं। बहुरि तीन गाथामें कर्ता अपना कर्तव्य प्रगटकरि अन्त मंगल करि ग्रन्थ समाप्त किया। सर्व गाथा च्यारिसैं निवै हैं ऐसें जानना।

श्रीपरमात्मने नमः

# स्वामिकार्त्तिकेयानुप्रेक्षा ।

( भाषानुवादसहित )

भाषाकारका मंगलाचरण ।

दोहा ।

प्रथम ऋषभ जिन धर्मकर, सनमति चरम जिनेश ।
विघनहरन मंगलकरन, भवतमदुरितदिनेश ॥ १ ॥
वानी जिनमुखतैं खिरी, परी गणाधिपकान ।
अक्षरपदमय विस्तरी, करहि सकल कल्यान ॥ २ ॥
गुरु गणधर गुणधर सकल, प्रचुर परंपर और ।
व्रततपधर तनुनगनतर, वंदौं वृष शिरमौर ॥ ३ ॥
स्वामिकार्त्तिकेयो मुनी, बारह भावन भाय ।
कियो कथन विस्तार करि, प्राकृतछंद बनाय ॥ ४ ॥
ताकी टीका संस्कृत, करी सुघर शुभचन्द्र ।
सुगमदेशभाषामयी, करूं नाम जयचन्द्र ॥ ५ ॥

पढहु पढावहु भव्यजन, यथाज्ञान मनधारि ।
करहु निर्जरा कर्मकी, वार वार सुविचारि ॥ ६ ॥

ऐसें देवशास्त्र गुरुको नमस्काररूप मंगलाचरणपूर्वक प्रतिज्ञा करि स्वामिकार्त्तिकेयानुप्रेक्षानामा ग्रन्थकी देशभाषामय वचनिका करिये है। तहां संस्कृत टीकाका अनुसार ले, मेरी बुद्धिसारू गाथाका संक्षेप अर्थ लिखियेगा. तामें कहीं चूक होय तौ विशेष बुद्धिमान संवार लीजियो ।

श्रीमत्स्वामिकार्त्तिकेय नामा आचार्य आपने ज्ञानवैराग्य की वृद्धि होना, नवीन श्रोता जनोंके वैराग्यका उपजना तथा विशुद्धता होनेतैं पापकर्मकी निर्जरा, पुण्यका उपजना, शिष्टाचारका पालना निर्विघ्नतैं शास्त्रकी समाप्ति होना इत्यादि अनेक भले फल चाहता संता अपने इष्टदेवको नमस्काररूप मंगलपूर्वक प्रतिज्ञाकरि गाथासूत्र कहै है—

तिहुवणतिलयं देवं, वंदित्ता तिहुअणिंदपरिपुज्जं ।
वोच्छं अणुपेहाओ, भवियजणाणंदजणणीओ ॥ १ ॥

भावार्थ—तीन भुवनका तिलक, वहुरि तीन भुवनके इंद्रनिकरि पूज्य ऐसा देव है ताहि मैं वंदिकर भव्य जीवनिकों आनन्दके उपजावनहारी अनुप्रेक्षा तिनहि कहूंगा । भावार्थ—

(१) इस जगह भाषानुवादक स्वर्गीय पं० जयचन्द्रजीने समस्त ग्रन्थकी पीठिका (कथनकी संक्षिप्त सूचनिका) लिखी है सो हमने उसको यहां न रखकर आधुनिक प्रथानुसार भूमिकामें (प्रस्तावनामें) लिखा है ।

यहां 'देव' ऐसी सामान्य संज्ञा है सो क्रीडा विजिगीषा द्युति स्तुति मोद गति कांति इत्यादि क्रिया करै ताकौं देव कहिये. तहां सामान्यविषै वो चार प्रकारके देव वा कल्पित देव भी गिनिये हैं. तिनितें न्यारा दिखानेके अर्थि 'त्रिभुवनतिलकं' ऐसा विशेषण किया तातैं अन्यदेवका व्यवच्छेद (निराकरण) भया, बहुरि तीनभुवनके तिलक इन्द्र भी हैं तिनितें न्यारा दिखावनेके अर्थि 'त्रिभुवनेंद्रपरिपूज्यं' ऐसा विशेषण किया, यातें तीन भुवनके इन्द्रनिकरि भी पूजनीक ऐसा देव है ताहि नमस्कार किया, इहां ऐसा जानना कि ऐसा देवपणा अर्हत् सिद्ध आचार्य उपाध्याय साधु इन पंच परमेष्ठीविषै ही संभवै है. जातैं परम स्वात्मजनित आनंद सहित क्रीडा, तथा कर्मके जीतने रूप विजिगीषा, स्वात्मजनित प्रकाशरूप द्युति, स्वस्वरूपकी स्तुति, स्वरूपविषै परमप्रमोद, लोकालोकव्याप्तरूप गति, शुद्धस्वरूपकी प्रवृत्तिरूप कान्ति इत्यादि देवपणाकी उत्कृष्ट क्रिया सो समस्त एकदेश वा सर्वदेशरूप इनिहीविषै पाईए है. तातें सर्वोत्कृष्ट देवपना इनिहीविषै आया, तातैं इनिकों मंगलरूप नमस्कार युक्त है. 'मं' कहिये पाप ताकों गालै तथा 'मंगं' कहिये सुख, ताकों लाति ददाति कहिये दे, ताहि मंगल कहिये. सो ऐसे देवको नमस्कार करनेतें शुभपरिणाम हो है तातें पापका नाश हो है. शांतभावरूप सुख प्राप्ति हो है, बहुरि अनुप्रेक्षाका सामान्य अर्थ वारम्वार चिंतवन करना है। तहां चिंतवन अनेक प्रकार है, ताके करनेवाले अनेक हैं, तिनितें न्यारे दि-

वनेके अर्थि 'भव्यजनानन्दजननीः' ऐसा विशेषण दिया है. तातैं भव्यजीवनिके मोक्ष होना निकट आया होय तिनिकै आनन्दकी उपजावनहारी ऐसी अनुप्रेक्षा कहूंगा । बहुरि यहां 'अनुप्रेक्षाः' ऐसा बहु वचनांत पद है सो अनुप्रेक्षा-सामान्य चिंतवन एक प्रकार है तो हू अनेक प्रकार है, तहां भव्य जीवनिको सुनते ही मोक्षमार्गविषै उत्साह उपजै, ऐसा चिंतवन संक्षेपताकरि बारह प्रकार है, तिनका नाम तथा भावनाकी प्रेरणा दोय गाथानिविषै कहै हैं ।

अद्धुव असरण भणिया संसारामेगमण्णमसुइत्तं ।
आसव संवरणामा णिज्जरलोयाणुपेहाओ ॥ २ ॥
इय जाणिऊण भावह दुल्लह धम्माणुभावणाणिच्चं ।
मणवयणकायसुद्धी एदा उद्देसदो भणिया ॥ ३ ॥

भाषार्थ—भो भव्य जीव हो ! एते अनुप्रेक्षा नाम मात्र जिनदेव कहे हैं, तिनहिं जाणकरि मनवचनकाय शुद्ध करि आगें कहेंगे तिसप्रकार निरंतर भावो. ते कौन ? अध्रुव १ अशरण २ संसार ३ एकत्व ४ अन्यत्व ५ अशुचित्व ६ आस्रव ७ संवर ८ निर्जरा ९ लोक १० दुर्लभ ११ धर्म १२ ऐसे बारह । भावार्थ—ये बारह भावनाके नाम कहे, इनका विशेष अर्थरूप कथन तो यथास्थान होयहीगा । बहुरि नाम ये सार्थक हैं, तिनिका अर्थ कहा ? अध्रुव तो अनित्यकों कहिये । जामें शरण नाहीं सो अशरण । भ्रमणकों संसार कहिये । जहां दूसरा नहीं सो एकत्व । जहां सर्वतें जुदा सो-

अन्यत्व। मलिनताकों अशुचित्व कहिये। जो कर्मका आवना सो आस्रव। कर्मका आवना रोकै सो संवर। कर्मका झरना सो निर्जरा। जामैं षट्द्रव्य पाइये सो लोक। अतिकठिनतासों पाइए सो दुर्लभ। संसारतैं उद्धार करै सो वस्तुस्वरूपादिक धर्म। इस प्रकार इनके अर्थ हैं।

—:o:—

## अथ अध्रुवानुप्रेक्षा लिख्यते.

प्रथम ही अध्रुवानुप्रेक्षाका सामान्य स्वरूप कहै हैं;—

जं किंपिवि उप्पण्णं तस्स विणासो हवेइ णियमेण।
परिणामसरूवेण वि ण य किंपिवि सासयं अत्थि ॥४॥

भावार्थ—जो कुछ उपज्या, ताका नियमकरि नाश हो है. परिणाम स्वरूपकरि कछू भी शाश्वता नाहीं है. भावार्थ सर्ववस्तु सामान्य विशेषस्वरूप हैं. तहां सामान्य तो द्रव्यको कहिये, विशेष गुणपर्यायको कहिये. सो द्रव्य करिकैं तो वस्तु नित्यही है. बहुरि गुण भी नित्यही है और पर्याय है सो अनित्य है याकों परिणाम भी कहिये सो यहु प्राणी पर्यायबुद्धि है सो पर्यायकूं उपजता विनशता देखि हर्षविषाद करै है. तथा ताकूं नित्य राख्या चाहै है सो इस अज्ञानकरि व्याकुल होय है, ताकों यहु भावना ( अनुप्रेक्षा ) चितवना युक्त है। जो मैं द्रव्यकरि शाश्वता आत्मद्रव्य हौं, बहुरि उपजै विनशै है सो पर्यायका स्वभाव है, यामैं हर्षविषाद

बनेके अर्थि 'भव्यजनानन्दजननी:' ऐसा विशेषण दिया है। तातैं भव्यजीवनिके मोक्ष होना निकट आया होय तिनिकै आनन्दकी उपजावनहारी ऐसी अनुप्रेक्षा कहूंगा। बहुरि यहां 'अनुप्रेक्षा:' ऐसा बहु वचनांत पद है सो अनुप्रेक्षा-सामान्य चिंतवन एक प्रकार है तो हू अनेक प्रकार है, तहां भव्य जीवनिको सुनते ही मोक्षमार्गविषै उत्साह उपजै, ऐसा चिंतवन संक्षेपताकरि बारह प्रकार है, तिनका नाम तथा भावनाकी प्रेरणा दोय गाथानिविषै कहै हैं।

अद्धुव असरण भणिया संसारामेगमण्णमसुइत्तं।
आसव संवरणामा णिज्जरलोयाणुपेहाओ॥ २॥
इय जाणिऊण भावह दुल्लह धम्माणुभावणाणिच्चं
मणवयणकायसुद्धी एदा उद्देसदो भणिया॥ ३॥

भाषार्थ—भो भव्य जीव हो! एते अनुप्रेक्षा नाम मात्र जिनदेव कहे हैं, तिनहिं जाणकरि मनवचनकाय शुद्ध करि आगें कहैंगे तिसप्रकार निरंतर भावो. ते कौन? अध्रुव १ अशरण २ संसार ३ एकत्व ४ अन्यत्व ५ अशुचित्व ६ आस्रव ७ संवर ८ निर्जरा ९ लोक १० दुर्लभ ११ धर्म १२ ऐसे बारह। भावार्थ—ये बारह भावनाके नाम कहे, इनका विशेष अर्थरूप कथन तो यथास्थान होयहीगा। बहुरि नाम ये सार्थक हैं, तिनिका अर्थ कहा? अध्रुव तो अनित्यकों कहिये। जामें शरण नाहीं सो अशरण। भ्रमणकों संसार कहिये। जहां दूसरा नहीं सो एकत्व। जहां सर्वतें जुदा सो

अन्यत्व । मलिनताकों अशुचित्व कहिये । जो कर्मका आवना सो आस्रव । कर्मका आवना रोकै सो संवर । कर्मका झरना सो निर्जरा । जामैं षद्द्रव्य पाइये सो लोक । अतिकठिनतासों पाइए सो दुर्लभ । संसारतैं उद्धार करै सो वस्तुस्वरूपादिक धर्म । इस प्रकार इनके अर्थ हैं ।

—:०:—

## अथ अध्रुवानुप्रेक्षा लिख्यते.

प्रथम ही अध्रुवानुप्रेक्षाका सामान्य स्वरूप कहे हैं,—

जं किंपिवि उप्पण्णं तस्स विणासो हवेइ णियमेण ।
परिणामसरूवेण वि ण य किंपिवि सासयं अत्थि ॥४॥

भावार्थ—जो कुछ उपज्या, ताका नियमकरि नाश होइ है. परिणाम स्वरूपकरि कछू भी शाश्वता नाहीं है. भावार्थ सर्ववस्तु सामान्य विशेषस्वरूप हैं. तहां सामान्य तो द्रव्यको कहिये, विशेष गुणपर्यायको कहिये. सो द्रव्य करिकैं तो वस्तु नित्यही है. बहुरि गुन भी नित्यही है और पर्याय है सो अनित्य है याकों परिणाम भी कहिये सो यहु प्राणी पर्यायबुद्धि है सो पर्यायकूं उपजता विनशता देखि हर्षविषाद करै है. तथा ताहूं नित्य राख्या चाहै है सो इस अज्ञानकरि व्याकुल होय है, ताकों यहु भावना ( अनुप्रेक्षा ) चितवना युक्त है । जो मैं द्रव्यकरि शाश्वता आत्मद्रव्य हौं, बहुरि उपजै विनशै है सो पर्यायका स्वभाव है, यामैं हर्ष

वनेके अर्थि 'भव्यजनानन्दजननी:' ऐसा विशेषण दिया है तातैं भव्यजीवनिके मोक्ष होना निकट आया होय तिनिकैं आनन्दकी उपजावनहारी ऐसी अनुप्रेक्षा कहूंगा । वहुरि यहां 'अनुप्रेक्षा:' ऐसा बहु वचनांत पद है सो अनुप्रेक्षा-सामान्य चिंतवन एक प्रकार है तो हू अनेक प्रकार है, तहां भव्य जीवनिको सुनते ही मोक्षमार्गविषै उत्साह उपजै, ऐसा चिंतवन संक्षेपताकरि बारह प्रकार है, तिनका नाम तथा भावनाकी प्रेरणा दोय गाथानिविषै कहै हैं । -

अद्धुव असरण भणिया संसारामेगमण्णमसुइत्तं ।
आसव संवरणामा णिज्जरलोयाणुपेहाओ ॥ २ ॥
इय जाणिऊण भावह दुल्लह धम्माणुभावणाणिच्चं ।
मणवयणकायसुद्धी एदा उद्देसदो भणिया ॥ ३ ॥

भाषार्थ-भो भव्य जीव हो ! एते अनुप्रेक्षा नाम मात्र जिनदेव कहे हैं, तिनहि जाणकरि मनवचनकाय शुद्ध करि आगें कहेंगे तिसप्रकार निरंतर भावो. ते कौन ? अध्रुव १ अशरण २ संसार ३ एकत्व ४ अन्यत्व ५ अशुचित्व ६ आस्रव ७ संवर ८ निर्जरा ९ लोक १० दुर्लभ ११ धर्म १२ ऐसे बारह । भावार्थ-ये बारह भावनाके नाम कहे, इनका विशेष अर्थरूप कथन तो यथास्थान होयहीगा । बहुरि नाम ये सार्थक हैं, तिनिका अर्थ कहा ? अध्रुव तौ अनित्यकों कहिये । जामें शरण नाहीं सो अशरण । भ्रमणकों संसार कहिये । जहां दूसरा नहीं सो एकत्व । जहां सर्वतें जुदा सो-

अन्यत्व। मलिनताकों अशुचित्व कहिये। जो कर्मका आवना सो आस्रव। कर्मका आवना रोकै सो संवर। कर्मका झरना सो निर्जरा। जामें षट्द्रव्य पाइये सो लोक। अतिकठिनता-सों पाइए सो दुर्लभ। संसारतैं उद्धार करै सों वस्तुस्वरूपा-दिक धर्म। इस प्रकार इनके अर्थ हैं।

——:o:——

## अथ अध्रुवानुप्रेक्षा लिख्यते.

प्रथम ही अध्रुवानुप्रेक्षाका सामान्य स्वरूप कहै हैं,—

जं किंपिवि उप्पण्णं तस्स विणासो हवेइ णियमेण।
परिणामसरूवेण वि ण य किंपिवि सासयं अत्थि॥४॥

भाषार्थ—जो कुछ उपज्या, ताका नियमकरि नाश हो है. परिणाम स्वरूपकरि कछू भी शाश्वता नाहीं है. भावार्थ सर्ववस्तु सामान्य विशेषस्वरूप हैं. तहां सामान्य तो द्रव्यको कहिये, विशेष गुणपर्यायको कहिये. सो द्रव्य करिकैं तो वस्तु नित्यही है. बहुरि गुण भी नित्यही है और पर्याय है सो अ-नित्य है याकों परिणाम भी कहिये सो यहु प्राणी पर्याय-बुद्धि है सो पर्यायकूं उपजता विनशता देखि हर्षविषाद करै है. तथा ताकूं नित्य राख्या चाहै है सो इस अज्ञानकरि व्या-कुल होय है, ताकों यहु भावना (अनुप्रेक्षा) चिंतवना युक्त है। जो मैं द्रव्यकरि शाश्वता आत्मद्रव्य हौं, उपजै विनशै है सो पर्यायका स्वभाव है, यामें

कहा ? शरीर है सो जीव पुद्गलका संयोगजनित पर्याय है. धन धान्यादिक हैं ते पुद्गलके परमाणूनिके स्कन्धपर्याय हैं. सो इनकै मिलना विछुरना नियमकरि अवश्य है. थिरकी बुद्धि करै है सो यहु मोहजनित भाव है. तातैं वस्तु स्वरूप जानि हर्ष विषादादिकरूप न होना ।

आगें इसहीको विशेषकरि कहै हैं,—

जम्मं मरणेण समं संपज्जइ जुव्वणं जरासहियं ।
लच्छी विणाससहिया इयसव्वं भंगुरं मुणह ॥ ५ ॥

भाषार्थ—भो भव्य हो ! यह जन्म है सो तौ मरणकरि सहित है, यौवन है सो जराकर सहित उपजै है, लक्ष्मी है सो विनाश सहित उपजै है, ऐसें ही सर्व वस्तु क्षणभंगुर जानहु. भावार्थ—जेती अवस्था जगतमें हैं, तेती सर्व प्रतिपक्षी भावको लिये हैं. यह प्राणी जन्म होय तब तो ताकूं थिर मानि हर्ष करै है. मरण होय तब गया मानि शोक करै है. ऐसें ही इष्टकी प्राप्तिमें हर्ष, अप्राप्तिमें विषाद, तथा अनिष्टकी प्राप्तिमें विषाद, अप्राप्तिमें हर्ष करै है. सो यह मोहका माहात्म्य है. ज्ञानीनिकों समभावरूप रहना ।

अथिरं परियणसयणं पुत्तकलत्तं सुमित्त लावण्णं ।
गिहगोहणाइ सव्वं णवघणविंदेण सारित्थं ॥ ६ ॥

भाषार्थ— जैसे नवीन मेघके बादल तत्काल उदय होकर विलाय जांय, तैसें ही या संसारविषै परिवार बन्धुवर्ग

पुत्र, स्त्री, भले मित्र, शरीरकी सुन्दरता, गृह, गोधन इत्यादि समस्त वस्तु अथिर हैं। भावार्थ- ये सर्व वस्तु अथिर जानिकरि हर्ष विषाद नहिं करना।

सुरधणुतडिव्वचवला इंदियविसया सुभिच्चवग्गा य।
दिट्ठपणट्ठा सव्वे तुरयगयरहवरादीया ॥ ७ ॥

भावार्थ- या जगतविषै इन्द्रियनके विषय हैं ते इन्द्रधनुष तथा विजलीके चमत्कारवत् चंचल हैं पहिली दीसैं पीछें तुरत विलाय जाय हैं बहुरि तैसे ही भले चाकरनिके समूह हैं बहुरि तैसे ही भले घोडे हस्ती रथ हैं ऐसे सर्व ही वस्तु हैं. भावार्थ- यह प्राणी श्रेष्ठ इन्द्रियनके विषय भले चाकर घोडे हाथी रथादिक की प्राप्ति करि सुख मानै है. सो ये सारे क्षणविनश्वर हैं. अविनाशी सुखका उपाय करना ही योग्य है।

आगे बन्धुजनका संगम कैसा है सो दृष्टांतद्वारकरि कहै हैं-

पंथे पहियजणाणं जह संजोओ हवेइ खणमित्तं।
बंधुजणाणं च तहा संजोओ अद्धुओ होइ ॥ ८ ॥

भावार्थ- जैसें मार्गविषै पथिक जननिका संयोग क्षण मात्र है तैसें ही संसारविषै बन्धुजननिका संयोग अथिर है।

भावार्थ- यह प्राणी बहुत कुटुम्ब परिवार पावै, तब अभिमान करि सुख मानै है. या मदकरि निजस्वरूप भूलै है, सो यह बन्धुवर्गका संयोग मार्गके पथिकजन

रिखा है शीघ्र ही बिछुरै है. तातैं संतुष्ट होय याकूं न भूलना.

आगे देहसंयोगकूं अथिर दिखावै हैं—

अल्लालिओ वि देहो ण्हाणसुयंधेहिं विविहभक्खेहिं
खणमित्तेण वि विहडइ जलभरिओ आमघडओ व्व॥

भावार्थ- देखो यह देह स्नान तथा सुगन्ध वस्तुनि करि संवारया हुवा भी तथा अनेक प्रकार भोजनादि भक्ष्यनिकरि पाल्या हुआ भी जलका भरया कचा घडाकी नाईं क्षणमात्रमें विघट जाय है। भावार्थ- ऐसे शरीरविषै स्थिरबुद्धि करना बडी भूल है।

आगे लक्ष्मीका अस्थिरपणा दिखावै हैं—

जा सासया ण लच्छी चक्कहराणं पि पुण्णवंताणं।
सा किं बंधेइ रइं इयरजणाणं अपुण्णाणं॥ १०॥

भापार्थ- जो लक्ष्मी कहिये संपदा पुण्यकर्मके उदय सहित जे चक्रवर्ति तिनकैं भी शाश्वती नाही तौ अन्य जे पुण्यउदयरहित तथा अल्प पुण्यसहित जे पुरुष हैं तिनसहित कैसें राग बांधै ?-अपि तु नाही बांधै. भावार्थ- या संपदाका अभिमानकरि यहु प्राणी प्रीति करै है सो वृथा है।

आगे याही अर्थको विशेष करि कहै हैं,—

ण रमइ लच्छी कुलीणधीरे वि पंडिए सूरे।

पुज्जे धम्मिट्ठे वि य सुरूवसुयणे महासत्ते ॥ ११ ॥

भावार्थ– यह लक्ष्मी संपदा कुलवान धैर्यवान पंडित सुभट पूज्य धर्मात्मा रूपवान सुजन महापराक्रमी इत्यादि काहू पुरुषनिविषैहू नाहीं राचै है. भावार्थ– कोई जानेगा कि मैं बडा कुलका हूं, मेरे बडांकी संपदा है, कहां जाती है तथा मैं धीरजवान हौं कैसै गमाऊंगा. तथा पंडित हौं, विद्यावान हौं, मेरी कौन ले है. मोकूं देहीगा तथा मैं सुभट हूं कैसे काहूको लेने द्योंगा. तथा मैं पूजनीक हूं मेरी कौन ले है. तथा मैं धर्मात्मा हों, धर्मतैं तो आवै, छती कहा जाय है. तथा मैं बडा रूपवान हौं, मेरा रूप देखि ही जगत प्रसन्न है, संपदा कहां जाय है. तथा मैं सुजन हों परका उपकारी हों, कहां जायगी; तथा मैं बडा पराक्रमी हों, संपदा बधाऊंगा, छती कहां जाने द्योंगा; सो यह सर्व विचार मिथ्या है. यह संपदा देखते देखते विलय जाय है. काहूकी राखी रहती नाहीं।

आगे कहै हैं जो लक्ष्मी पाई ताकौं कहा करिये सोई कहिये है,—

ता भुंजिज्जउ लच्छी दिज्जउ दाणं दयापहाणेण ।
जो जलतरंगचवला दोतिण्णिदिणाणि चिट्ठेइ ॥ १२ ॥

भावार्थ—यह लक्ष्मी जलतरंगवत् चंचल है। सो तीन दिन तांई चेष्टा करै है, विनसै है, ...

भोगमें न खर्ची, तानै मनुष्यपणा पाय कहा किया, निष्फल ही खोया, आपा ठगाया।

जो संचिऊण लच्छिं धरणियले संठवेदि अइदूरे।

सो पुरिसो तं लच्छिं पाहाणसमाणियं कुणइ ॥ १४॥

भापार्थ-जो पुरुष अपनी लक्ष्मीको अति ऊंडी पृथिवी तलमें गाडै है, सो पुरुष उस लक्ष्मीको पाषाणसमान करै है। भावार्थ-जैसें हवेलीकी नीवमें पाषाण धरिये है। तैसें याने लक्ष्मी गाडी तब पाषाणतुल्य भई।

अणवरयं जो संचदि लच्छिं ण य देदि णेय भुंजेदि

अप्पाणिया वि य लच्छी परलच्छिसमाणिया तस्स ॥

भापार्थ-जो पुरुष लक्ष्मीको निरन्तर संचय करै है, न दान करै है, न भोगवै है, सो पुरुष अपनी लक्ष्मीको परकी समान करै है। भावार्थ—लक्ष्मी पाय दान भोग न करै है, ताकै वह लक्ष्मी परकी है। आप रखवाला ( चौकी-दार है ) है, लक्ष्मीको कोऊ अन्य ही भोगवैगा।

लच्छीसंसत्तमणो जो अप्पाणं धरेदि कट्ठेण।

सो राइदाइयाणं कज्जं साहेदि मूढप्पा ॥ १६ ॥

भावार्थ-जो पुरुष लक्ष्मीविषै आसक्त चित्त हुआ संता अपने आत्माको कष्टसहित राखै है, सो मूढात्मा राजादि-कका कुटुम्बादिका कार्य साधै है। भावार्थ- लक्ष्मीके

आसक्तचित्त होयकरि याके उपजावनेके अर्थि तथा रक्षाके अर्थ अनेक कष्ट सहै है, सो वा पुरुषके केवल कष्ट ही फल होय है। लक्ष्मी कौं तो कुटुंब भोगवैगा, कै राजा लेगा।

जो वड्ढारइ लच्छि वहुविहवुद्धीहिं णेय तिप्पेदि।
सव्वारंभं कुव्वदि रत्तिदिणं तंपि चिंतवदि ॥ १७ ॥
ण य भुंजदि वेलाए चिंतावत्थो ण सुयदि रयणीये।
सो दासत्तं कुव्वदि विमोहिदो लच्छितरुणीए ॥१८॥

भाषार्थ– जो पुरुष अनेक प्रकार कला चतुराई बुद्धि करि लक्ष्मीने वधावै है, तृप्त न होय है, याके वास्ते असि· मसि कृष्यादिक सर्वारंभ करै है, रातिदिन याहीके आरम्भ को चिंतवै है, वेला भोजन न करै है, चितामें तिष्ठता हुवा रात्रि विषै सोवै नाहीं है सो पुरुष लक्ष्मीरूपी स्त्रीका मोह्या हुवा ताका किंकरपणा करै है, भावार्थ– जो स्त्रीका किंकर होय ताकों लोकविषै 'मोहल्या' ऐसा निंद्यनाम कहै हैं, जो पुरुष निरन्तर लक्ष्मीके निमित्त ही प्रयास करै है सो लक्ष्मीरूपी स्त्रीका मोहल्या है।

आगें जो लक्ष्मीको धर्म कार्यमें लगावै ताकी प्रशंसा

लच्छिं अणवरयं देहिधम्मकज्जेसु।
धुव्वदि तस्स वि सहला हवे लच्छी ॥१९॥
जो पुरुष पुण्यके उदय करि वधती जो लक्ष्मी

ताहि निरन्तर धर्म कार्यनिविषैं दे है सो पुरुष पंडितनिकरि स्तुति करने योग्य है. बहुरि ताहीकी लक्ष्मी सफल है. भावार्थ—लक्ष्मी पूजा प्रतिष्ठा, यात्रा, पात्रदान, परका उपकार इत्यादि धर्मकार्यविषै खरची हुई ही सफल है, पंडितजन भी ताकी प्रशंसा करै हैं।

एवं जो जाणित्ता विहलियलोयाण धम्मजुत्ताणं।
णिरवेक्खो तं देहि हु तस्स हवे जीवियं सहलं॥२०॥

भाषार्थ—जो पुरुष पहिले कह्या ताको जाणि धर्मयुक्त जे निर्धन लोक हैं, तिनके अर्थि प्रति उपकारकी वांछासों रहित हूवा तिस लक्ष्मीको दे है, ताका जीवन सफल है। भावार्थ—अपना प्रयोजन साधनेके अर्थि तो दान देनेवाले जगतमें बहुत हैं. बहुरि जे प्रतिउपकारकी वांछारहित धर्मात्मा तथा दुःखी दरिद्र पुरुषनिको धन दे हैं, ऐसे विरले हैं उनका जीवितव्य सफल है।

आगें मोहका माहात्म्य दिखावै हैं—

जलबुब्बयसारित्थं धणजुब्वणजीवियं पि पेच्छंता।
मण्णंति तो वि णिच्चं अइवलिओ मोहमाहप्पो॥२१॥

भाषार्थ—यह प्राणी धन यौवन जीवनको, जलके बुद्बुदासारिखे तुरत विलाय जाते देखते संते भी नित्य मानै है सो यह हू बडा अचिरज है. यह मोहका माहात्म्य बडा वान है. भावार्थ—वस्तुका स्वरूप अन्यथा जनावनेको

-चना ज्वरादिक रोग नेत्रविकार अन्धकार इत्यादि अनेक कारण हैं, परन्तु यह मोह सवतैं बलवान है, जो प्रत्यक्ष विनाशीक वस्तुको देखै है, तो हू नित्य ही मनावै है. तथा मिथ्यात्व काम क्रोध शोक इत्यादिक हैं ते सब मोहहीके भेद हैं. ए सर्व ही वस्तु स्वरूपविषै अन्यथा बुद्धि करावै हैं।

आगें या कथनको संकोचै हैं—

चइऊण महामोहं विसऐ सुणिऊण भंगुरे सव्वे।
णिव्विसयं कुणह मणं जेण सुहं उत्तमं लहइ ॥२२॥

भाषार्थ-भो भव्य जीव हो ! तुम समस्त विषयनिकूं विनाशीक सुणकरि, महा मोह को छोडकरि, अपने मनकूं विषयनितैं रहित करिहू, जातैं उत्तम सुखको पावो. भावार्थ-पूर्वोक्त प्रकार संसार देह भोग लक्ष्मी इत्यादिक अथिर दिखाये तिनकूं सुणिकरि अपना मनकूं विषयनितैं छुडाय अथिर भावैगा सो भव्य जीव सिद्धपदके सुखकों पावैगा।

—:-०-:—

## अथ अशरणानुप्रेक्षा लिख्यते.

तत्थ भवे किं सरणं जत्थ सुरिंदाण दीसये विलओ।
हरिहरबंभादीया कालेण कवलिया जत्थ ॥ २३ ॥

भाषार्थ-जिस संसारविषै देवनिके इन्द्रनिका विनाश देखिये है वहुरि जहां हरि कहिये नारायण, हर कहिये रुद्र, ब्रह्मा कहिये विधाता आदि शब्द कर वडे २ पदवीधारक

सर्वही कालकरि ग्रसे, तिस संसारविषै कहा शरणा होय ? किछू भी न होय. भावार्थ—शरणा ताकूं कहिये जहां अपनी रक्षा होय, सो संसारमें जिनका शरणा विचारिये ते ही काल-पाय नष्ट होय हैं. तहां काहेका शरणा ?

आगें याका दृष्टान्त कहै हैं,—

सिंहस्स कमे पडिदं सारंगं जह ण रक्खदे को वि।
तह मिच्चुणा य गहियं जीवं पि ण रक्खदे को वि॥

भावार्थ—जैसें वनविषै सिंहके पगतलें पड्या जो हिरण, ताहि कोऊ भी राखनेवाला नाहीं, तैसें या संसारमें काल-करि ग्रह्या जो प्राणी, ताहि कोउ भी राखि सकै नाहीं. भावार्थ—उद्यानमें सिंह मृगकूं पगतलें दे, तहां कौन राखै ? तैसें ही यहू कालका दृष्टांत जानना।

आगें याही अर्थकूं दृढ़ करै हैं,—

जइ देवो वि य रक्खइ मंतो तंतो य खेत्तपालो य।
मियमाणं पि मणुस्सं तो मणुया अक्खया होंति २५

भावार्थ—जो मरणकूं प्राप्त होते मनुष्यकूं कोई देव मंत्र तंत्र क्षेत्रपाल उपलक्षणतें लोक जिनकूं रक्षक मानै, सो सर्वही राखनेवाले होंय तो मनुष्य अक्षय होंय. कोई भी नाहीं. भावार्थ—लोक जीवनेके निमित्त देवपूजा मं ओषधी आदि अनेक उपाय करै है परंतु निश्चय वि

चना ज्वरादिक रोग नेत्रविकार अन्धकार इत्यादि अनेक कारण हैं, परन्तु यह मोह सबतैं बलवान है, जो प्रत्यक्ष विनाशीक वस्तुको देखै है, तो हू नित्य ही मनावै है. तथा मिथ्यात्व काम क्रोध शोक इत्यादिक हैं ते सब मोहहीके भेद हैं. ए सर्व ही वस्तु स्वरूपविषै अन्यथा बुद्धि करावै हैं।

आगें या कथनको संकोचै हैं—

चइऊण महामोहं विसऐ सुणिऊण भंगुरे सव्वे ।
णिव्विसयं कुणह मणं जेण सुहं उत्तमं लहइ ॥२२॥

भावार्थ-भो भव्य जीव हो ! तुम समस्त विषयनिकूं विनाशीक सुणकरि, महा मोह को छोडकरि, अपने मनकूं विषयनितैं रहित करिहू, जातैं उत्तम सुखको पावो. भावार्थ-पूर्वोक्त प्रकार संसार देह भोग लक्ष्मी इत्यादिक अथिर दिखाये तिनकूं सुणिकरि अपना मनकूं विषयनितैं छुडाय अथिर आवैगा सो भव्य जीव सिद्धपदके सुखकों पावैगा।

—:-०-:—

## अथ अशरणानुप्रेक्षा लिख्यते.

तत्थ भवे किं सरणं जत्थ सुरिंदाण दीसये विलओ ।
हरिहरबंभादीया कालेण कवलिया जत्थ ॥ २३ ॥

भावार्थ-जिस संसारविषै देवनिके इन्द्रनिका विनाश देखिये है बहुरि जहां हरि कहिये नारायण, हर कहिये रुद्र, ब्रह्मा कहिये विधाता आदि शब्द कर बडे २ पदवीधारक

तह्मा देविंदो वि य मरणाउ ण रक्खदे को वि २८

भावार्थ—जातैं आयुकर्मके क्षयतैं मरण होय है बहुरि आयु कर्म कोईकूं कोई देनेको समर्थ नाहीं, तातैं देवनका इन्द्र भी मरणतैं नाहिं राख सकै है. भावार्थ—मरणतैं आयु पूर्ण हुवा होय; बहुरि आयु कोई काहूको देने समर्थ नाहीं तब रक्षा करनेवाला कौन ? यह विचारो ।

आगें याही अर्थकूं दृढ करै हैं,—

अप्पाणं पि चवंतं जइ सक्कदि रक्खिदुं सुरिंदो वि ।
तो किं छंडदि सग्गं सव्वुत्तमभोयसंजुत्तं ॥ २९ ॥

भावार्थ—जो देवनका इन्द्रहू आपको चयता [ मरते हुये ] राखनेको समर्थ होता तो सर्वोत्तम भोगनिकरि संयुक्त जो स्वर्गका वास, ताकूं काहेको छोड़ता ? भावार्थ—सर्व भोगनिका निवास अपना वश चलते कौन छोडै ?

आगें परमार्थ शरणा दिखावै हैं—

दंसणणाणचरित्तं सरणं सेवेहि परमसद्धाए ।
अण्णं किं पि ण सरणं संसारे संसरंताणं ॥ ३० ॥

भावार्थ—हे भव्य ! तू परम श्रद्धाकरि दर्शन ज्ञान चा- [illegible]सेवन करि । या संसारविषै भ्रमते जीव- [illegible]शरण नाहीं है । भावार्थ—[illegible] [illegible]स्वरूप है [illegible] ही परमार्थरूप

वौ कोई जीवित दीसै नाहीं. वृथा ही मोहकरि विकल्प उपजावै है। आगें याही अर्थको बहुरि दृढ करै हैं,—

अइबलिओ वि रउद्दो मरणविहीणो ण दीसए को वि।
रक्खिज्जंतो वि सया रक्खपयारेहिं विविहेहिं ॥२६॥

भषार्थ–इस संसारविषै अति बलवान तथा अतिरौद्र भयानक बहुरि अनेक रक्षाके प्रकार तिनकरि निरन्तर रक्षा कीया हूवा भी मरणरहित कोई भी नाहीं दीखै है. भावार्थ– अनेक रक्षाके प्रकार गढ कोट सुभट शस्त्र आदि उपाय कीजिये परन्तु मरणतैं कोऊ बचै नाहीं। सर्व उपाय विफल जाय हैं।

आगें शरणा कल्पै ताकूं अज्ञान बतावै हैं—

एवं पेच्छंतो वि हु गहभूयपिसाय जोइणी जक्खं।
सरणं मण्णइ मूढो सुगाढमिच्छत्तभावादो॥ २७॥

भाषार्थ–ऐसैं पूर्वोक्तप्रकार अशरण प्रत्यक्ष देखताभी मूढ जन तीव्रमिथ्यात्वभावतैं सूर्यादि ग्रह भुत व्यंतर पिशाच योगिनी चंडिकादिक यक्ष मणिभद्रादिक इनहि शरणा मानै है। भावार्थ–यहु प्राणी प्रत्यक्ष जाणै है जो मरणतैं कोऊ भी राखणहारा नाहीं, तोऊ ग्रहादिकका शरण कल्पै है, सो यह तीव्रमिथ्यात्वका उदयका माहात्म्य है।

आगें मरण है सो आयुके क्षयतैं होय है यह कहै हैं—

आयुक्खयेण मरणं आउं दाऊण सक्कदे को वि।

तह्मा देविंदो वि य मरणाउ ण रक्खदे को वि २८

भावार्थ—जातैं आयुकर्मके क्षयतैं मरण होय है बहुरि आयु कर्म कोईकूं कोई देनेको समर्थ नाहीं, तातैं देवनका इन्द्र भी मरणतैं नाहिं राख सकै है. भावार्थ—मरणतैं आयु पूर्ण हुवा होय; बहुरि आयु कोई काहूको देने समर्थ नाहीं तब रक्षा करनेवाला कौन ? यह विचारो।

आगें याही अर्थकूं दृढ करैं हैं,—

अप्पाणं पि चवंतं जइ सक्कदि रक्खिदुं सुरिंदो वि।
तो किं छंडदि सग्गं सव्वुत्तमभोयसंजुत्तं ॥ २९ ॥

भावार्थ— जो देवनका इन्द्रहू आपको चवता [ मरते हुये ] राखनेको समर्थ होता तौ सर्वोत्तम भोगनिकरि संयुक्त जो स्वर्गका वास, ताकूं काहेको छोड़ता ? भावार्थ—सर्व भोगनिका निवास अपना वश चलते कौन छोडै ?

आगें परमार्थ शरणा दिखावैं हैं—

दंसणणाणचरित्तं सरणं सेवेहि परमसद्धाए।
अण्णं किं पि ण सरणं संसारे संसरंताणं ॥ ३० ॥

भावार्थ—हे भव्य ! तू परम श्रद्धाकरि दर्शन ज्ञान चारित्रस्वरूप शरणा सेवन करि। या संसारविषैं भ्रमते जीवनिकैं अन्य किछू भी शरण नाहीं है। भावार्थ—सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र अपना स्वरूप है सो ये ही परमार्थ [वास्तवमें] शरणा है। अन्य सर्व अशरण है। नि-

श्रद्धानकरि गुरु ही शरणा पकड़ो, ऐसा उपदेश है।

आगैं इसहीको दृढ़ करै हैं,—

अप्पाणं पि य सरणं खमादिभावेहिं परिणदं होदि
तिव्वकसायाविट्ठो अप्पाणं हणदि अप्पेण ॥३१॥

भाषार्थ-जो आपकूं क्षमादि दशलक्षणरूप परिणत करै, सो शरणा है। बहुरि जो तीव्रकषाययुक्त होय है सो आपकरि आपकूं हणै है। भावार्थ-परमारथ विचारिये तो आपकूं आपही राखनेवाला है, तथा आप ही घातनेवाला है। क्रोधादिरूप परिणाम करै है, तब शुद्ध चैतन्यका घात होय है। बहुरि क्षमादि परिणाम करै है, तब आपकी रक्षा होय है। इनही भावनिसों जन्ममरणतैं रहित होय अविनाशी पद प्राप्त होय है।

दोहा।

वस्तुस्वभावविचारतैं, शरण आपकूं आप।
व्यवहारे पण परमगुरु, अवर सकल संताप ॥ २ ॥

इति अशरणानुप्रेक्षा समाप्ता ॥ २ ॥

## अथ संसारानुप्रेक्षा लिख्यते।

प्रथमही दोय गाथानिकरि संसारका सामान्य स्वरूप कहै हैं,—

एक्कं चयदि सरीरं अण्णं गिण्हेदि णवणवं जीवो।
पुणु पुणु अण्णं अण्णं गिण्हदि मुंचेदि बहुवारं ॥ ३२ ॥

एक्कं जं संसरणं णाणादेहेसु हवदि जीवस्स।
सो संसारो भण्णदि मिच्छकसायेहिं जुत्तस्स॥ ३३॥

भाषार्थ--मिथ्यात्व कहिये सर्वथा एकान्तरूप वस्तुको श्रद्धना, बहुरि कषाय कहिये क्रोध मान माया लोभ इनकरि युक्त यह जीव, ताकैं जो अनेक देहनिविषै संसरण कहिये भ्रमण होय, सो संसार कहिये। सो कैसें ? सो ही कहिये है। एक शरीरकूं छोडै अन्य ग्रहण करै फेरि नवा ग्रहणकरि फेरि ताकूं छोडि अन्य ग्रहण करै ऐसें बहुतबार ग्रहण किया करै सो ही संसार है। भावार्थ-शरीरतैं अन्य शरीरकी प्राप्ति होवो करै सो संसार है।

आगें ऐसे संसारविषैं संक्षेप करि चार गति हैं तथा अनेक प्रकार दुःख हैं। तहां प्रथम ही नरकगतिविषै दुःख है, ताकूं छह गाथानिकरि कहै हैं—

पावोदयेण णरए जायदि जीवो सहेदि बहुदुक्खं।
पंचपयारं विविहं अणोवमं अण्णदुक्खेहिं॥ ३४॥

भाषार्थ-यह जीव पापके उदयकरि नरकविषै उपजै है तहां अनेकभांतिके पंचप्रकारकरि उपमातैं रहित ऐसे बहुत दुःख सहै है। भावार्थ-जो जीवनिकी हिंसा करै है, झूठ बोलै है, परधन हरै है, परनारि तकै है, बहुत आरंभ करै है, परिग्रहविषैं आशक्त होय है, बहुत क्रोधी, प्रचुर मानी, अति कपटी, अति कठोर भाषी, पापी, चुगल, कृप-

भापार्थ—जंहां तिलतिलमात्र छेदिये है वहुरि शकल कहिये खंड तिनकूंभी तिलतिलमात्र भेदिये है. वहुरि वज्राग्निविषै पचाइये है. वहुरि राधके कुंडविषै क्षेपिये है।

इच्चेवमाइदुक्खं जं णरए सहदि एयसमयम्हि।
तं सयलं वण्णेदुं ण सक्कदे सहसजीहोपि ॥ ३७॥

भापार्थ—इति कहिये ऐसें एवमादि कहिये पूर्व गाथा में कहे तिनकूं आदि दे करि जे दुःख, ते नरक विषै एक काल जीव सहै है, तिनको कहनेको जाके हजार जीभ होंय सो भी समर्थ न हो है. भावार्थ—या गाथामें नरकके दुःखनिका वचन अगोचरपणा कह्या है।

वहुरि कहै हैं नरकका क्षेत्र तथा नारकीनके परिणाम दुःखमयीही हैं।

सव्वं पि होदि णरये खित्तसहावेण दुक्खदं असुहं।
कुविदा वि सव्वकालं अण्णुण्णं होंति णेरइया॥ ३८

भापार्थ—नरकविषै क्षेत्र स्वभाव करि सर्व ही कारण दुःखदायक हैं, अशुभ हैं. वहुरि नारकी जीव सदा काल परस्पर क्रोध रूप हैं. भावार्थ—क्षेत्र तो स्वभाव कर दुःखरूप है ही. वहुरि नारकी परस्पर क्रोधी हूवा संता वह मारै, वह वाकूं मारै है. ऐसें निरंतर दुःखीही रहै हैं।

अण्णभवे जो सुयणो सो वि य णरये हणेइ ...

एवं तव्वाव ... लं विसहदे दुःखं॥

देवशास्त्रगुरुका निंदक, अधम, दुर्बुद्धि, कृतघ्नी, बहु शोक दुःख करनेहीकी प्रकृति जाकी, ऐसा होय सो जीव, मरि करि नरकविषै उपजै है, अनेक प्रकार दुःखकूं सहै है।

आगें ऊपरि कहे जे पंचप्रकार दुःख तिनकूं कहै हैं,—

असुरोदीरियदुक्खं सारीरं माणसं तहा विविहं।
खित्तुब्भुवं च तिव्वं अण्णोण्णकयं च पंचविहं॥ ३५॥

भाषार्थ—असुरकुमार देवनिकरि उपजाया दुःख, बहुरि शरीरहीकर निपज्या बहुरि मनकरि भया, तथा अनेक प्रकार क्षेत्रसों उपज्या, बहुरि परस्पर किया हुवा ऐसें पांच प्रकार दुःख हैं। भावार्थ—तीसरे नरकताईं तौ असुरकुमार देव कुतूहलमात्र जाय हैं, सो नारकीनकों देखि परस्पर लडावै हैं. अनेकप्रकार दुःखी करै हैं. बहुरि नारकीनका शरीरही पापके उदयतें स्वयमेव अनेक रोगनिसहित बुरा घिनावना दुःखमयी होय है. बहुरि चित्त जिनके महाक्रूर दुःखरूप ही होय हैं. बहुरि नरकक्षेत्र महाशीत उष्ण दुर्गन्ध अनेक उपद्रव सहित है. बहुरि परस्पर वैरके संस्कारतें छेदन भेदन मारन ताडन कुंभीपाक आदि करैं हैं. वहांका दुःख उपमारहित है।

आगें याही दुःखका विशेष कहै हैं,—

छिज्जइ तिलतिलमित्तं भिंदिज्जइ तिलतिलंतरं सयलं
वज्जग्गिए कढिज्जइ णिहिप्पए पूयकुंडह्मि॥ ३६॥

भावार्थ—जहां तिलतिलमात्र छेदिये है बहुरि शकल कहिये खंड तिनकूंभी तिलतिलमात्र भेदिये है. बहुरि वज्राग्निविषै पचाइये है. बहुरि राधके कुंडविषै क्षेपिये है।

इच्चेवमाइदुक्खं जं णरए सहदि एयसमयम्हि।
तं सयलं वण्णेदुं ण सक्कदे सहसजीहोपि ॥ ३७ ॥

भावार्थ—इति कहिये ऐसैं एवमादि कहिये पूर्व गाथामें कहे तिनकूं आदि दे करि जे दुःख, ते नरक विषै एक काल जीव सहै है, तिनको कहनेको जाकै हजार जीभ होय सो भी समर्थ न हो है. भावार्थ—या गाथामें नरकके दुःखनिका वचन अगोचरपणा कह्या है।

बहुरि कहै हैं नरकका क्षेत्र तथा नारकीनके परिणाम दुःखमयीही हैं।

सव्वं पि होदि णरये खित्तसहावेण दुक्खदं असुहं।
कुविदा वि सव्वकालं अण्णुण्णं होंति णेरइया ॥ ३८

भावार्थ—नरकविषै क्षेत्र स्वभाव करि सर्व ही कारण दुःखदायक हैं, अशुभ हैं. बहुरि नारकी जीव सदा काल परस्पर कोप रूप हैं. भावार्थ—क्षेत्र तो स्वभाव कर दुःखरूप है ही. बहुरि नारकी परस्पर क्रोधी हुवा संता वा काहूं मारै, वा वाहूं मारै है. ऐसैं निरंतर दुःखीही रहै है।

अण्णभवे जो सुयणो सो वि य णरये हणेइ अइकुविदो।
एवं तिव्वविवागं बहुकालं विसहदे दुक्खं ॥ ३९
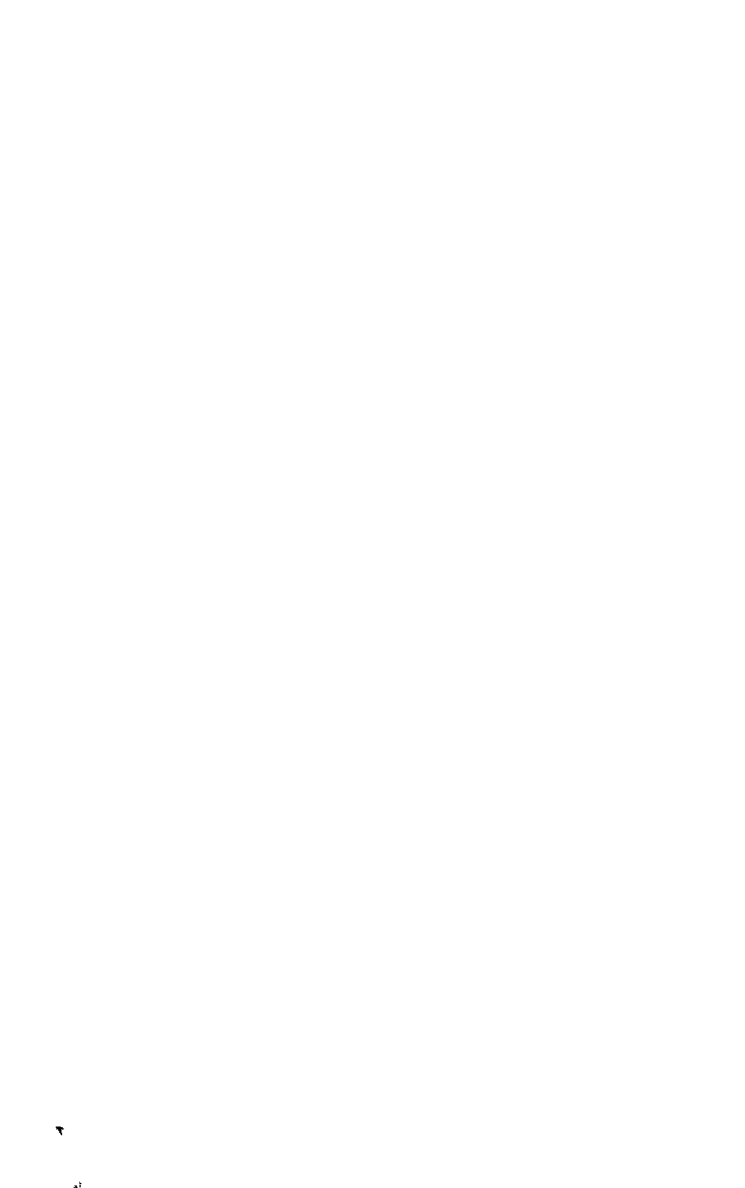
भावार्थ– जिस तिर्यंचगतिविषै जीव परस्पर खाया हुवा उत्कृष्ट दुख पावै है. वह वाकूं खाय, वह वाकूं खाय, जहां जिसके गर्भमें उपज्या ऐसी माता भी पुत्रकूं भक्षण कर जाय तौ अन्य कौन रक्षा करै ?

तिव्वतिसाए तिसिदो तिव्वविभुक्खाइ भुक्खिदो संतो
तिव्वं पावदि दुक्खं उयरहुयासेहिं डज्झंतो ॥ ४३ ॥

भावार्थ–तिस तिर्यंचगतिविषैं जीव तीव्र तृषाकरि तिसाया तीव्र क्षुधाकर भूखासंता उदराग्निकरि जलता तीव्र दुःख पावै है ।

आगें इसको संकोचै हैं,—

एवं बहुप्पयारं दुक्खं विसहेदि तिरियजोणीसु ।
तत्तो णीसरऊणं लद्धिअपुण्णो णरो होइ ॥ ४४ ॥

भावार्थ–ऐसें पूर्वोक्तप्रकार तिर्यंचयोनिविषैं जीव अनेक प्रकार दुखकूं पावै है ताहि सहै है. तिस तिर्यंचगतितैं नीसर मनुष्य होय तो कैसा होय–लब्धि अपर्याप्त, जहां पर्याप्ति पूरे ही न होय ।

अब मनुष्यगतिविषै दुःख है तिनकूं बारह गाथानिकरि कहै हैं—

सो प्रथम ही गर्भविषै उपजै ताकी अवस्था कहैं हैं—

अह गब्भे वि य जायदि तत्थ वि णिवडीकयंगप-
विसहदि तिव्वं दुक्खं णिग्गममाणो वि जोणी

भाषार्थ– अथवा गर्भविषै भी उपजै तो तहां भी भेले
ाकुचि रहे हैं हस्तपादादि अंग तथा अंगुली आदि प्रत्यंग
ाके, ऐसा हूवा संता दुख सहै है. बहुरि योनितैं नीसरता
ीव्र दुःखकूं सहै है।

बहुरि कैसा होय सो कहै हैं.—

ालोपि पियरचत्तो परउच्छिट्ठेण बड्ढदे दुहिदो।
वं जायणसीलो गमेदि कालं महादुक्खं ॥ ४६॥

भाषार्थ– गर्भतैं नीसरयां पीछै बाल अवस्थामें ही माता
ीता मर जांय तब पराई औठिकरि (उच्छिष्टसे) बध्या
ीता मागणेहीका स्वभाव जाका ऐसैं दुःखी हुवा संता
ाल गमावै है।

बहुरि कहै हैं यह पापका फल है—

ाविण जणो एसो दुक्कम्मवसेन जायदे सव्वो।
णरवि करेदि पावं ण य पुण्णं को वि अज्जेदि ॥ ४७॥

भाषार्थ–यह लोक जन सर्व ही पापके उदयतैं असाता
ेदनीय नीच गोत्र अशुभ नाम आयुः आदि दुष्कर्म ताके वशतैं
से दुःख सहै हैं. तोऊ फेरि पाप ही करै हैं. पूजा दान
त तप ध्यानादि लक्षण पुण्यको नाहीं उपजावै हैं. यह
अज्ञान है।

पुण्णं सम्मादिट्ठी वएहिं संजुत्तो।
णिंदणगरहाहि संजुत्तो ॥ ४८॥

भावार्थ—सम्यग्दृष्टि कहिये यथार्थ श्रद्धावान बहुरि मुनि श्रावकके व्रतनिकरि सहित, तथा उपशम भाव कहिये मंद कषायरूप परिणाम, तथा निंदन कहिये अपने दोष आपकी यादि करि पश्चात्ताप करना, गर्हण कहिये अपने दोष गुरुजनके निकट कहणा इनि दोऊनिकरि संयुक्त ऐसा जीव पुण्यप्रकृतिनकूं उपजावै है. सो ऐसा विरला ही है।

आगें कहै हैं पुण्ययुक्तकैं भी इष्टवियोगादि देखिये है।

पुण्णजुदस्स वि दीसइ इट्ठविओयं अणिट्ठसंजोयं।
भरहो वि साहिमाणो परिज्जओ लहुयभायेण ॥४९॥

भावार्थ—पुण्यउदयसहित पुरुषकै भी इष्टवियोग अनिष्ट संयोग देखिये है. देखो अभिमान सहित भरत चक्रवर्ती भी छोटाभाई जो बाहुबली तातैं हारयो. भावार्थ—कोऊ जानैगा कि जिनिकै बडा पुण्यका उदय है तिनिकूं तो सुख है सो संसारमैं तो सुख काहूकूं भी नाहीं. भरत चक्रवर्तीसारिखे भी अपमानादिकरि दुःखी ही भये तो औरनिकी कहा बात?

आगें याही अर्थको दृढ करै हैं—

सयलट्ठविसहजोओ बहुपुण्णस्स वि ण सव्वदो होदि।
तं पुण्णं पि ण कस्स वि सव्वं जे णिच्छिदं लहदि ५०

भावार्थ—या संसारमैं समस्त जे पदार्थ, तेई भये विषय कहिये भोग्य वस्तु, तिनिका योग बडे पुण्यवानकूं भी सर्वांगपणे नाहीं मिलै है. ऐसा पुण्य ही नाहीं है जाकरि

ही मनोवांछित मिलै. भावार्थ—बडे पुण्यवानके भी वांछित वस्तुमें किछु कमती रहै, सर्व मनोरथ तो काहूके पुरै नाहीं तब सर्व सुखी काहेतें होय?

कस्स वि णत्थि कलत्तं अहव कलत्तं ण पुत्तसंपत्ती
अह तेसिं संपत्ती तह वि सरोओ हवे देहो ॥ ५१ ॥

भाषार्थ—कोई मनुष्यके तो स्त्री नाहीं है. कोई कै स्त्री है तौ पुत्रकी प्राप्ति नाहीं है. कोई कै पुत्रकी प्राप्ति है शरीर रोगसहित है।

अह णीरोओ देहो तो धणधण्णाण णेय सम्पत्ति।
अह धणधण्णं होदि हु तो मरणं झत्ति ढुक्केइ ॥ ५२

भाषार्थ—जो कोईकै नीरोग देह भी हो तो धन धा की प्राप्ति नाहीं है. जो धन धान्यकी भी प्राप्ति हो जाय शीघ्र मरण होय जाय है।

कस्स वि दुट्ठकलित्तं कस्स वि दुव्वसणवसणिओ
कस्स वि अरिसमबंधू कस्स वि दुहिदा वि दुच्चरि

भाषार्थ—या मनुष्यभवमें कोईकै तो स्त्री दुराचा है. कोईकै पुत्र युवा आदिक व्यसनोंमें रत है, कोईकै समान कलही भाई है. कोईकै पुत्री दुराचारिणी है।

कस्स वि मरदि सुपुत्तो कस्स वि महिला विणस्स
कस्स वि अ[illegible]त्तं गिहं कुडंवं च डज्झेइ ५१

देवाणं पि य सुक्खं मणहरविसएहिं कीरदे जदि हीं
विषयवसं जं सुक्खं दुक्खस्स वि कारणं तं पि ॥६१

भापार्थ—प्रगटपणै जो देवनिकै मनोहर विषयनिकरि सुख विचारिये तौं सुख नाहीं है. जो विषयनिके आधीन सुख है सो दुःखहीका कारण है. भावार्थ—अन्य निमित्ततैं सुख मानिये सो भ्रम है, जो वस्तु सुखका कारण मानिये है सो ही वस्तु कालान्तरमें दुःखकूं कारण होय है।

आगैं ऐसैं विचार किये कहूं भी सुख नहीं ऐसा कहै हैं.

एवं सुट्ठु—असारे संसारे दुक्खसायरे घोरे।
किं कत्थ वि अत्थि सुहं वियारमाणं सुणिच्चयदो॥

भापार्थ—ऐसैं सर्व प्रकार असार जो यहु दुःखका सागर भयानक संसार, ताविषै निश्चयथकी विचार कीजिये किछू कहूं सुख है? अपि तु नाहीं है. भावार्थ—चारगतिरूपसंसार है तहां चारि ही गति दुःखरूप हैं, तब सुख कहां?

आगें कहै हैं-जो यहु जीव पर्याय बुद्धि है जिस योनिमें उपजै तहां ही सुख मानले है।

दुक्खियकम्मवसादो राया वि य असुइकीडओ होदि
तत्थेव य कुणइ रइं पेक्खह मोहस्स माहप्पं ॥६२।

भावार्थ—जो प्राणी हो तुम देखो मोहका माहात्म्य, पापके वशतें राजा भी मरकरि विष्टाका कीडा जाय उपजै है सो तहां ही रति मानै है क्रीडा करै है।

आगें कहे हैं कि या प्राणीकैं एक ही भवविषै अनेक संबंध होय हैं—

**पुत्तो वि भाओ जाओ सो विय भाओ वि देवरो होदि।**
**माया होइ सवत्ती जणणो वि य होइ भत्तारो ६४**
**एयम्मि भवे एदे संबंधी होंति एयजीवस्स ।**
**अण्णभवे किं भणइ जीवाणं धम्मराहिदाणं ६५**

भावार्थ-एक जीवकै एक भवविषै एता संबन्ध होय है तौ धर्मरहित जीवनिकै अन्य भव विषै कहा कहिये? ते संबन्ध कौन कौन? सो कहिये है. पुत्र तौ भाई हूवा बहुरि जो भाई था सो ही देवर भया. बहुरि माता थी सो सौति भई बहुरि पिता था सो भरतार हुवा. एता सम्बन्ध वसन्ततिलका वेश्याके अरु धनदेवके अरु कमलाके अरु वरुणकै हूवा तिनिकी कथा ग्रन्थान्तरतैं लिखिये है--

## एक भवमें अठारह नातेकी कथा।

मालवदेश उज्जयनीविषै राजा विश्वसेन. तहां सुदत्त नाम श्रेष्ठी वसै. सो सोलह कोटि द्रव्यको धनी. सो वसन्ततिलकानाम वेश्यासूं आशक्त होय ताहि घरमें घाली. सो गर्भवती भई. तब रोगसहित देह भई तब घरमेंसूं काढि दई. वसन्ततिलका आपके घरहीमें पुत्र पुत्रीको जुगल जायो। सो वेश्या खेद खिन्न हो, तिनि दोऊ बालकनिकूं जुदे जुदे रत्न कम्बलमें लपेटि पुत्रीको तो दक्षिण दरवाजे क्षेपी. सो प्रयागनिवासी विणजारेने लेकर अपनी स्त्रीको सौंपी.

कमला नाम धरचो । बहुरि पुत्रको उत्तर दिशाके दरवाजे खेप्यो· तहां साकेतपुरके एक सुभद्रनाम विणजारेने अपनी स्त्री सुव्रताको सौंप्यो. धनदेव ताको नाम धरचो. बहुरि पूर्वोपार्जित कर्मके वशतैं धनदेव अर कमलाके साथ विवाह हूवो. स्त्री भरतार भया. पीछें धनदेव विणज निमित्त उ-ज्जयिनी नगरी गया. तहां वसन्ततिलका वेश्यानूं लुब्ध हूवा· तब ताके संयोगतैं वसन्ततिलकाकै पुत्र हूवा, 'वरुण' नाम धरचा. बहुरि एक दिवस कमला मुनिनै सम्बन्ध पूछ्या. मुनिने याका सर्व सम्बन्ध कह्या ।

## इनका पूर्वभववर्णन.

२ । धनदेव मेरा भाई, उसकी तू स्त्री, तातैं मेरी भावज [ भौजाई ] है.

३ । तू मेरी माता, ताका भरतार धनदेव मेरा पिता भया ताकी तू माता, तातैं मेरी दादी है ।

४ । मेरा भरतार धनदेव, ताकी तू स्त्री, तातैं मेरी शौही ( सौतिन ) भी है ।

५ । धनदेव तेरा पुत्र सो मेरा भी पुत्र ( सौतीला पुत्र ) ताकी तू स्त्री, तातैं तू मेरी पुत्रवधू भी है ।

६ । मैं धनदेवकी स्त्री, तू धनदेवकी माता, तातैं तू मेरी सास भी है. याप्रकार वेश्या ६ नाते सुनकर चिन्तामें विचारतीरही, सो ही तहां धनदेव आया. ताकूं देखकर कमला बोली कि तुमारे साथ भी हमारे ६ नाते हैं सो सुणो.

१ । प्रथम तो तू और मैं इसी वेश्याके उदरसूं युगल उपज्या सो मेरा भाई है.

२ । पीछें तेरा मेरा विवाह हो गया सो तू मेरा पति है.

३ । वसन्ततिलका मेरी माता ताका तू भरतार तातैं मेरा पिता भी है ।

४ । वरुण तेरा छोटा भाई सो मेरा काका भया ताका तू पिता तातैं काकाका पिता होनेतैं मेरा तू दादा भी भया

५ । मैं वसन्त तिलकाकी सौकी-घर तू मेरी सौतीक पुत्र तातैं मेरा भी तू पुत्र है ।

६ । तू मेरा भरतार तातैं तेरी माता वेश्या मेरी सास बहुरि सासके तुम भरतार, तातैं मेरे ससुर भी भये.

* या प्रकार एक ही भवमें एक ही प्राणीके नाते भये, ताका उदाहरण कहा. यह संसारकी विडंवना है. यामें कछु भी आश्चर्य नहीं है ।

आगें पांच प्रकार संसारके नाम कहै हैं,—

संसारो पंचविहो दव्वे खत्ते तहेव काले य ।
भवभमणो य चउत्थो पंचमओ भावसंसारो

भाषार्थ—संसार कहिये परिभ्रमण सो पांच प्रक द्रव्ये कहिये पुद्गल द्रव्यविषै ग्रहणत्यजनरूप परिभ्रम रि क्षेत्रे कहिये आकाशके प्रदेशनिविषै स्पर्शनेरूप परि बहुरि काले कहिये कालके समयनिविषै उपजने रूप परिभ्रमण. बहुरि तैसें ही भव कहिये नारकादि ग्रहण त्यजनरूप परिभ्रमण बहुरि भाव कहिये अपने ययोगनिका स्थानकरूप जे भेद तिनका पलटनेरूप मण. ऐसे पंच प्रकार संसार जानना ॥ ६६ ॥ आगें स्वरूप कहै हैं । प्रथमही द्रव्य परिवर्त्तनकूं कहै हैं ।

---

* यह अठारहनातेकी कथा ग्रंथान्तरसे लिखी गई है यथा

बालय हि सुणि सुवयणं तुज्झ सरिसा हि अट्ठ दहणत्ता ।
पुत्तु भतिज्जउ भायउ देवरु पत्तिय हु पोत्तज्ज ॥ १ ॥
तुहु पियरो मुहुपियरो पियामहो तहय हवइ भत्तारो ।
भायइ तहावि पुत्तो ससुरो हवइ बालयो मज्झ ॥ २ ॥
तुहु जणणी हुइ भज्जा पियामही तह य मायरी सवई ।
हवइ बहू तह सासू ए कहिया अट्ठदहणत्ता ॥ ३ ॥

बंधदि मुंचदि जीवो पडिसमयं कम्मपुग्गला विविहा
णोकम्मपुग्गला वि य मिच्छत्तकसायसंजुत्तो ॥६७॥

भाषार्थ—यह जीव या लोक विषै तिष्ठते जे अनेक प्रकार पुद्गल ज्ञानावरणादि कर्मरूप तथा औदारिकादि शरीर नोकर्मरूपकरि समयसमयमांने मिथ्यात्वकषायनिकरि संयुक्त हूवा संता बांधै है तथा छोडै है. भावार्थ—मिथ्यात्व कषायके वश करि ज्ञानावरणादि कर्मका समयप्रबद्ध अभव्यराशितैं अनन्तगुणा सिद्धराशिके अनन्तवें भाग पुद्गलपरमाणुनिका स्कन्धरूप कार्माणवर्गणाकूं समयसमयप्रति ग्रहण करै है. बहुरि पूर्वैं ग्रहे थे ते सत्तामें हैं, तिनमेंसों येते ही समयसमय खरै हैं। बहुरि तैसैं ही औदारिकादि शरीरनिका समयप्रबद्ध शरीरग्रहणके समयतैं लगाय आयुकी स्थितिपर्यन्त ग्रहण करै है वा छोडै है. सो अनादि कालतैं लेकरि अनन्तवार ग्रहण करना वा छोडना हो है. तहां एक परिवर्त्तनका प्रारंभविषै प्रथमसमयमें समयप्रबद्धविषै जेते पुद्गल परमाणु जैसे स्निग्ध रूक्ष वर्ण गन्ध रूप रस तीव्र मंद मध्यम भाव करि ग्रहे होंय तेते ही तैसे ही कोई समयविषै फेरि ग्रहणमें आवैं तब एक कर्म परावर्त्तन तथा नोकर्मपरावर्त्तन होय. बीचिमें अनन्तवार और भांतिके परमाणु ग्रहण होंय ते न गिणिये. जैसेके तैसे फेर ग्रहणकूं अनन्ता काल बीतै, ताकूं एक द्रव्यपरावर्त्तन कहिये. ऐसें या जीवने या लोकविषै अनन्ता परावर्त्तन किये।

समयतैं लगाय अन्तके समयपर्यंत यहु जीव अनुक्रमतैं सर्व कालविषै उपजै तथा मरै है, भावार्थ—कोई जीव उत्सर्पिणी जो दशकोडाकोडी सागरका काल ताका प्रथम समयविषै जन्म पावै, पीछै दूसरे उत्सर्पिणीके दूसरे समयविषै जन्मै, ऐसे ही तीसरेके तीसरे समयविषै जन्मैं, ऐसे ही अनुक्रमतैं अन्तके समयपर्यंत जन्मैं, बीचिबीचिमें अन्यसमयनिविषै विना अनुक्रम जन्मै सो गिणतीमें नाहीं ऐसें ही अवसर्पिणीके दश कोडाकोडी सागरके समयपूरण करै तथा ऐसें ही मरण करै सो यह अनंत काल होय ताकूं एक कालपरावर्तन कहिये।

आगें भवपरिवर्तनकूं कहै हैं—

णेरइयादिगदीणं अवरट्ठिदिदो वरट्ठिदी जाव।
सव्वट्ठिदिसु वि जम्मदि जीवो गेवेज्जपज्जंतं ॥ ७० ॥

भाषार्थ—संसारी जीव नरक आदि चारि गतिकी जघन्य स्थितितैं लगाय उत्कृष्टस्थितिपर्यन्त सर्व स्थितिविषै ग्रैवेयकपर्यन्त जन्मै। भावार्थ—नरकगतिकी जघन्यस्थिति दश हजार वर्षकी है सो याके जेते समय हैं तेतीवार तो जघन्यस्थितिकी आयु ले जन्मै, पीछै एक समय अधिक आयु लेकर जन्मै। पीछै दोय समय अधिक आयु ले जन्मै, ऐसें ही अनुक्रमतैं तेतीस सागरपर्यन्त आयु पूरण करै, बीचिबीचिमें घाटि वाधि आयु ले जन्मै तो गिणतीमें नाहीं, ऐसें ही तिर्यंच गतिकी जघन्य आयु अन्तर्मुहूर्त, ताके जेते समय तेतीवार जघन्य आयुका धारक होय पीछै एक सम

स्थानमें अनुभागबंधकूं कारण स्थान ऐसे असंख्यातलोकप्रमाण हैं. तिनमेंसों एक सर्वजघन्यरूप परिणमैं तहां तिस योग्य सर्वजघन्य ही योगस्थानरूप परिणमै, तब जगत्श्रेणीके असंख्यातवें भाग योगस्थान अनुक्रमतैं पूरण करै. वीचिमें अन्य योगस्थानरूप परिणमैं सो गिणतीमें नाहीं. ऐसें योगस्थान पूरण भये अनुभागका स्थान दूसरारूप परिणमै तहां भी तैसें ही योगस्थान सर्व पूरण करै। बहुरि तीसरा अनुभागस्थान होय तहां भी तेते ही योगस्थान भुगतै. ऐसें असंख्यातलोकप्रमाण अनुभागस्थान अनुक्रमतैं पूरण करै तब दूसरा कषायस्थान लेणा. तहां भी तैसें ही क्रमतैं असंख्यात लोकप्रमाण अनुभागस्थान तथा जगत्श्रेणीके असंख्यातवें भाग योगस्थान पूर्वोक्त क्रमतैं भुगतै तब तीसरा कषायस्थान लेणा. ऐसें ही चतुर्थादि असंख्यात लोकप्रमाण कषायस्थान पूर्वोक्त क्रमतैं पूरण करै, तब एकसमय अधिक जघन्यस्थिति स्थान लेणा, तामैं भी कषायस्थान अनुभागस्थान योगस्थान पूर्वोक्त क्रमतैं भुगतै. ऐसें दोय समय अधिक जघन्यस्थितितैं लगाय तीनकोड़ाकोड़ीसागर पर्यन्त ज्ञानावरणकर्मकी स्थिति पूरण करै. ऐसे ही सर्वमूलकर्मप्रकृति तथा उत्तरप्रकृतिनका क्रम जानना. ऐसें परिणमतैं अनंत काल वीतै, तिनिकूं भेला कीये एक भावपरिवर्तन होय. ऐसें अनंत परावर्तन यह जीव भोगता आया है।

आगें पंचपरावर्तनका कथनकूं संकोचै हैं—

एवं अणाइकालं पंचपयारे भमेइ संसारे ।

इक्को रोई सोई इक्को तप्पेइ माणसे दुक्खे ।
इक्को मरदि वराओ णरयदुहं सहदि इक्को वि ७५

भावार्थ—एक ही जीव रोगी होय है, सो ही एक जीव शोकसहित होय है. सो ही एक जीव मानसिक दुःखकरि तप्तायमान होय है. सो ही एक जीव मरै है. सो ही एक जीव दीन होय नरकके दुःख सहै है. भावार्थ—जीव अकेला ही अनेक अनेक अवस्थाकूं धारै है।

इक्को संचदि पुण्णं इक्को भुंजेदि विविहसुरसोक्खं
इक्को खवेदि कम्मं इक्को वि य पावए मोक्खं ॥७६॥

भावार्थ—एक ही जीव पुण्यका संचय करै है. सो ही एक जीव देवगतिके सुख भोगवै है. सो ही एक जीव कर्म की निर्जरा करै है. सो ही एक जीव मोक्षकूं पावै है. भावार्थ—सो ही जीव पुण्य उपजाय स्वर्ग जाय है. सो ही जीव कर्मनाशकर मोक्ष जाय है ।

सुयणो पिच्छंतो वि हु ण दुक्खलेसंपि सक्कदे गहिदुं
एवं जाणंतो वि हु तोवि ममत्तं ण छंडेइ ॥ ७७ ॥

भावार्थ—स्वजन कहिये कुटुंब है सो भी या जीवनें आवै ताकूं देखता संता भी दुःखका लेश भी ग्रहण कूं असमर्थ होय है. ऐसे जानता भी ममत्वकं या कूं ममत्व ना [illegible] छोडै है. भावार्थ— दुःख आपका आप

## अथ अन्यत्वानुप्रेक्षा लिख्यते.

अण्णं देहं गिह्णदि जणणी अण्णा य होदि कम्मादो ।
अण्णं होदि कलत्तं अण्णो वि य जायदे पुत्तो ॥ ८० ॥

भावार्थ—यह जीव संसारविषै देह ग्रहण करै है सो आपतैं अन्य है. बहुरि माता है सो भी अन्य है. बहुरि स्त्री है सो भी अन्य है. बहुरि पुत्र है सो भी अन्य उपजै है. यह सर्व कर्मसंयोगतैं होय है ॥ ८० ॥

एवं वाहिरदव्वं जाणदि रूवा हु अप्पणो भिण्णं ।
जाणं तो वि हु जीवो तत्थेव य रच्चदे मूढो ॥८१॥

भावार्थ—ऐसें पूर्वोक्तप्रकार सर्व बाह्यवस्तुकूं आत्मस्वरूपतैं न्यारा जानै है तोऊ प्रगटपणैं जाणता सता भी यह मूढ मोही तिन परद्रव्यनिविषै ही राग करै है. सो यह बडी मूर्खता है ॥ ८१ ॥

जो जाणिऊण देहं जीवसरूवादु तच्चदो भिण्णं ।
अप्पाणं पि य सेवदि कज्जकरं तस्स अण्णत्तं ॥ ८२ ॥

भावार्थ—जो जीव अपने स्वरूपतैं देहकूं परमार्थतैं भिन्न जानिकरि आत्मस्वरूपकूं सेवै है, ध्यावै है ताकै अन्यत्वभावना कार्यकारी है. भावार्थ—जो देहादिक परद्रव्यकूं न्यारे जानि अपने स्वरूपका सेवन करै है ताकै न्यारापावना (अन्यत्वभावना) कार्यकारी है।

---

१ रुच्चइ इत्यादि पाठः ।

तै दुर्गन्ध होय जांय, भले मिष्टान्नादि रससहित खाये दे मलादिकरूप परिणमैं. अन्य भी वस्तु या देहके स्पर्शतें अस्पर्श्य होय जाय हैं।

बहुरि या देहकूं अशुचि दिखावै हैं—

मणुआणं असुइमयं विहिणा देहं विणिम्मियं जाण ।
तेसिं विरमणकज्जे ते पुण तत्थेव अणुरत्ता ॥ ८५ ॥

भावार्थ—हे भव्य ! यहु मनुष्यनिका देह कर्मने अशुचि बणाया है, सो यहां ऐसी उत्प्रेक्षा संभावना जाणि, जो इनि मनुष्यनिकूं वैराग्य उपजावनेके अर्थिही ऐसा रच्या है परंतु ये मनुष्य ऐसे भी देहमें अनुरागी होय हैं. सो यह अज्ञान है।

बहुरि याही अर्थकूं दृढ करै हैं,—

एवं विहं पि देहं पिच्छंता वि य कुणंति अणुरायं ।
सेवंति आयरेण य अलद्धपुव्वत्ति मण्णंता ॥ ८६ ॥

भावार्थ—ऐसा पूर्वोक्त प्रकार अशुचि देहकूं प्रत्यक्ष देखता भी ये मनुष्य तहां अनुराग करै हैं, जैसैं पूर्वे ऐसे कभी न पाया ऐसा मानते संते आदर करि ताकूं सेवै हैं, सो यह बड़ा अज्ञान है।

आगें या देहसूं विरक्त होय है ताकैं अशुचि भावना सफल है ऐसा कहै हैं—

जो परदेहविरत्तो णियदेहे ण य करेदि अणुरायं ।
अप्पसरूवि सुरत्तो असुइत्ते भावणा तस्स ॥ ८

भावार्थ—जो अन्य परदेह जो स्त्री आदिककी देह तातैं विरक्त हुवा संता निज देहविषै अनुराग नाहीं करै है ताकै अशुचि भावना सार्थिक होय है. भावार्थ—केवल विचारहीतैं वैराग्य प्रगट होय ताकै भावना सत्यार्थ कहिये।

### दोहा

स्वपर देहकूं अशुचि लखि, तजै तास अनुराग।
ताकै सांची भावना, सो कहिये बडभाग॥ ६॥

इति अशुचित्वानुप्रेक्षा समाप्ता॥ ६॥

## अथ आस्रवानुप्रेक्षा लिख्यते।

मणवयणकायजोया जीवपयेसाणफंदणविसेसा।
मोहोदएण जुत्ता विजुदा वि य आसवा होंति॥८८॥

भावार्थ—मन वचन काययोग हैं ते ही आस्रव हैं। कैसे है? जीवके प्रदेशनिका जो स्पंदन कहिये चलणा कंपना तिसके विशेष हैं ते ही योग हैं. बहुरि कैसे हैं ते? मोहकर्मका उदय जे मिथ्यात्व कषाय तिन कर्म सहित हैं. बहुरि मोहके उदयकरि रहित भी हैं. भावार्थ—मन वचन कायके निमित्त पाय जीवके प्रदेशनिका चलाचल होना सो योग है [illegible] आस्रव कहिये. ते गुणस्थानकी परिपाटीविषैं सू- [illegible]राय दशमां गुणस्थानताई तो मोहके उदयरूप यथा- [illegible] कषायनिकरि सहित होय हैं. ताकूं सांपरायि- [illegible] कहिये बहुरि उपरि तेरहवां गुणस्थानताई मोहके

उदय करि रहित है ताकूं ईर्यापथ आस्रव कहिये. जो पुद्गल वर्गणा कर्मरूप परिणमै ताकूं द्रव्यास्रव कहिये. जीवके प्रदेश चंचल होंय ताकूं भावास्रव कहिये।

आगें मोहके उदयसहित आस्रव हैं ऐसा विशेषकरि कहै हैं—

मोहविभागवसादो जे परिणामा हवंति जीवस्स।
ते आसवा मुणिज्जसु मिच्छत्ताई अणेयविहा ॥८९॥

भावार्थ—मोहकर्मके उदयतैं जे परिणाम या जीवकै होय हैं ते ही आस्रव हैं, हे भव्य तू प्रगटपणै ऐसे जाणि. ते परिणाम मिथ्यात्वनै आदि लेकर अनेक प्रकार हैं. भावार्थ—कर्मबन्धके कारण आस्रव हैं. ते मिथ्यात्व अविरत प्रमाद कषाय योग ऐसें पांच प्रकार हैं. तिनमें स्थिति अनुभागरूप बंधकं कारण मिथ्यात्वादिक च्यारि ही हैं सो ए मोहकर्मके उदयतैं होय हैं. बहुरि योग हैं ते समयमात्र बंधकूं करै हैं. कछू स्थिति अनुभागक करै नाहीं तातैं बंधका कारणमें प्रधान नाहीं।

आगें पुण्यपापके भेदकरि आस्रव दोय प्रकार कहै हैं—

कम्मं पुण्णं पावं हेउं तेसिं च होंति सच्छिदरा।
मंदकसाया सच्छा तिव्वकसाया असच्छा हु ॥ ९०

भावार्थ—कर्म है सो पुण्य तथा पाप ऐसे दोय है. ताकूं कारण भी दो प्रकार है. प्रशस्त अर इतर

अप्रशस्त. तहां मंद कषाय परिणाम ते तौ प्रशस्त हैं शुभ हैं बहुरि तीव्रकषाय परिणाम ते अप्रशस्त अशुभ हैं. ऐसें प्रगट जानहु. भावार्थ—सातावेदिनी शुभ आयुः उच्चगोत्र शुभनाम ये प्रकृतियें तो पुण्यरूप हैं. अवशेष चारघातियाकर्म, असातावेदनी, नरकायुः नीचगोत्र अशुभनाम ए प्रकृतियें पापरूप हैं तिनकूं कारण आस्रव भी दोय प्रकार हैं. तहां मंदकषायरूप परिणाम तौ पुण्यास्रव हैं और तीव्र कषायरूप परिणाम पापास्रव हैं।

आगें मंद तीव्रकषायकूं प्रगट दृष्टान्त करि कहै हैं.

सव्वत्थ वि पियवयणं दुव्वयणे दुज्जणे वि खमकरणं ।
सव्वेसिं गुणगहणं मंदकसायाण दिट्ठंता ॥ ९१ ॥

भाषार्थ—सर्व जायगां शत्रु तथा मित्र आदिविषै तो प्यारा हितरूप वचन और दुर्वचन सुणिकरि दुर्जनविषै भी क्षमा करणा, बहुरि सर्व जीवनिके गुण ही ग्रहण करना, एते मंदकषायनिके उदाहरण हैं।

अप्पपसंसणकरणं पुज्जेसु वि दोसगहणसीलत्तं ।
वेरधरणं च सुइरं तिव्वकसायाण लिंगाणि ॥ ९२ ॥

भाषार्थ—अपनी प्रशंसा करणा पूज्य पुरुषनिका भी दोष ग्रहण करनेका स्वभाव तथा घणो कालतांई वैर धारणा ए तीव्रकषायनिके चिन्ह हैं।

आगें कहै हैं ऐसें जीवकै आस्रवका चिंतवन निष्फल है।

तो वि हु परिच्चयणीये वि जो ण परिहरइ ।

तस्सासवाणुपिक्खा सव्वा वि णिरत्थया होदि ॥

भापार्थ—ऐसे प्रगटपणे जानता सन्ता भी जो त्यजनेयोग्य परिणामनिकूं नाहीं छांडै है ताकैं सारा आस्रवका चितवन निरर्थक है. कार्यकारी नाहीं. भावार्थ—आस्रवानुप्रेक्षाका चिंतवन करि प्रथम तौ तीव्रकपाय छोडणा, पीछैं शुद्ध आत्मस्वरूपका ध्यान करणा, सर्व कपाय छोडना, तब यहु चिंतवन सफल है. केवल वार्त्ता करणामात्र ही तौ सफल है नाहीं।

एदे मोहजभावा जो परिवज्जेइ उवसमे लीणो।
हेयमिदि मण्णमाणो आसवअणुपेहणं तस्स ॥ ९४ ॥

भापार्थ—जो पुरुष एते पूर्वोक्त मोहके उदयतैं भये जे मिथ्यात्वादिक परिणाम तिनिकूं छोडै है, कैसा हूवा संता उपशम परिणाम जो वीतराग भाव ताविषैं लीन हूवा संता तथा इनि मिथ्यात्वादिक भावनिकूं हेय कहिये त्यागनेयोग्य है, ऐसें जानता संता. ताकैं आस्रवानुप्रेक्षा होय है।

दोहा.

आस्रव पंचप्रकारकूं, चिंतवै तजि विकार।
ते पावैं निजरूपकूं, यहै भावना सार। ७ ॥

इति आस्रवानुप्रेक्षा समाप्ता ॥ ७ ॥

---

## अथ संवरानुप्रेक्षा लिख्यते।

सम्मत्तं देसवयं महव्वयं तह जओ कसायाणं।
एदे संवरणामा जोगा भावो तहच्चेव ॥ ९५ ॥

भाषार्थ—सम्यक्त्व देशव्रत महाव्रत तथा कषायनिका जीतना तथा योगनिका अभाव एते संवरके नाम हैं. भावार्थ-पूर्वे आस्रव, मिथ्यात्व, अविरत, प्रमाद, कषाय, योगरूप पंच प्रकार कह्या था, तिनका अनुक्रमतैं रोकना सो ही संवर है. सो कैसें ? मिथ्यात्वका अभाव तौ चतुर्थगुणस्थानविषै भया तहां अविरतका संवर भया. अविरतका अभाव एक देश तौ देशविरतिविषै भया, अर सर्वदेश प्रमत्तगुणस्थानविषैं भया तहां अविरतका संवर भया. बहुरि अप्रमत्त गुणस्थानविषै प्रमादका अभाव भया तहां ताका संवर भया. अयोगिजिनविषै योगनिका अभाव भया, तहां तिनिका संवर भया। ऐसें संवरका क्रम है।

आगें इसीको विशेषकरि कहै हैं,—

गुत्ती समिदी धम्मो अणुवेक्खा तह परीसहजओ वि।
उक्किट्टं चारित्तं संवरहेदू विसेसेण ॥ ९६ ॥

भाषार्थ—कायमनोवचनगुप्ति, ईर्या भाषा एषणा आदाननिक्षेपणा प्रतिष्ठापना एवं पंचसमिति, उत्तम क्षमादि दश धर्म, अनित्य आदि बारह अनुप्रेक्षा, क्षुधा आदि परीषहका जीतना, सामायिक आदि उत्कृष्ट पंच[illegible] एते विशेषकर संवरके कारण हैं।

आगें इनिको स्पष्ट करि कहैं हैं,—

गुत्ती जोगणिरोहो समिदीयपमायवज्जणं चेव ।
धम्मो दयापहाणो सुतच्चचिंता अणुप्पेहा ॥ ९७ ॥

भावार्थ—योगनिका निरोध सो तो गुप्ति है, प्रमादका वर्जना यत्नतैं प्रवर्त्तना सो समिति है. जामें दयाप्रधान होय सो धर्म है, भले तत्त्व कहिये जीवादिक तत्त्व तथा निज-स्वरूपका चिंतवन सो अनुप्रेक्षा है ।

सो वि परीसहविजओ छुहाइपीडाण अइरउद्दाणं ।
सवणाणं च मुणीणं उवसमभावेण जं सहणं ॥ ९८ ॥

भावार्थ— जो अति रौद्र भयानक क्षुधा आदि पीडा तिनका उपशमभाव कहिये वीतरागभाव करि सहना सो ज्ञानी जे महामुनि तिनिकै परीसहनिका जीतना कहिये है ।

अप्पसरूवं वत्थुं चत्तं रायादिएहिं दोसेहिं ।
सज्झाणम्मि णिलीणं तं जाणसु उत्तमं चरणं ॥ ९९ ॥

भावार्थ—जो आत्मस्वरूप वस्तु है ताका रागादि दोष-निकरि रहित धर्म्य शुक्ल ध्यानविषै लीन होना ताहि भो भव्य ! तू उत्तम चारित्र जाणि ।

आगें कहै हैं जो ऐसे संवरको आचरै नाहीं है सो संसारमें भ्रमै है,—

एदे संवरहेदुं वियारमाणो वि जो ण आयरइ ।

कर्मकी निर्जरा हे भव्य तू जाणि. भावार्थ—कर्म उदय होय खिर जाय ताकूं निर्जरा कहिये, सो यह निर्जरा दो प्रकार है सो ही कहै हैं—

सा पुण दुविहा णेया सकालपत्ता तवेण कयमाणा ।
चादुगदीणं पढमा वयजुत्ताणं हवे विदिया ॥१०४॥

भाषार्थ—सो पूर्वोक्त निर्जरा दोय प्रकार है. एक तौ स्वकालप्राप्त, एक तपकरि, करी हुई होय. तामें पहिली स्वकालप्राप्त निर्जरा तौ चारही गतिके जीवनिकै होय है. बहुरि व्रतकरि युक्त हैं तिनकै दूसरी तपकरि करी हुई होय है. भावार्थ—निर्जरा दोय प्रकार है. तहां जो कर्मस्थिति पूरी करि उदय होय रस देकरि खिरै सो तो सविपाक कहिये. यह निर्जरा तो सर्व ही जीवनिकै होय है. बहुरि तपकरि कर्म विना स्थिति पूरी भये ही पकैं, क्षरि जाय, ताकूं अविपाक ऐसा भी नाम कहिये है, सो यह व्रतधारीनिकै होय है ।

आगें निर्जरा बधती काहेतैं होय सो कहै हैं—

उवसमभावतवाणं जह जह वड्ढी हवेइ साहूणं ।
तह तह णिज्जर वड्ढी विसेसदो धम्मसुक्कादो १०५

भाषार्थ—मुनिनिकै जैसें २ उपशमभाव तथा तपकी बधवारी होय तैसें २ निर्जराकी बधवारी होय है. बहुरि धर्मशुक्लध्यानतैं विशेषतैं बधवारी होय है ।

आगें इस वृद्धिके स्थान कहते हैं—

मिच्छादो सद्दिट्ठी असंखगुणिकम्मणिज्जरा होदि।
तत्तो अणुवयधारी तत्तो य महव्वई णाणी ॥ १०६॥
पढमकसायचउण्हं विजोजओ तह य खवयसीलो य
दंसणमोहतियस्स य तत्तो उपसमगचत्तारि ॥१०७॥
खवगो य खीणमोहो सजोइणाहो तहा अजोईया।
एदे उवरिं उवरिं असंखगुणकम्मणिज्जरया ॥१०८॥

भावार्थ—प्रथमोपशम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिविषैं करणत्रय-वर्ती विशुद्ध परिणामयुक्त मिथ्यादृष्टिकै जो निर्जरा होय है तातैं असंयत सम्यग्दृष्टिकै असंख्यातगुणी निर्जरा होय है. यातैं देशव्रती श्रावककै असंख्यात गुणी होय है. यातैं महाव्रती मुनिनिकै असंख्यात गुणी होय है. यातैं अनंतानुबंधी कषायका विसंयोजन कहिये अप्रत्याख्यानादिकरूप परिणमावना ताकै असंख्यात गुणी होय है. यातैं दर्शनमोहका क्षय करनेवालेकै असंख्यातगुणी होय है. यातैं उपशम श्रेणीवाले तीन गुणस्थानविषैं असंख्यात गुणी होय है. यातैं उपशांत मोह ग्यारहमां गुणस्थानवालेकै असंख्यातगुणी होय है. यातैं क्षपकश्रेणीवाले तीन गुणस्थानविषैं असंख्यात गुणी होय है. यातैं क्षीणमोह बारहमां गुणस्थानविषैं असंख्यात गुणी होय है. यातैं सयोग केवलीकै असंख्यातगुणी हो यातैं अयोगकेवलीकै असंख्यातगुणी होय है. ऊपरि

असंख्यात गुणकार है. याहीतैं याकूं गुणश्रेणी निर्जरा कहिये है।

आगें गुणकाररहित अधिकरूप निर्जरा जातैं होय सो कहै हैं—

जो वि सहदि दुव्वयणं साहम्मियहीलणं च उवसग्गं
जिणऊण कसायरिउं तस्स हवे णिज्जरा विउला १०९

भाषार्थ—जो मुनि दुर्वचन सहै तथा साधर्मी जे अन्य-मुनि आदिक तिनकरि कीया अनादर सहै तथा देवादिक-निकरि कीया उपसर्ग सहै कषायरूप वैरीनिकूं जीतकरि ऐसैं करे. ताकै विपुल कहिये विस्ताररूप वडी निर्जरा होय. भावार्थ—कोई कुवचन कहै तौ तासूं कषाय न करै तथा आ-पकूं अतीचारादिक लागै तब आचार्यादि कठोर वचन कहि प्रायश्चित्त दें निरादर करैं ताकूं निकषायपणै सहै. तथा कोई उपसर्ग करे तासूं कषाय न करै ताकैं वडी निर्जरा होय है।

रिणमोयणुव्व मण्णइ जो उवसग्गं परीसहं तिव्वं।
पावफलं मे एदे मया वि यं संचिदं पुव्वं ॥ ११० ॥

भाषार्थ—जो मुनि उपसर्ग तथा तीव्र परिषहकूं ऐसा मानै जो मैं पूर्वजन्ममैं पापका संचै कियाथा ताका यह फल है सो भोगना. यामैं व्याकुल न होना. जैसे काहूका करज काढ्या होय सो पैलो मांगै, तब देना. यामैं व्याकुलता कहा? ऐसैं मानै ताकैं निर्जरा वहुत होय है।

जो चिंतेइ सरीरं ममत्तजणयं विणस्सरं असुइं।
दंसणणाणचरित्तं सुहजणयं णिम्मलं णिच्चं॥ १११॥

भावार्थ-जो मुनि या शरीरकूं ममत्व मोहका उपजावनहारा तथा विनाशीक तथा अपवित्र मानैं, ताकै निर्जरा बहुत होय. भावार्थ-शरीरकूं मोहका कारन अथिर अशुचि मानैं तब याका सोच न रहै. अपना स्वरूपमैं लागै, तब निर्जरा होय ही होय।

अप्पाणं जो णिंदइ गुणवंताणं करेदि बहुमाणं।
मणइंदियाण विजई स सरूवपरायणो होदि ११२

भावार्थ-जो साधु अपने स्वरूपविषै तत्पर होय करि अपने किये दुष्कृतकी निंदा करै. बहुरि गुणवान पुरुषनिका प्रत्यक्ष परोक्ष बडा आदर करै. बहुरि अपना मन इंद्रियनिका जीतनहारा वश करनहारा होय ताकै निर्जरा बहुत होय. भावार्थ-मिथ्यात्वादि दोषनिका निरादर करै तब ए काहेकूं रहैं. झडिही परैं॥

तस्स य सहलो जम्मो तस्स वि पावस्स णिज्जरा होदि
तस्स वि पुण्णं वड्ढइ तस्स य सोक्खं परो होदि ११३

भावार्थ-जो साधु ऐसें पूर्वोक्त प्रकार निर्जराके कारननिविषैं प्रवर्तै है, ताहीका जन्म सफल है. बहुरि ताहीकै पाप कर्मकी निर्जरा होय है, पुण्यकर्मका अनुभाग बधै है. भावार्थ-जो निर्जराका कारननिविषै प्रवर्तै, ताकै

नाश होय, पुण्यकी वृद्धि होय. स्वर्गादिकके सुख भोग मोक्ष कूं प्राप्त होय।

आगें उत्कृष्ट निर्जरा कहकरि निर्जराका कथनकूं पूरण करै हैं—

जो समसुक्खणिलीणो वारं वारं सरेइ अप्पाणं।
इंदियकसायविजई तस्स हवे णिज्जरा परमा॥ ११४॥

भाषार्थ-जो मुनि, वीतराग भावरूप सुख, याहीका नाम परम चारित्र है सो याविषैं तौ लीन कहिये तन्मय होय वारवार आतमाकूं सुमिरै ध्यावै. वहुरि इन्द्रियनिका जीतन हारा होय, ताकै उत्कृष्ट निर्जरा होय है. भावार्थ-इन्द्रियनि-का कषायनिका निग्रहकरि परम वीतराग भावरूप आत्म-ध्यानविषै लीन होय ताकैं उत्कृष्ट निर्जरा होय।

## दोहा

पूरव बांधे कर्म जे, क्षरैं तपोवल पाय।
सो निर्जरा कहाय है, धारैं ते शिव जांय॥ ६॥

इति निर्जरानुप्रेक्षा समाप्ता॥ ९॥

## अथ लोकानुप्रेक्षा लिख्यते.

आगें लोकानुप्रेक्षाका वर्णन करिये है. तामैं प्रथमही आकारादिक कहैंगे. तहां किछू गणित प्रयोजनका-जाणि संक्षेपताकरि कहिये है। भावार्थ-गणितकौं अन्य अनुसार लिखिये है. तहां प्रथम तौ परिकर्माष्टक है

तामें संकलन कहिये जोड देना जैसे आठ वा सातका जोड दिया पंधरा होय. बहुरि व्यवकलन कहिये बाकी काढना जैसे आठमें तीन घटाये पांच रहैं. बहुरि गुणकार जैसे आठकों सातकरि गुणे छप्पन होय. बहुरि आठकूं दोयका भाग दिये च्यारि पाये. बहुरि वर्ग कहिये दोयराशि बराबरकी गुणिये जेते होय तेते ताकं वर्ग कहिये. जैसें आठका वर्ग चौसठि. बहुरि वर्गमूल जैसें चौसठिका वर्गमूल आठ बहुरि घन कहिये तीन राशि बराबरकी गुणे जो होय सो. जैसें, आठका घन पांचसैबारा । बहुरि घनमूल जैसें पांचसौ बाराका घनमूल आठ. ऐसैं परिकर्माष्टक जानना.

बहुरि त्रैराशिक है. जहां एक प्रमाणराशि, एक फलराशि ,एक इच्छा राशि. जैसें दोय रुपयोंकी जिनस सोलह सेर आवै तो आठरुपयोंकी केती आवै. ऐसें प्रमाणराशि दोय, फलराशि सोलह. इच्छाराशि आठ. तहां फलराशिकूं इच्छाकरि गुणें एकसौ अठाईस होय. ताकूं प्रमाणराशि दोयका भाग दिये चौसठि सेर आवै. ऐसें जानना. बहुरि क्षेत्रफलविषै जहां घरोदरिके खंड करिये ताकूं क्षेत्रफल कहिये. जैसे खेतमैं डोरी मापिये तब कथवांसी विसवांसी ऐसा करिये ताकूं क्षेत्रफल संज्ञा है. जैसे अस्सी हाथकी डोरी होय ताके बीस गट्टा करिये च्यारि हाथका एक गट्टा, ऐसैं खेतमैं एक डोरी लांबा चौडा खेत होय ताकै च्यारि हाथके तांके चौडे खंड कीजिये. तब बीसकूं बीस गुणा किये च्यारिसै भये

सोई कचवांसी भई. याकै वीस विसवे भये. ताका एक बीघा भया. ऐसैं ही जहां चौखूटा तिखूटा गोल आदि खेत होय, ताका बराबरिका खंडकरि मापि क्षेत्रफल ल्याइये है. तैसैं ही लोकका क्षेत्रकूं योजनादिककी संख्याकरि जैसा क्षेत्र होय तैसा विधानकरि क्षेत्रफल ल्यावनेका विधान गणित शास्त्रतैं जानना. इहां लोकके क्षेत्रविषै तथा द्रव्यनिकी गणनाविषै अलौकिक गणित इकईस हैं. तथा उपमागणित आठ हैं. तहां संख्यातके तीन भेद—जघन्य मध्यम उत्कृष्ट. असंख्यातके नव भेद, तामें परीतासंख्यात जघन्य मध्य, उत्कृष्ट, युक्तासंख्यात—जघन्य मध्य उत्कृष्ट. असंख्यातासंख्यात जघन्य, मध्य, उत्कृष्ट ऐसैं नौ भये. वहुरि अनन्तके नवभेद, परीतानन्त, युक्तानंत, अनंतानंत, ताके जघन्य मध्य उत्कृष्ट करि नव ऐसैं इकईस। तहां जघन्य परीत असंख्यात ल्यावनेके अर्थ लाख लाख योजनके जंबूद्वीपप्रमाण व्यासवाले हजार हजार योजन ऊंडे च्यारि कुंड करिये. एकका नाम अनवस्था, दूजा शलाका, तीजा प्रतिशलाका, चौथा महाशलाका. तिनमेंसूं अनवस्था कुंडकूं सिरस्यूंतैं सिघाऊं भरिये. तिसमें छियालीस अंक प्रमाण सिरस्यूं मावै. तिनकूं संकल्प मात्र ले चालिये. एक द्वीपमें समुद्रमें ऐसैं गेरते जाइये. तहां वे सिरस्यूं वीतें तिस द्वीप वा सूचीप्रमाण अनवस्थाकुंड कीजै. तामें सिरस्यूं भरिये ...का कुंडमें एक सिरस्यूं अन्य ल्याय गेरिये वहुरि

तैसैं ही तिस दूजे अनवस्था कुण्डकी एक सिरस्यूं एक द्वीपमें एक समुद्रमें गेरते जाइये. ऐसैं करतैं तिस अनवस्था कुण्डकी सिरस्यूं जहा वीतै, तहां तिस द्वीप वा समुद्रकी सूची प्रमाण फेर अनवस्था कुंडकरि तैसैं ही सिरस्यूं भरिये. वहुरि एक सिरस्यूं शलाका कुण्डमें अन्य डारि गेरिये. ऐसैं करतैं छियालीस अंक प्रमाण अनवस्था कुण्ड होय चुकैं, तव एक शलाका कुण्ड भरै. तब एक सिरस्यूं प्रतिशलाका कुण्डमें गेरिये. तैसैंही अनवस्था होता जाय. शलाका होना जाय. ऐसैं करतैं छियालीस अंक प्रमाण शलाका कुंडभरि चुकै, तव एक प्रतिशलाका भरै. ऐसैं ही अनवस्था कुंड होता जाय शलाका भरते जांय प्रति शलाका भरते जांय, तव छिआलीस अंक प्रमाण प्रतिशलाका कुंड भरि चुकैं तव एक महाशलाका कुंड भरै. ऐसैं करतै छिआलीस अंकनिके घन प्रमाण अनवस्था कुण्ड भये. तिनिमैं अंतका अनवस्था जिस द्वीप तथा समुद्रकी सूची प्रमाण बण्या तामें जेती सिरस्यूं मावै तेता प्रमाण जघन्य परीतासंख्यातका है. यामें एक सिरस्यूं घटाये उत्कृष्टसंख्यात कहिये. दोय सिरस्यूं प्रमाण जघन्य संख्यात कहिये, वीचके सर्व मध्य संख्यातके भेद हैं. वहुरि तिस जघन्य परीतासंख्यातकी सिरस्यूंकी राशिकूं एक एक बखेरि एक एक पर तिसही राशिकूं थापि परस्पर गुणता अंतमें जो राशि निपजै, ताकूं जघन्य युक्तासंख्यात कहिये. यामें एक रूप घटाये उत्कृष्टपरीतासंख्यात कहिये. म

ाना भेद जानने. बहुरि जघन्य युक्तासंख्यातकूं जघन्य-
क्तासंख्यातकरि एकवार परस्पर गुणनेतैं जो परिमाण
ावे, सो जघन्य असंख्यातासंख्यात जानने. यामैं एक घ-
ये उत्कृष्ट युक्तासंख्यात होय है. मध्य युक्त असंख्यात
ाचके नाना भेद जानने ।

अब इस जघन्य असंख्यातासंख्यातप्रमाण तीन राशि करनी.
क शलाका एक विरलन एक देय. तहां विरलन राशिकूं वखेरि
क एक जुदा जुदा करना, एक एककै ऊपरि एक एक देय
शि धरना तिनकूं परस्पर गुणिये जब सर्व गुणकार होय
कै तब एक रूप शलाका राशिमेंसूं घटावना. बहुरि जो
शि भया तिस प्रमाण विरलन देय राशि करना, तहां
रलनकूं वखेरि एक एककूं जुदा करि एक एक परि देय
शि देना, तिनकूं परस्पर गुणन करना जो राशि निपजै
एक शलाकाराशिमेंसूं फेरि घटावना. बहुरि जो राशि
पज्या ताकै परिमाण विरलन देय राशि करना । विरलनकूं
ेरि देयकूं एक एक पर स्थापि परस्पर गुणन करना, ए-
रूप शलाकामेंसूं घटावना. ऐसैं विरलन देय राशिकरि
ाकार करता जाना, शलाकामेंसूं घटाता जाना. जब श-
का राशि निःशेष हो जाय तब जो किछू परिमाण आया
मध्य असंख्यातासंख्यातका भेद है. बहुरि तितने तितने
शलाका, विरलन, देय, तीन राशि फेरि करना ।
वत् करतैं शलाका राशि निःशेष होय जाय, तब

जो महाराशि परिमाण आया सो भी मध्य असंख्यातासंख्या-
तका भेद है. बहुरि तिस राशि परिमाणके फेरि शलाका
विरलन देय राशि करना तिनकूं पूर्वोक्त विधानकरि गुणा-
नेतें जो महाराशि भया सो यह भी मध्य असंख्यातासंख्या-
तका भेद भया. अर शलाकात्रयनिष्ठापन एक वार भया.
बहुरि इस राशिमैं असंख्यातासंख्यात प्रमाण छह राशि
और मिलावणी। लोकप्रमाण धर्म्म द्रव्यके प्रदेश, अधर्म्म द्र-
व्यके प्रदेश, एक जीवके प्रदेश, लोकाकाशके प्रदेश बहुरि
तिस लोकतैं असंख्यातगुणे अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति
जीवनिका परिमाण, बहुरि तिसतैं असंख्यातगुणे सप्रति-
ष्ठित प्रत्येकवनस्पति जीवोंका परिमाण ये छह राशि मि-
लाय पूर्वोक्त प्रकार शलाका विरलन देयराशिके विधानकरि
शलाकात्रयनिष्ठापन करना, तब जो महाराशि निपज्या सो
भी मध्य असंख्यातासंख्यातका भेद है. तामैं च्यारि राशि
और मिलावने—कल्प काल बीस कोड़ाकोडी सागरके समय
बहुरि स्थितिबंधकूं कारण कषायनिके स्थान, अनुभाग बं-
धकूं कारण कषायनिके स्थान, योगनिके अविभाग प्रति-
च्छेद, ऐसैं च्यारि राशि मिलाय अर पूर्वोक्त विधानकरि
शलाकात्रय निष्ठापन करना ऐसैं करतैं जो परिमाण होय
सो जघन्यपरीतानन्तराशि भया. यामैंसूं एक रूप घटाये उ-
त्कृष्ट असंख्यातासंख्यात होय है. बीचिमैं मध्यके नाना भेद
है. बहुरि जघन्य परीतानन्त राशि विरलनकरि एक

ा चौडा एक खाडा करना, ताकूं उत्तम भोगभूमिविषै उ-
ा जो जनमतैं लगाय सात दिन ताईका मीढाका वालका
भाग तिनिकरि भूमि समान अत्यन्त गाढा भरना, तामैं
पैंतालीस अंकनि परिमाण मावै, तिनकूं एक एक रोम
कं सौ सौ वरस गये काढै. जित्ते वरस होंय सो व्यव-
पल्य है। तिनि वर्षनिके असंख्यात समय होय हैं. व-
तिनि रोमके एक एकके असंख्यात कोडि वर्षके समय
, तेते तेते खंड कीजिये सो उद्धार पल्यके रोम खंड होंय,
समय उद्धार पल्यके हैं।

वहुरि इन उद्धार पल्यके एक एक रोम खंडके असंख्यात
जेते समय होंय तितने खंड कीये अद्धापल्यके रोमखराड होय
के समय भी इतने ही हैं. वहुरि दश कोडाकोडी पल्यका
सागर होय है. वहुरि एक प्रमाणांगुल प्रमाण लंवा ए-
श प्रमाण चौडा उंचा क्षेत्रकूं सूच्यंगुल कहिये है. याके
अद्धापल्यके अर्द्ध छेदनिकं विरलनकरि एक एक अ-
य तिनपरि स्थापि परस्पर गुणिये जो परिमाण आवैं
ाके प्रदेश हैं. वहुरि याका वर्गकूं प्रतरांगुल कहिये.
सूच्यंगुलके वनकूं घनांगुल कहिये. एक अंगुल चौडा
ी लांवा अर ऊंचा ताकूं घन अंगुल कहिये. वहुरि
राजू लांवा एक प्रदेश प्रमाण चौडा ऊंचा क्षेत्रकूं ज-
ाी कहिये. याकी उत्पत्ति ऐसैं जो अद्धापल्यके अर्द्ध
का असंख्यातवां भागका प्रमाणकूं विरलनकरि एक
रि घनांगुल देय परस्पर गुणें जो राशि निपजै सो

जगतश्रेणी है. बहुरि जगतश्रेणीका वर्ग सो जगतप्रतर कहिये बहुरि जगतश्रेणीका घन सो जगतघन कहिये. सात राजु चौडा लांबा ऊंचाकूं जगतघन कहिये. यह लोकके प्रदेशनिका प्रमाण है. सो भी मध्य असंख्यातका भेद है. ऐसैं ए गणित संक्षेप करि कही. बहुरि गणितका कथन विशेषकरि गोम्मटसार त्रिलोकसारतैं जानना. द्रव्यमें तो सूक्ष्म पुद्गल परमाणु, क्षेत्रमें आकाशके प्रदेश; कालमें समय, भावमें अविभागप्रतिच्छेद, इन च्यारूहीकूं परस्पर प्रमाण संज्ञा है. सो घाटिहूं घाटि तो ये हैं अर बाधिहूं बाधि द्रव्यमें तो महास्कन्ध, क्षेत्रमें आकाश, कालमें तीनू काल, भावमें केवल ज्ञान, ऐसा जानना. बहुरि कालमें एक आवलीके जघन्य युक्तासंख्यात समय हैं. अर असंख्यात आवलीका मुहूर्त्त है. तीस मुहूर्त्तका दिनराति है. तीस दिन रातिका एक मास है. बारह मासका एक वर्ष है. इत्यादि जानना।

आगें प्रथम ही लोकाकाशका स्वरूप कहै हैं—

सव्वायासमणंतं तस्स य बहुमज्झिसंठियो लोओ।
सो केण वि णेय कओ ण य धरिओ हरिहरादीहिं॥

भाषार्थ—आकाश द्रव्य है ताका क्षेत्र प्रदेश अनन्त है. ताका बहुमध्यदेश कहिये बीचही बीचका क्षेत्र, ताविषै तिष्ठै ऐसा लोक है. सो काहू करि कीया नाहीं है तथा काई हरिहरादिकरि धारया, वा राख्या नाहीं है. भावार्थ—केई अन्य मतमें कहै हैं जो लोककी रचना ब्रह्मा करै है. नारायण रक्ष

करै है. शिव संहार करै है. तथा कच्छिपा तथा शेष नाग धारया है. तथा प्रलय होय है, तब सर्वशून्य होय जाय है. ब्रह्मकी सत्ता मात्र रह जाय है. बहुरि ब्रह्मकी सत्तामेंसूं सृष्टिकी रचना होय है. इत्यादि अनेक कल्पित कहै हैं. ताका निषेध इस सूत्रतैं जानना. लोक काहू करि कीया नाहीं, काहू करि धारया नाहीं. काहू करि विनसै नाहीं. जैसा है तैसा ही सर्वज्ञने देख्या है सो वस्तु स्वरूप है।

आगें इस लोकविषै कहा है सो कहै हैं—

अण्णोण्णपवेसेण य दव्वाणं अत्थणं भवे लोओ ।
दव्वाणं णिच्चत्तो लोयस्स वि मुणह णिच्चत्तं ११६

भावार्थ—जीवादिक द्रव्यनिका परस्पर एक क्षेत्रावगाहरूप प्रवेश कहिये मिलापरूप अवस्थान सो लोक है. जे द्रव्य हैं ते नित्य हैं. याहीतैं लोक भी नित्य है ऐसा जानहु. भावार्थ—षट्द्रव्यनिका समुदाय सो लोक है. ते द्रव्य नित्य हैं, तातैं लोक भी नित्य ही है।

आगें कोई तर्क करै जो नित्य है तो उपजै विनसै कौन है, ताका समाधानका सूत्र कहै हैं—

परिणामसहावादो पडिसमयं परिणमंति दव्वाणि ।
तेसिं परिणामादो लोयस्स वि मुणह परिणामं ॥

भावार्थ—या लोकमें छह द्रव्य हैं ते परिणामस्वभाव हैं यातैं समय समय परिणमै हैं तिनके परिणमैतैं लोककै भी

परिणाम जानहु, भावार्थ—द्रव्य हैं. ते परिणामी हैं. लोक है सो द्रव्यनिका समुदाय है यातैं द्रव्यनिकै परिणाम है सो लोककै भी परिणाम आया. कोई पूछै परिणाम कहा? ताका उत्तर—परिणाम नाम पर्यायका है. जो एक अवस्था रूप द्रव्य था सो पलटि दूजी अवस्थारूप होना. जैसैं माटी पिंडअवस्थारूप थी सो पलटि करि घट वण्या. ऐसैं परिणामका स्वरूप जानना. सो लोकका आकार तौ नित्य है. अर द्रव्यनिकी पर्याय पलटै है या अपेक्षा परिणाम कहिये है।

आगैं या लोकका आकार तौ नित्य है. ऐसा धारि व्यासादि कहै हैं—

सत्तेक्कु पंच इक्का मूले मज्झे तहेव वंभंते।
लोयंते रज्जुओ पुव्वावरदो य वित्थारो ॥ ११८ ॥

भावार्थ—लोकका पूर्व पश्चिम दिशाविषै मूल कहिये नीचैं तौ सात राजू विस्तार है. वहुरि मध्य कहिये वीचि एक राजूका विस्तार है. वहुरि ऊपरि ब्रह्म स्वर्गके अंत पांच राजूका विस्तार है. वहुरि लोकका अन्तविषै एक राजूका विस्तार है. भावार्थ—लोक नीचले भागविषै पूर्व पश्चिमदिशाविषै सात राजू चौडा है. तहांतैं अनुक्रमतैं घटता घटता मध्य लोक एक राजू रह्या. पीछैं ऊपरि अनुक्रमतैं वधता २ ब्रह्मस्वर्गताई पांच राजू चौडा भया. पीछैं घटतै घटतै अंतमें एक राजू रह्या. ऐसैं होतैं उपोट मृदंग ऊभी धरिये जैसा आकार भया।

आगें दक्षिण उत्तर विस्तार वा उँचाईकूं कहे हैं—

दक्खिणउत्तरदो पुण सत्त वि रज्जू हवेदि सव्वत्थ।
उड्ढो चउदसरज्जू सत्त वि रज्जूवणो लोओ ११९

भाषार्थ—लोक है सो दक्षिण उत्तर दिशाकूं सर्व ऊंचाई पर्यंत सात राजू विस्तार है. ऊंचा चौदह राजू है। बहुरि सात राजूका घनप्रमाण है. भावार्थ—दक्षिण उत्तरकूं सर्वत्र सात राजू चौडा है. ऊंचा चौदै राजू है. ऐसा लोकका घनफल करिये तब तीनसै तियालिस ( ३४३ ) राजू होय है. समान क्षेत्रखंडकरि एक राजू चौडा लांबा ऊंचा खंड करिये ताकूं घनफल कहिये ।

आगें ऊंचाईके भेद कहै हैं,—

मेरुस्स हिट्ठभाये सत्त वि रज्जू हवे अहोलोओ।
उड्ढम्हि उड्ढलोओ मेरुसमो मज्झिमो लोओ॥१२०॥

भाषार्थ—मेरुके नीचे भागविषै सात राजू अधोलोक है. ऊपरि सात राजू ऊर्ध्वलोक है. मेरुसमान मध्य लोक है. भावार्थ—मेरुके नीचें सात राजू अधोलोक. ऊपर सात राजू ऊर्ध्व लोक, बीचमें मेरुसमान लाख योजनका मध्यलोक है. ऐसैं तीन लोकका विभाग जानना ।

आगें लोक शब्दका अर्थ कहै हैं,—

दंसंति जत्थ अत्था जीवादीया स भण्णदे लोओ।
सिहरम्मि सिद्धा अंतविहीणा विरायंति ॥१२१

भावार्थ—जहाँ जीव आदिक पदार्थ देखिये हैं सो लोक कहिये। ताके शिखर ऊपरि अनन्ते सिद्ध विराजै हैं. भावार्थ—'लोक' दर्शने नामा व्याकरणमें धातु है. ताकै आश्रयार्थविषै अकार प्रत्ययतैं लोक शब्द निपजै है. तातैं जामें जीवादिक द्रव्य देखिये. ताकूं लोक कहिये. बहुरि ताके ऊपरि अन्तविषै कर्म रहित शुद्धजीव अनन्त गुणनिकरि सहित अविनाशी अनंत विराजै हैं।

आगें या लोकविषै जीव आदि छह द्रव्य हैं तिनका वर्णन करै हैं. तहां प्रथम ही जीव द्रव्यकूं कहै हैं।

एइंदियेहिं भरिदो पंचपयारेहिं सव्वदो लोओ।
तसनाडीए वि तसा ण वाहिरा होंति सव्वत्थ १२२

भावार्थ—यह लोक पृथ्वी अप् तेज वायु वनस्पति ऐसैं पंचप्रकार कायके धारक जे एकेंद्रिय जीव तिनकरि सर्वत्र भरया है. बहुरि त्रस जीव त्रस नाडीविषै ही हैं. वाहिर नाहीं हैं। भावार्थ—जीव द्रव्य उपयोग लक्षणवाला समान परिणामकी अपेक्षा सामान्य करि एक है. तथापि वस्तु भिन्नप्रदेशकरि अपने २ स्वरूपकूं लीये न्यारे न्यारे अनन्ते हैं. तिनमें जे एकेंद्रिय हैं. ते तो सर्व लोकमें है बहुरि वेन्द्रिय तेन्द्रिय चतुरिंद्रिय पंचेंद्रिय ऐसे त्रस हैं ते त्रस नाडी विषैही हैं।

आगें वादर सूक्ष्मादि भेद कहै हैं,—

पुण्णा वि अपुण्णा वि य थूला जीवा हवंति

छविहा सुहमा जीवा लोयायासे वि सव्वत्थ १२३॥

भाषार्थ–जे जीव आधारसहित हैं, ते तौ स्थूल कहिये वादर हैं. ते पर्य्याप्त हैं. बहुरि अपर्याप्त भी हैं। बहुरि जे लोकाकाशविषै सर्वत्र अन्य आधाररहित हैं ते जीव सूक्ष्म हैं ते छह प्रकार हैं।

आगें वादर सूक्ष्म कूंन कूंन हैं सो कहै हैं,—

पुढवीजलग्गिवाऊ चत्तारि वि होंति वायरा सुहमा।
साहारणपत्तेया वणप्फदी पंचमा दुविहा॥ १२४॥

भाषार्थ–पृथ्वी जल अग्नि वायु ये च्यारि तौ वादर भी हैं तथा सूक्ष्म भी हैं बहुरि पांचई वनस्पति है सो प्रत्येक साधारण भेद करि दोय प्रकार है।

आगें साधारण प्रत्येककैं सूक्ष्मपणाकूं कहै हैं,—

साहारणा वि दुविहा अणाइकाला य साइकाला य।
ते वि य वादरसुहमा सेसा पुण वायरा सव्वे १२५॥

भाषार्थ–साधारण जीव दोय प्रकार हैं. अनादिकाला कहिये नित्य निगोद सादिकाला कहिये इतर निगोद ते दोऊं ही वादर भी हैं सूक्ष्म भी हैं बहुरि शेष कहिये प्रत्येक वनस्पती वा त्रस ते सर्व वादर ही हैं। भावार्थ–पूर्वं कह्या जो सूक्ष्म छह प्रकार हैं ते पृथ्वी जल तेज वायु तौ पहली गाथा में कहे. बहुरि नित्य निगोद इतर निगोद ए दोय ऐसैं छह

प्रकार तौ सूक्ष्म जानने. बहुरि छह प्रकार तौ ए रहे अर अवशेष ते सर्व बादर जानने ।

आगें साधारणका स्वरूप कहै हैं,—

साहारणाणि जेसिं आहारुस्सासकायआऊणि ।
ते साहारणजीवा णंताणंतप्पमाणाणं ॥ १२६ ॥

भावार्थ—जिन अनन्तानन्त प्रमाण जीवनकै आहार उच्छ्वास काय आयु साधारण कहिये समान हैं. ते साधारण जीव हैं । उक्तं च गोमट्टसारे—

"जत्थेक्कु मरइ जीवो तत्थ दु मरणं हवे अणंताणं
चंकमइ जत्थ एक्को चंकमणं तत्थ णंताणं"

भावार्थ—जहां एक साधारण जीव निगोदिया उपजै तहां ताकी साथ ही अनन्तानन्त उपजैं अर एक निगोद जीव मरैं ताके साथ ही अनंतानन्तप्रमान आयुवाला मरै है. भावार्थ—एक जीव आहार करै तेई अनन्तानन्त जीवनिका आहार, एक जीव स्वासोच्छ्वास ले सो ही अनन्तानन्त जीवनिका स्वासोच्छ्वास, एक जीवका शरीर सोई अनन्तानन्तका शरीर, एक जीवका आयु सोही अनन्तानन्तका आयु ऐसें समान है तातैं साधारण नाम जानना ।

आगें सूक्ष्म बादरका स्वरूप कहैं हैं,—

ण य जेसिं पडिखलणं पुढवीतोएहिं अग्गिवाएहिं ।
ते जाण सुहुमकाया इयरा पुण थूलकाया य १२७

भाषार्थ–जिन जीवनिका पृथ्वी जल अग्नि पवन इन करि रुकना न होय ते जीव सूक्ष्म जानहु. बहुरि जे इन करि रुकैं ते बादर जानहु ।

आगें प्रत्येककूं वा त्रसकूं कहै हैं,—

पत्तेया वि य दुविहा णिगोदसहिदा तहेव रहिया य ।
दुविहा होंति तसा वि य वितिचउरक्खा तहेव पंचक्खा

भाषार्थ–प्रत्येक वनस्पती भी दोय प्रकार है. ते निगोदसहित हैं तैसैं ही निगोदरहित हैं. बहुरि त्रस भी दोय प्रकार हैं. वेन्द्रिय तेन्द्रिय चतुरिन्द्रिय ऐसैं तो विकलत्रय बहुरि तैसैं ही पंचेन्द्रिय हैं. भावार्थ–जिस वनस्पतीके आश्रय निगोद पाइये सो तौ साधारण है, याकूं सप्रतिष्ठित भी कहिये. बहुरि जिसकै आश्रय निगोद नाहीं ताकूं प्रत्येक ही कहिये. याहीको अप्रतिष्ठित भी कहिये है. बहुरि वेन्द्रिय आदिककूं त्रस कहिये है. ※

---

※ मूलग्गपोरबीजा कंदा तह खंदबीज बीजरुहा ।
सम्मुच्छिमा य भणिया पत्तेयाणंतकाया य ॥ १ ॥

जो वनस्पति मूल अग्र पर्व कंद स्कंध बीजसे पैदा होती हैं तथा जो सम्मूर्च्छन हैं वे वनस्पतियां सप्रतिष्ठित हैं तथा अप्रतिष्ठित भी हैं । भावार्थ–बहुत सी वनस्पतियां मूलसे पैदा होती हैं जैसे अदरक, हल्दी आदि । वनस्पति अग्र भागसे उत्पन्न होती हैं जैसे गुलाब ।

भाषार्थ—पञ्चेन्द्रिय तिर्यंच हैं ते जलचर थलचर नभचर ऐसें तीन प्रकार हैं. वहुरि प्रत्येक मनकरि युक्त सैनी भी हैं तथा मनरहित असैनी भी हैं।

वहुरि इनके भेद कहे हैं,—

ते वि पुणो वि य दुविहा गब्भजजम्मा तहेव सम्मत्था
भोगभुवा गब्भभुवा थलयरणहगामिणो सण्णी १३०

भाषार्थ—ते छह प्रकार कहे जे तिर्यंच ते गर्भज भी हैं वहुरि सम्मूर्च्छन भी हैं वहुरि इनविषै जे भोगभूमिके तिर्यंच हैं ते थलचर नभचर ही हैं. जलचर नाहीं हैं वहुरि ते सैनी ही हैं असैनी नाही हैं।

आगें अठयाणवे जीव समासनिकूं तथा तिर्यंचके पिच्यासी भेदनिकूं कहै हैं—

---

कन्द (सूरण आदि) छाल, नई कोंपल, टहनी, फूल, फल, तथा वीज तोडने पर वरावर टूट जांय वे सप्रतिष्ठित प्रत्येक हैं तथा जो वरावर न टूटें वे अप्रतिष्ठित प्रत्येक हैं ॥ ३ ॥

कंदस्स च मूलस्स व सालाखंधस्स वा वि बहुलतरी।
छल्ली सा णंतजिया पत्तेयजिया तु तणुकदरी ॥ ४ ॥

जिन वनस्पतियोंके कन्द, मूल, टहनी, स्कंधकी छाल मोटी है उन्हें सप्रतिष्ठित प्रत्येक ( अनंत जीवोंका स्थान ) जानना चाहिये और जिनकी छाल पतली हो उन्हें अप्रतिष्ठित प्रत्येक मानना चाहिये ॥ ४ ॥

अट्ठ वि गब्भज दुविहा तिविहा सम्मुच्छिणो वि तेवीसा
इदि पणसीदी भेया सव्वेसिं होंति तिरियाणं १३१

भावार्थ—सर्व ही तिर्यंचनिके पिच्यासी भेद हैं. तहां गर्भजके आठ ते तौ पर्य्याप्त अपर्य्याप्तकरि सोलह भये. बहुरि सम्मूर्च्छनके तेईस भेद, ते पर्य्याप्त अपर्य्याप्त लब्ध्यपर्याप्तकरि गुणहत्तरि भये ऐसें पिच्यासी हैं. भावार्थ—पूर्वे कहे जे कर्मभूमिके गर्भज जलचर थलचर नभचर ते सैनी असैनी करि छह भेद, बहुरि भोगभूमिके थलचर नभचर सैनी ये आठही पर्य्याप्त अपर्य्याप्त भेदकरि सोलह, बहुरि सम्मूर्च्छनके पृथ्वी अप् तेज वायु नित्य निगोदके सूक्ष्म वादरकरि बारह बहुरि वनस्पती सप्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित ऐसें चौदह तौ एकेन्द्रिय भेद बहुरि विकलत्रय तीन, बहुरि पंचेन्द्रिय कर्मभूमिके जलचर थलचर नभचर सैनी असैनी करि छह भेद, ऐसें सब मिलि तेईस. तार्कै पर्य्याप्त अपर्य्याप्त लब्ध्यपर्य्याप्तकरि गुणहत्तरि ऐसें पच्यासी होय हैं ॥ १३१ ॥

आगें मनुष्यनिके भेद कहे हैं—

अज्जव मिलेच्छखंडे भोगभूमीसु वि कुभोगभूमीसु
मणुआ हवंति दुविहा णिव्वित्ति अपुण्णगा पुण्णा॥

भावार्थ—मनुष्य आर्यखंडविषे म्लेच्छखंड विषैं तथा भोगभूमिविषैं तथा कुभोगभूमिविषे हैं ते च्यारि ही पर्याप्त निर्वृत्ति अपर्याप्तकरि आठ भेद भये ॥ १३२ ॥

सम्मुच्छणा मणुस्सा अज्जवखंडेसु होंति णियमेण
ते पुण लद्धिअपुण्णा णारय देवा वि ते दुविहा १३३

भाषार्थ—सम्मूर्च्छन मनुष्य आर्यखंडविषै ही नियम करि होय हैं. ते लब्ध्यपर्याप्तक ही हैं. बहुरि नारक तथा देव ते पर्याप्त तथा निर्वृत्यपर्याप्तके भेद करि च्यारि भेद हैं. ऐसैं तिर्यचके भेद पिच्यासी, मनुष्यके नव नारक देवके च्यारि, सर्व मिलि अठयाणवैं भेद भये. बहुतनिको समानता करि भेले करि कहिये संक्षेप करि संग्रह करि कहिये ताकूं समास कहिये है. सो यहां बहुत जीवनिका संक्षेप करि कहना सो जीवसमास जानना. ऐसैं जीव समास कहे।

आगैं पर्याप्तिका वर्णन करै हैं,—

आहारसरीरिंदियणिस्सासुस्सासहासमणसाण।
परिणइ वावारेसु य जाओ छच्चेव सत्तीओ ॥ १३४ ॥

भाषार्थ—जो आहार शरीर इन्द्रिय श्वासोश्वास भाषा मन इनका परिणमनकी प्रवृत्तिविषैं सामर्थ्य सो छह प्रकार है. भावार्थ—आत्माकै यथायोग्य कर्मका उदय होतैं आहारादिक ग्रहणकी शक्तिका होना सो शक्तिरूप पर्याप्ति कहिये सो छह प्रकार है।

आगैं शक्तिका कार्य कहै हैं।

तस्सेव कारणाणं पुग्गलखंधाण जा हु णिप्पत्ति।
पज्जत्ती भण्णदि छब्भेया जिणवरिंदेहिं ॥ १३५ ॥

भावार्थ—तिस शक्ति मद्दत्तिकी पूर्णताकूं कारण जे पुद्गलके स्कंध तिनकी प्रगटपणें निष्पत्ति कहिये पूर्णता होना ताकूं पर्याप्ति ऐसा जिनेन्द्रदेवने कह्या है।

आगें पर्याप्त निर्वृत्यपर्याप्तके कालकूं कहै हैं,—

पंज्जत्तिं गिह्णंतो मणुपज्जत्तिं ण जाव समणोदि।

ता णिव्वत्तिअपुण्णो मणुपुण्णो भण्णदे पुण्णो ॥१३६॥

भावार्थ—यह जीव पर्याप्तिकूं ग्रहण करता संता जेतें मनःपर्याप्तिकूं पूर्ण न करै तेतें निर्वृत्यपर्याप्त कहिये. बहुरि जब मनःपर्याप्ति पूर्ण होय तब पर्याप्त कहिये. भावार्थ—इहां सैनी पंचेन्द्रिय जीवकी अपेक्षा मनमें धारि ऐसें कथन किया है. अन्य ग्रन्थनिमें जेतें शरीर पर्याप्ति पूर्ण न होय तेतें निर्वृत्यपर्याप्त है. ऐसें कथन सर्व जीवनिका कह्या है।

आगें लब्ध्यपर्याप्तका स्वरूप कहै हैं,—

उस्सासट्ठारसमे भागे जो मरदि ण य समाणेदि।

एक्का वि य पज्जत्ती लद्धिअपुण्णो हवे सो दु ॥१३७॥

भावार्थ—जो जीव स्वासके अठारवें भागमें मरै एक भी पर्याप्ति पूर्ण न करै सो जीव लब्ध्यपर्याप्तिक कहिये।

---

१ पज्जत्तस्स य उदये णिय णिय पज्जत्ति णिट्ठिदो होदि।
जाव सरीरमपुण्णं णिव्वत्तिअपुण्णगो ताव ॥ १ ॥
तिण्णिसया छत्तीसा छावट्ठिसहस्सगाणि मरणाणि।
अंतोमुहुत्तकाले तावदिया चेव खुद्दभवा ॥ २ ॥
सीदी सट्ठी तालं वियले चउवीस होंति पंचक्खे।

आगें एकेन्द्रियादि जीवनिकै पर्याप्तिनिकी संख्या कहै हैं,

**लद्धिअपुण्णो पुण्णं पज्जत्ती एयक्खवियलसण्णीणं।**
**चदु पण छक्कं कमसो पज्जत्तीए वियाणेह॥ १३८॥**

भाषार्थ—एकेन्द्रियकै च्यारि विकलत्रयकै पांच, सैनी पंचेन्द्रियकै छह ऐसें क्रमतैं पर्याप्ति जाणूं वहुरि लब्ध्यपर्याप्तक है सो अपर्याप्तक है. याकै पर्याप्ति नाहीं. भावार्थ—एकेन्द्रियादिककै क्रमतैं पर्याप्ति कहे. इहां असैनीका नाम लीया नहीं तहां तो सैनीकै छह असैनीकै पांच जानने. वहुरि निर्वृत्यपर्याप्त ग्रहण कीये ही हैं पूर्ण होसी ही तातैं जो संख्या कही है सो ही है. वहुरि लब्ध्यपर्याप्त यद्यपि ग्रहण कीया है तथापि पूर्ण होय शक्या नाहीं, तातैं ताकूं अपूर्ण ही कह्या ऐसा सूचै है. ऐसें पर्याप्तिका वर्णन कीया।

आगें प्राणनिका वर्णन करै हैं तहां प्रथमही प्राणनिका स्वरूप वा संख्या कहै हैं—

**मणवयणकायइंदियणिस्सासुस्सासआउरुदयाणं।**
**जेसिं जोए जम्मदि मरदि विओगम्मि ते वि दह पाणा**

---

छावट्ठि ६ सहस्सा सयं च बत्तीसमेयक्खे॥ ३॥
पुढविदगागणिमारुदसाहारणथूलसुहुमपत्तेया।
एदेसु अपुण्णेसु य एक्केक्के बारखं छक्कं॥ ४॥

पर्याप्तिनामा नामकर्मके उदयसे अपनी अपनी पर्याप्ति ... है। जब तक शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं होती तब तक

भावार्थ- जो मन वचन काय इन्द्रिय स्वासोस्वास आयु है तिनके संयोगतैं तो उपजै जीवै, बहुरि इनिके वियोगतैं मरै ते प्राण कहिये. ते दश हैं. भावार्थ-जीव ऐसा

---

उसको निर्वृत्त्यपर्याप्तक कहते हैं । भावार्थ-जो पर्याप्ति कर्मका उदय होनेसे लब्धि ( शक्ति ) की अपेक्षासे पर्याप्त है किंतु निर्वृत्ति ( शरीरपर्याप्ति बनने ) की अपेक्षा पूर्ण नहीं है वह निर्वृत्त्यपर्याप्तक कहलाता है ॥ १ ॥

लब्ध्यपर्याप्तक जीवके एक अंतर्मुहूर्तमें ६६३३६ क्षुद्र-जन्म होते हैं और उतने ही क्षुद्रमरण होते हैं ॥ २ ॥

अंतर्मुहूर्तकालमें द्वीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक ८०, त्रीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक ६०, चतुरिंद्रिय लब्ध्यपर्याप्तक ४०, और पंचेंद्रिय लब्ध्यपर्याप्तक २४ मरण करते हैं तथा जन्म लेते हैं। एकेंद्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीव उतने ही समयमें ६६१३२ जन्म मरण करते हैं (इसप्रकार एकेंद्रिय, विकलेंद्रिय तथा पंचेंद्रियके समस्त भवोंको मिलानेसे ६६३३६ क्षुद्रभव होते हैं ) ॥३॥

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, ये चारों ही बादर और सूक्ष्म इस प्रकार आठ भेद हुए तथा बादरसाधारण, सूक्ष्मसाधारण और प्रत्येक इस प्रकार तीन भेद वनस्पतिके हुए। इन ग्यारह प्रकारके एकेंद्रिय जीवोंमें एक एक जीवके एक अंतर्मुहूर्तमें ६०१२ जन्म मरण होते हैं इसप्रकार सबोंका जोड़ करनेसे एकेंद्रिय जीवोंके ६६१३२ भव होते हैं ॥ ४ ॥

प्राणधारण अर्थ है सो व्यवहार नयकरि दश प्राण हैं. तिनमें यथायोग्य प्राणसहित जीवै ताकूं जीवसंज्ञा है ।

आगें एकेन्द्रियादि जीवनिकैं प्राणनिकी संख्या कहै हैं,

एयक्खे चदुपाणा वितिचउरिंदिय असण्णिसण्णीणं।
छह सत्त अट्ठ णवयं दह पुण्णाणं कमे पाणा ॥ १४० ॥

भाषार्थ—एकेन्द्रियकैं च्यारि प्राण हैं वेन्द्रिय, तेन्द्रिय चतुरिन्द्रिय, असैनी पंचेन्द्रिय, सैनी पंचेन्द्रियनिकै, पर्याप्तिनिकैं अनुक्रमतैं छह सात आठ नव दश प्राण हैं ए प्राण पर्याप्त अवस्थाविषै कहे ॥ १४० ॥

आगें इनिही जीवनिकै अपर्याप्त अवस्थाविषै कहै हैं—

दुविहाणमपुण्णाणं इगिवितिचउरक्ख अंतिमदुगाणं
तिय चउ पण छह सत्त य कमेण पाणा मुणेयव्वा

भाषार्थ—दोय प्रकारके अपर्याप्त जे एकेंद्रिय, द्वींद्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय असैनी तथा सैनी पंचेंद्रियनिके तीन च्यारि पांच छह सात ऐसैं अनुक्रमतैं प्राण जानने. भावार्थ—निर्वृत्यपर्याप्त लब्ध्यपर्याप्त एकेंद्रियके तीन, वेइन्द्रियके च्यारि तेइन्द्रियके पांच, चतुरिन्द्रियके छह, असैनी सैनी पंचेंद्रियके सात ऐसैं प्राण जानने ।

आगें विकलत्रय जीवनिका ठिकाणा कहैं हैं—

वितिचउरक्खा जीवा हवंति णियमेण कम्मभूमीसु ।

चरमे दीवे अद्धे चरमसमुद्दे वि सव्वेसु ॥ १४२ ॥

भाषार्थ—द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, जे विकलत्रय कहावैं ते जीव नियमकरि कर्मभूमिविषै ही होय हैं तथा अंतका आधा द्वीप तथा अंतका सारा समुद्रविषै होय हैं. भोगभूमिविषै न होय हैं. भावार्थ—पंच भरत पंच ऐरावत पंच विदेह ए कर्मभूमिके क्षेत्र हैं तथा अंतका स्वयंप्रभ द्वीपके बीचि स्वयंप्रभ पर्वत है तातैं परै आधा द्वीप तथा अंतका स्वयंभूरमण सारा समुद्र एती जायगां विकलत्रय हैं और जायगा नाहीं ॥ १४२ ॥

आगे अढाई द्वीपतैं बाह्य तिर्यंच हैं तिनकी व्यवस्था हैमवत पर्वत सारिखी है ऐसैं कहै हैं—

माणुसखित्तस्स बहिं चरमे दीवस्स अद्धयं जाव ।
सव्वत्थे वि तिरिच्छा हिमवदतिरिएहिं सारित्था ॥

भाषार्थ—मनुष्य क्षेत्रतैं बारै मानुषोत्तर पर्वततैं परें अंतका द्वीप जो स्वयंप्रभ ताका आधाके उरैं बीचिके सर्व द्वीप समुद्रके तिर्यंच हैं ते हैमवत क्षेत्रके तिर्यंचनि सारिखे हैं.

भावार्थ—हैमवतक्षेत्रमें जघन्य भोगभूमि है. सो मानुषोत्तर पर्वततैं परें असंख्यात द्वीप समुद्र आधा स्वयंप्रभ नामा अंतका द्वीपताईं समस्तमें जघन्य भोगभूमिकी रचना है वहांके तिर्यंचनिकी आयु काय हैमवत क्षेत्रके तिर्यंचनिसारिखी है ।

आगें जलचर जीवनिका ठिकाणा कहै हैं—

लवणोए कालोए अंतिमजलहिम्मि जलयरा संति।

सेससमुद्देसु पुणो ण जलयरा संति णियमेण॥१४४॥

भापार्थ—लवणोद समुद्रविषै बहुरि कालोद समुद्रविषै तथा अंतका स्वयंभूरमण समुद्रविषै जलचर जीव हैं. बहुरि अवशेष बीचिके समुद्रनिविषै नियमकरि जलचर जीव नाहीं हैं।

आगें देवनिके ठिकाणे कहै हैं. तहां प्रथम भवनवासी व्यंतरनिके कहै हैं—

खरभायपंकभाए भावणदेवाण होंति भवणाणि।

वितरदेवाण तहा दुह्लं पि य तिरियलोए वि॥१४५॥

भापार्थ—खरभाग पंकभागविषै भवनवासीनिके भवन हैं तथा व्यन्तर देवनिके निवास हैं. बहुरि इन दोउनिके तिर्यग्लोकविषै भी निवास हैं. भावार्थ—पहली पृथ्वी रत्नप्रभा एक लाख अस्सी हजार योजनकी मोटी, ताके तीन भाग तामें खरभाग सोलह हजार योजनका, ताविषै असुरकुमार विना नवकुमार भवनवासीनिके भवन हैं. तथा राक्षसकुल विना सात कुल व्यंतरनिके निवास हैं. बहुरि दूसरा पंकभाग चौरासी हजार योजनका तामें असुरकुमार भवनवासी तथा राक्षसकुल व्यंतर वसै हैं. बहुरि तिर्यग्लोक जो मध्यलोक असंख्याते द्वीप समुद्र तिनिमें भवनवासीनिके भी भवन हैं. बहुरि व्यन्तरनिके भी निवास हैं।

आगें ज्योतिषी तथा कल्पवासी तथा नारकीनिकी वसती कहै हैं—

जोइसियाण विमाणा रज्जूमित्ते वि तिरियलोए त्रि ।
कप्पसुरा उड्ढह्मि य अहलोए होंति णेरइया ॥१४६॥

भावार्थ—ज्योतिषी देवनिके विमान एक राजू प्रमाण तिर्यग्लोकविषै असंख्यात द्वीप समुद्र हैं, तिनके ऊपरि तिष्ठै हैं. बहुरि कल्पवासी ऊर्ध्वलोकविषै हैं. बहुरि नारकी अधोलोकविषै हैं ।

आगें जीवनिकी संख्या कहै हैं, तहां तेजवातकायके जीवनिकी संख्या कहै हैं—

बादरपज्जत्तिजुदा घणआवलिया असंखभागो दु ।
किंचूणलोयमित्ता तेऊ वाऊ जहाकमसो ॥ १४७ ॥

भावार्थ—अग्निकाय वातकायके बादरपर्याप्तसहित जीव हैं ते घन आवलीके असंख्यातवें भाग तथा कुछ घाटि लोकके प्रदेशप्रमाण यथा अनुक्रम जानने. भावार्थ—अग्निकायके घनआवलीके असंख्यातवें भाग, वातकायके कुछ एक घाटि लोकप्रदेशप्रमाण हैं ।

आगें पृथ्वी आदिकी संख्या कहै हैं—

पुढवीतोयसरीरा पत्तेया वि य पइट्ठिया इयरा ।
होंति असंखा सेढी पुण्णापुण्णा य तह य तसा १४८

भावार्थ—पृथ्वीकायिक अप्कायिक प्रत्येकवनस्पतिकायिक सप्रतिष्ठित वा अप्रतिष्ठित तथा त्रस ये सारे पर्याप्त अपर्याप्त जीव हैं ते जुदे जुदे असंख्यात जगत्श्रेणीप्रमाण

बादरलद्धिअपुण्णा असंखलोया हवंति पत्तेया।
तह य अपुण्णा सुहुमा पुण्णा वि य संखगुणगुणिया

भावार्थ–प्रत्येक वनस्पति तथा बादर लब्ध्यपर्याप्तक जीव हैं ते असंख्यात लोकप्रमाण हैं. ऐसें ही सूक्ष्मअपर्याप्तक असंख्यात लोकप्रमाण हैं बहुरि सूक्ष्मपर्याप्तक जीव हैं ते संख्यातगुणे हैं।

सिद्धा संति अणंता सिद्धाहिंतो अणंतगुणगुणिया।
होंति णिगोदा जीवा भाग अणंता अभव्वा य १५०

भावार्थ–सिद्धजीव अनन्ते हैं बहुरि सिद्धनितें अनन्त गुणें निगोद जीव हैं बहुरि सिद्धनिके अनन्तवे भाग अभव्य जीव हैं।

सम्मुच्छिया हु मणुया सेढियसंखिज्ज भागमित्ता हु
गब्भजमणुया सव्वे संखिज्जा होंति णियमेण १५१

भावार्थ–सम्मूर्छन मनुष्य हैं ते जगतश्रेणीके असंख्यातवें भागमात्र हैं बहुरि गर्भज मनुष्य हैं ते नियमकरि संख्यात ही हैं।

आगें सान्तर निरन्तरकूं कहै हैं—

देवा वि णारया वि य लद्धियपुण्णा हु संतरा होंति
सम्मुच्छिया वि मणुया सेसा सव्वे णिरंतरया ॥१५२॥

भावार्थ–देव तथा नारकी बहुरि लब्ध्यपर्याप्तक बहुरि सम्मू-

र्छन मनुष्य एते तौ सान्तर कहिये अन्तरसहित हैं. अवशेष सर्व जीव निरन्तर हैं. भावार्थ—पर्यायसूं अन्य पर्याय पावै फेरि वाही पर्याय पावै जेते वीचमें अन्तर रहै ताकूं सांतर कहिये सो इहां नाना जीव अपेक्षा अन्तर कह्या है जो देव तथा नारकी तथा मनुष्य तथा लब्ध्यपर्याप्तक जीवकी उत्पत्ति कोई कालमें न होय सो तौ अन्तर कहिये. बहुरि अंतर न पड़ै सो निरन्तर कहिये. सो वैक्रियकमिश्रकाययोगी जे देव नारकी तिनिका तौ बारह मुहूर्त्तका कह्या है. कोई ही न उपजै तो बारह मुहूर्त्त तांई न उपजै. बहुरि सम्मूर्छन मनुष्य कोई ही न होय तो पल्यके असंख्यातवें भाग कालतांई न होय. ऐसें अन्य ग्रन्थनिमें कह्या है अवशेष सर्व जीव निरन्तर उपजै हैं।

आगें जीवनिकूं संख्याकरि अल्प बहुत कहै हैं—

मणुयादो णेरइया णेरइयादो असंखगुणगुणिया।
सव्वे हवंति देवा पत्तेयवणप्फदी तत्तो ॥ १५२ ॥

भावार्थ—मनुष्यनितें नारकी असंख्यात गुणे हैं. नारकीनितें सर्व देव असंख्यात गुणे हैं, देवनितें प्रत्येक वनस्पति जीव असंख्यात गुणे हैं।

पंचक्खा चउरक्खा लद्धियपुण्णा तहेव तेयक्खा।
वेयक्खा वि य कमसो विसेससहिदा हु सव्व संख

भावार्थ—पंचेन्द्रिय चोइन्द्रिय तेइन्द्रिय बेइंद्रिय ये

पर्याप्तक जीव संख्या करि विशेषाधिक हैं. किछू अधिककूं विशेषाधिक कहिये सो ए अनुक्रमतैं वधते २ हैं।

चउरक्खा पंचक्खा वेयक्खा तह य जाण तेयक्खा।
एदे पज्जत्तिजुदा अहिया अहिया कमेणेव॥ १५५॥

भाषार्थ—चौइन्द्रिय पंचेन्द्रिय वेइन्द्रिय तैसैं ही तेइन्द्रिय ये पर्याप्तिसहित जीव अनुक्रमतैं अधिक अधिक जानहु।

परिवाज्जिय सुहुमाणं सेसातिरिक्खाण पुण्णदेहाणं।
इक्को भागो होदि हु संखातीदा अपुण्णाणं॥१५६॥

भाषार्थ—सूक्ष्म जीवनिकूं छोडि अवशेष पर्याप्ततिर्यंच हैं तिनके एक भाग तौ पर्याप्त हैं. वहुरि वहुभाग असंख्याते अपर्याप्त हैं. भावार्थ—वादर जीवनिविषैं पर्याप्त थोरे हैं, अपर्याप्त वहुत हैं।

सुहुमापज्जत्ताणं एगो भागो हवेइ णियमेण।
संखिज्जा खलु भागा तेसिं पज्जत्तिदेहाणं॥१५७॥

भाषार्थ—सूक्ष्मपर्याप्त जीव संख्यात भाग हैं इनिमें अपर्याप्तक एक भाग हैं. भावार्थ—सूक्ष्म जीवनिमें पर्याप्त वहुत हैं अपर्याप्त थोरे हैं।

संखिज्जगुणा देवा अंतिमपटला दु आणदं जाव।
असंखगुणिदा सोहम्मं जाव पडिपडलं॥१५८॥

भाषार्थ—देव हैं ते अंतिम पटल जो अनुत्तर विमान

तातैं ले अर नीचै आनत स्वर्गका पटलपर्यंत संख्यातगुणे हैं. तापीछै नीचैं सौधर्म्मपर्यंत असंख्यातगुणे पटलपटलप्रति हैं।

सत्तमणारयहिंतो असंखगुणिदा हवंति णेरइया।
जावय पढमं णरयं वहुदुक्खा होंति हेट्ठट्ठा॥१५९॥

भावार्थ—सातवां नरकतैं ले ऊपरि पहला नरकतांई जीव असंख्यात २ गुणे हैं. वहुरि प्रथम नरकतैं ले नीचै २ वहुत दुःख हैं।

कप्पसुरा भावणया विंतरदेवा तहेव जोइसिया।
बे होंति असंखगुणा संखगुणा होंति जोइसिया॥

भावार्थ—कल्पवासी देवनितैं भवनवासी देव व्यंतरदेव ए दोय राशि तौ असंख्यात गुणी हैं। वहुरि ज्योतिषी देव व्यंतरनितैं संख्यातगुणे हैं॥ १६०॥

आगैं एकेंद्रियादिक जीवनिकी आयु कहै हैं—

पत्तेयाणं आऊ वाससहस्साणि दह हवे परमं।
अंतोमुहुत्तमाऊ साहारणसव्वसुहुमाणं॥ १६१॥

भावार्थ— प्रत्येक वनस्पतिकी उत्कृष्ट आयु दश हजार वर्षकी है. वहुरि साधारणनित्य, इतरनिगोद सूक्ष्म वादर तथा सर्व ही सूक्ष्म पृथ्वी अप तेज वातकायिक जीवनिकी उत्कृष्ट आयु अन्तर्मुहूर्तकी है॥ १६१॥

आगैं वादर जीवनिकी आयु कहै हैं,—

वावीस सत्तसहसा पुढवीतोयाण आउसं होदि।
अग्गीणं तिण्णि दिणा तिण्णि सहस्साणि वाऊणं १

पर्याप्तक जीव संख्या करि विशेषाधिक हैं. किछू अधिकक्कं विशेषाधिक कहिये सो ए अनुक्रमतें वधते २ हैं।

चउरक्खा पंचक्खा वेयक्खा तह य जाण तेयक्खा।
एदे पज्जत्तिजुदा अहिया अहिया कमेणेव॥१५५॥

भावार्थ—चौइन्द्रिय पंचेन्द्रिय वेइन्द्रिय तैसैं ही तेइन्द्रिय ये पर्याप्तिसहित जीव अनुक्रमतैं अधिक अधिक जानहु।

परिवज्जिय सुहुमाणं सेसातिरिक्खाण पुण्णदेहाणं।
इक्को भागो होदि हु संखातीदा अपुण्णाणं॥१५६॥

भावार्थ—सूक्ष्म जीवनिकूं छोडि अवशेष पर्याप्ततिर्यंच हैं तिनके एक भाग तौ पर्याप्त हैं. बहुरि बहुभाग असंख्याते अपर्याप्त हैं. भावार्थ—बादर जीवनिविषैं पर्याप्त थोरे हैं, अपर्याप्त बहुत हैं।

सुहुमापज्जत्ताणं एगो भागो हवेइ णियमेण।
संखिज्जा खलु भागा तेसिं पज्जत्तिदेहाणं॥१५७॥

भावार्थ—सूक्ष्मपर्याप्त जीव संख्यात भाग हैं इनिमें अपर्याप्तक एक भाग हैं. भावार्थ—सूक्ष्म जीवनिमें पर्याप्त बहुत हैं अपर्याप्त थोरे हैं।

संखिज्जगुणा देवा अंतिमपटला दु आणदं जाव।
तत्तो असंखगुणिदा सोहम्मं जाव पडिपडलं॥१५८॥

भावार्थ—देव हैं ते अंतिम पटल जो अनुत्तर विमान

तातैं ले अर नीचे आनत स्वर्गका पटलपर्यंत संख्यातगुणे हैं. तापीछै नीचैं सौधर्म्मपर्यंत असंख्यातगुणे पटलपटलप्रति हैं।

सत्तमणारयहिंतो असंखगुणिदा हवंति णेरइया।
जावय पढमं णरयं बहुदुक्खा होंति हेट्ठट्ठा॥१५९॥

भावार्थ—सातवां नरकतैं ले ऊपरि पहला नरकताईं जीव असंख्यात २ गुणे हैं. बहुरि प्रथम नरकतैं ले नीचे २ बहुत दुःख हैं।

कप्पसुरा भावणया वितरदेवा तहेव जोइसिया।
बे होंति असंखगुणा संखगुणा होंति जोइसिया॥

भावार्थ—कल्पवासी देवनितैं भवनवासी देव व्यंतरदेव ए दोय राशि तौ असंख्यात गुणी हैं। बहुरि ज्योतिषी देव व्यंतरनितैं संख्यातगुणे हैं॥ १६०॥

आगे एकेंद्रियादिक जीवनिकी आयु कहै हैं—

पत्तेयाणं आऊ वाससहस्साणि दह हवे परमं।
अंतोमुहुत्तमाऊ साहारणसव्वसुहुमाणं॥ १६१॥

भावार्थ— प्रत्येक वनस्पतिकी उत्कृष्ट आयु दश हजार वर्षकी है. बहुरि साधारणनित्य, इतरनिगोद सूक्ष्म बादर तथा सर्व ही सूक्ष्म पृथ्वी अप तेज वातकायिक जीवनिकी उत्कृष्ट आयु अन्तर्मुहूर्तकी है॥ १६१॥

आगे बादर जीवनिकी आयु कहै हैं,—

बावीस सत्तसहस्सा पुढवीतोयाण आउसं होदि।
अग्गीणं तिण्णि दिणा तिण्णि सहस्साणि व —

भाषार्थ—पृथ्वीकायिक जीवनिकी उत्कृष्ट आयु बाईस हजार वर्षकी है. अप्कायिक जीवनिकी उत्कृष्ट आयु सात हजार वर्षकी है. अग्निकायिक जीवनिकी उत्कृष्ट आयु तीन दिनकी है. वायुकायिक जीवनिकी उत्कृष्ट आयु तीन हजार वर्षकी है ॥ १६२ ॥

आगें वेन्द्रिय आदिककी आयु कहै हैं,—

वारसवास वियक्खे एगुणवण्णा दिणाणि तेयक्खे ।
चउरक्खे छम्मासा पंचक्खे तिण्णि पल्लाणि ॥ १६३ ॥

भाषार्थ—वेइन्द्रिय जीवनिकी उत्कृष्ट आयु बारह वर्षकी है. तेइन्द्रिय जीवनिकी उत्कृष्ट आयु गुणचास दिनकी है. चौइन्द्रिय जीवनिकी उत्कृष्ट आयु छह महीनाकी है. पंचेन्द्रिय जीवनिकी उत्कृष्ट आयु भोगभूमिकी अपेक्षा तीन पल्यकी है ॥

आगें सर्व ही तिर्यंच अर मनुष्यनिकी जघन्य आयु कहै हैं—

सव्वजहण्णं आऊ लद्धियपुण्णाण सव्वजीवाणं ।
मज्झिमहीणमुहुत्तं पज्जत्तिजुदाण णिक्किट्ठं ॥ १६४ ॥

भाषार्थ—लब्ध्यपर्याप्तक सर्व जीवनिकी जघन्य आयु मध्यमहीनमुहूर्त्त है. सो यह क्षुद्रभवमात्र जाननी. एक उस्वासके अठारहवें भाग मात्र है. बहुरि जिनकै लब्ध्यपर्याप्ति होय, ऐसे कर्मभूमिके तिर्यंच मनुष्य तिन सर्व ही पर्याप्त जीवनिकी जघन्य आयु भी मध्यहीनमुहूर्त्त है. सो यह पहलेतैं बडा मध्यअन्तर्मुहूर्त्त है ।

अब देवनारकीनिकी आयु कहै हैं.—

देवाण णारयाणं सायरसंखा हवंति तेतीसा ।
उक्किट्ठं च जहण्णं वासाणं दस सहस्साणि ॥१६५॥

भाषार्थ—देवनिकी तथा नारकी जीवनिकी उत्कृष्ट आयु तेतीस सागरकी है. बहुरि जघन्य आयु दस हजार वर्षकी है. भावार्थ—यह सामान्य देवनिकी अपेक्षा कही है विशेष त्रैलोक्यसार आदि ग्रंथनितैं जाननी ॥ १६५ ॥

आगें एकेन्द्रिय आदि जीवनिकी शरीरकी अवगाहना उत्कृष्ट जघन्य दश गाथानिमैं कहै हैं,—

अंगुलअसंखभागो एयक्खचउक्कदेहपरिमाणं ।
जोयणसहस्समहियं पउमं उक्कस्सयं जाण ॥१६६॥

भाषार्थ—एकेन्द्रिय चतुष्क कहिये पृथ्वी अप तेज वायु कायके जीवनिकी अवगाहना जघन्य तथा उत्कृष्ट घन अंगुलके असंख्यातवें भाग है. इहां सूक्ष्म तथा बादर पर्याप्तक अपर्याप्तकका शरीर छोटा बडा है. तोऊ घनांगुलके असंख्यातवें भाग ही सामान्यकरि कह्या. विशेष गोम्मटसारतें जानना. बहुरि अंगुल उत्सेधअंगुल आठ यव प्रमाण लेणां. प्रमाणांगुल न लेणां. बहुरि प्रत्येक वनस्पती कायविषै उत्कृष्ट अवगाहनायुक्त कमल है ताकी अवगाहना किछू अधिक हजार योजन है ॥ १६६ ॥

बायसजोयण संखो कोसतियं गुम्मिया भमरो

आगें भरत ऐरावत क्षेत्रविषै कालकी अपेक्षातैं मनुष्यनिका शरीरकी ऊंचाई कहै हैं-

अवसप्पिणिए पढमे काले मणुया तिकोसउच्छेहा ।
छट्ठस्सवि अवसाणे हत्थपमाणा विवत्था य ॥१७२॥

भावार्थ—अवसर्पिणीका पहला कालविषै आदिमें मनुष्यनिका देह तीन कोश ऊंचा है. बहुरि छठाकालका अंतमें मनुष्यनिका देह एक हाथ ऊंचा है. बहुरि छठा कालका जीव वस्त्रादिकरि रहित होय हैं ॥ १७२ ॥

आगें एकेन्द्रिय जीवनिका जघन्य देह कहै हैं,—

सव्वजहण्णो देहो लद्धियपुण्णाण सव्वजीवाणं ।
अंगुलअसंखभागो अणेयभेओ हवे सो वि ॥१७३॥

भावार्थ—लब्ध्यपर्याप्तक सर्व जीवनिका देह घनअंगुलके असंख्यातवें भाग है. सो यह सर्व जघन्य है. सो यामें भी अनेक भेद हैं. भावार्थ—एकेन्द्रिय जीवनिका जघन्य देह भी छोटा वडा है. सो घनांगुलके असंख्यातवें भागमें भी अनेक भेद हैं. सो गोम्मटसारविषै अवगाहनाके चौसठि भेदनिका वर्णन है तहांतैं जानना ॥ १७३ ॥

आगें वेइंद्रिय आदिकी जघन्य अवगाहना कहै हैं,—

बेतिचउपंचक्खाणं जहण्णदेहो हवेइ पुण्णाणं ।
अंगुलअसंखभाओ संखगुणो सो वि उवरुवरिं १७४

भावार्थ—वेइंद्रिय तेइंद्रिय चौइंद्रिय पंचेंद्रिय पर्याप्त जीवनिका जघन्य देह घन अंगुलके असंख्यातवें भाग है. सो भी ऊपरि ऊपरि संख्यात गुणे हैं. भावार्थ—वेइंद्रियका देहतें संख्यातगुणा तेइंद्रियका देह है. तेइंद्रियतें संख्यातगुणा चौइंद्रियका देह है. तातें संख्यात गुणा पंचेंद्रियका है ॥ १७४ ॥

आगें जघन्य अवगाहनाका धारक वेइंद्रिय आदि जीव कौन कौन हैं सो कहै हैं—

आणुधरीयं कुंथं मच्छाकाणा य सालिसिच्छो य ।
पज्जत्ताण तसाणं जहण्णदेहो विणिद्दिट्ठो ॥१७५॥

भावार्थ—वेइंद्रियमें तो अणुद्धरी जीव, तेइंद्रियमें कुंथु जीव, चौइंद्रियमें काणमक्षिका, पंचेंद्रियमें शालिसिक्थक नामा मच्छ इनि त्रस पर्याप्त जीवनिकैं जघन्य देह कह्या है॥ १७५॥

आगें जीवका लोक प्रमाण अर देहप्रमाणपणा कहै हैं ।

लोयपमाणो जीवो देहपमाणो वि अत्थिदे खेत्ते ।
ओगाहणसत्तीदो संहरणाविसप्पधम्मादो ॥१७६॥

भावार्थ—जीव है सो लोक प्रमाण है. बहुरि देहप्रमाण भी है जातें संकोच विस्तार धर्म यामें पाइये है. ऐसी अवगाहनाकी शक्ति है. भावार्थ—लोकाकाशके असंख्यात प्रदेश हैं. सो जीवके भी एते ही प्रदेश हैं केवल समुद्घात करै तिस काल लोकपूरण होय. बहुरि संकोचविस्तारशक्ति भी

तातैं जैसी देह पावै तैसाही प्रमाण रहै है. अर समुद्घात करै तब देहतैं भी प्रदेश नीसरै हैं ॥ १७६ ॥

आगें कोई अन्यमती जीवकूं सर्वथा सर्वगत ही कहै हैं तिनिका निषेध करै हैं,—

**सव्वगओ जदि जीवो सव्वत्थ वि दुक्खसुक्खसंपत्ती**
**जाइज्ज ण सा दिट्ठी णियतणुमाणो तदो जीवो ॥**

भाषार्थ—जो जीव सर्वगत ही होय तौ सर्व क्षेत्रसंबंधी सुखदुःखकी प्राप्ति याकैं भई सो तौ नाहीं देखिये है. अपने शरीरमें ही सुखदुःखकी प्राप्ति देखिये है. तातैं अपने शरीरप्रमाण ही जीव है ॥ १७७ ॥

**जीवो णाणसहावो जह अग्गी उह्णओ सहावेण।**
**अत्थंतरभूदेण हि णाणेण ण सो हवे णाणी ॥१७८॥**

भाषार्थ—जैसैं अग्नि स्वभावकरि ही उष्ण है तैसैं जीव सो ज्ञानस्वभाव है तातैं अर्थान्तरभुत कहिये आपतैं प्रदेशरूप जुदा ज्ञानकरि ज्ञानी नाहीं है. भावार्थ—नैयायिक आदि ते जीवकै अर ज्ञानकै प्रदेशभेद मानिकरि कहै हैं जो आपतैं ज्ञान भिन्न है सो समवायतैं तथा संसर्गतैं एक भया तातैं ज्ञानी कहिये है. जैसैं धनतैं धनी कहिये तैसैं. सो यह मानना असत्य है. आत्माकै अर ज्ञानकै अग्नि अर उष्णताकै जैसैं अभेदभाव है तैसैं तादात्म्यभाव है ॥ १७८ ॥

आगें भिन्नमाननेमें दूषण दिखावै हैं,—

तब यह ही जीव पापरूप होय है. बहुरि उपशम भाव जो मन्द कषाय ताकरि संयुक्त होय तब यह ही जीव पुण्यरूप होय है. भावार्थ–क्रोध मान माया लोभका अतितीव्रपणातैं तौ पाप परिणाम होय है. अर इनिका मंदपणातैं पुण्यपरिणाम होय है तिनि परिणामनिसहित पुण्यजीव पापजीव कहिये है एक ही जीव दोऊ परिणामयुक्त हुवा कै पुण्यजीव पापजीव कहिये है. सो सिद्धान्तकी अपेक्षा ऐसैं ही हैं. जातैं सम्यक्त्व सहित जीव होय ताकै तो तीव्र कषायनिकी जड़ कटनेतैं पुण्य जीव कहिये. बहुरि मिथ्यादृष्टि जीवकै भेदज्ञानविना कषायनिकी जड़ कटै नाहीं तातैं बाह्यजैं कदाचित् उपशम परिणाम भी दीखै तौ ताकूं पापजीव ही कहिये ऐसा जानना॥

**रयणत्तयसंजुत्तो जीवो वि हवेइ उत्तमं तित्थं ।**
**संसारं तरइ जदो रयणत्तयदिव्वणावाए ॥ १९१॥**

भाषार्थ–जातैं यह जीव रत्नत्रयरूप सुंदर नावकरि संसारतैं तिरै है पार होय है. तातैं यह ही जीव रत्नत्रयकरि संयुक्त भया संता उत्तम तीर्थ है, भावार्थ–तीर्थ नाम जो तिरै तथा जाकरि तिरिये सो है. सो यह जीव सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तेई भये रत्नत्रय, सोई भई नाव, ताकरि तरै है तथा अन्यकूं तिरनेंको निमित्त होय है तातैं यह जीव ही तीर्थ है॥

आगै अन्यप्रकार जीवका भेद कहै हैं––

**जीवा हवंति तिविहा बहिरप्पा तह य अंतरप्पा य ।**

भाषार्थ—जे जीव जिनवचनविषै प्रवीण हैं बहुरि जीवकै अर देहकै भेद जाणै हैं. बहुरि जीते हैं आठ मद जिनने ते अंतरात्मा हैं. ते उत्कृष्ट मध्यम जघन्य भेदकरि तीन प्रकार हैं। भावार्थ—जो जीव जिनवानीका भले प्रकार अभ्यासकरि जीव अर देहका स्वरूप भिन्न भिन्न जानै ते अंतरात्मा हैं. तिनिकै जाति लाभ कुल रूप तप बल विद्या ऐश्वर्य ये आठ मदके कारण हैं तिनिविषै अहंकार ममकार नाहीं उपजै है जातैं ये परद्रव्यके संयोगजनित हैं तातैं इनिविषै गर्व नाहीं करै हैं ते तीन प्रकार हैं ॥ १९४ ॥

अब इनि तीन प्रकारविषै उत्कृष्टकूं कहै हैं—

पंचमहव्वयजुत्ता धम्मे सुक्के वि संठिया णिच्चं।
णिज्जियसयलपमाया उक्किट्ठा अंतरा होंति ॥१९५॥

भाषार्थ—जे जीव पांच महाव्रतकरि संयुक्त होंय बहुरि धर्म्यध्यान शुक्लध्यानविषै नित्य ही तिष्ठे होंय बहुरि जीते हैं सकल निद्रा आदि प्रमाद जिनिनैं ते उत्कृष्ट अन्तरात्मा हैं।

अब मध्यम अन्तरात्माकूं कहै हैं—

सावयगुणेहिं जुत्ता पमत्तविरदा य मज्झिमा होंति।
जिणवयणे अणुरत्ता उवसमसीला महासत्ता ॥

भाषार्थ—जे जीव श्रावकके व्रतनिकरि संयुक्त होंय बहुरि प्रमत्त गुणस्थानवर्त्ती जे मुनि होंय ते मध्यम अन्तरा-

त्मा हैं. कैसे हैं ते, जिनवरवचनविषै अनुरक्त हैं लीन हैं. आज्ञा सिवाय प्रवर्त्तन न करैं. बहुरि उपशमभाव कहिये मन्द कषाय तिसरूप है स्वभाव जिनिका, बहुरि महापराक्रमी हैं परीषहादिकके सहनेमें दृढ हैं उपसर्ग आये प्रतिज्ञातें टलैं नाहीं ऐसे हैं ॥ १९६ ॥

अब जघन्य अंतरात्माकूं कहै हैं— .

अविरयसम्मादिट्ठी होंति जहण्णा जिणंदपयभत्ता ।
अप्पाणं णिंदंता गुणगहणे सुट्ठुअणुरत्ता ॥१९७॥

भाषार्थ—जे जीव अविरत सम्यग्दृष्टी हैं अर्थात् सम्यग्दर्शन तो जिनके पाइये है अर चारित्रमोहके उदयकरि व्रतधारि सकैं नाहीं ऐसे जघन्य अंतरात्मा हैं. ते कैसे हैं ? जिनेन्द्रके चरननिके भक्त हैं, जिनेन्द्र, तिनकी वाणी, तथा तिनिके अनुसार निर्ग्रन्थ गुरु तिनिकी भक्तिविषै तत्पर हैं. बहुरि अपने आत्माकूं निरन्तर निंदते रहै हैं जातैं चारित्रमोहके उदयतैं व्रत धारे जांय नाहीं, अर तिनकी भावना निरन्तर रहै तातैं अपने विभाव परिणामनिकी निन्दा करते ही रहै हैं. बहुरि गुणनिके ग्रहणविषै भले प्रकार अनुरागी हैं जातैं जिनिमें सम्यग्दर्शन आदि गुण देखैं तिनितैं अत्यन्त अनुरागरूप प्रवर्त्तै हैं गुणनितैं अपना अर परका हित जान्या है, तातैं गुणनितैं अनुराग ही होय है. ऐसैं तीन प्रकार अन्तरात्मा कह्या सो गुणस्थाननिकी अपेक्षातैं जानना । भावार्थ—चौथा गुणस्थानवर्ती तो जघन्य अंतरात्मा, पांचवां

छठा गुणस्थानवर्ती मध्यम अंतरात्मा अर सातवां गुणस्थानतैं लगाय बारहमां गुणस्थानतांई उत्कृष्ट अंतरात्मा जानना ॥ १९७ ॥

अब परमात्माका स्वरूप कहै हैं,—

ससरीरा अरहंता केवलणाणेण मुणियसयलत्था ।
णाणसरीरा सिद्धा सव्वुत्तम सुक्खसंपत्ता ॥ १९८ ॥

भाषार्थ—जे शरीरसहित ते अरहंत हैं। कैसे हैं? केवलज्ञानकरि जाने हैं सकलपदार्थ जिनूंनें ते परमात्मा हैं. बहुरि शरीरकरि रहित हैं ज्ञान ही है शरीर जिनकैं, ते सिद्ध हैं. कैसे हैं? सर्व उत्तम सुखकूं प्राप्त भये हैं ते शरीररहित परमात्मा हैं. भावार्थ—तेरहमां चौदहमां गुणस्थानवर्ती अरहंत शरीरसहित परमात्मा हैं. अर सिद्ध परमेष्ठी शरीररहित परमात्मा हैं।

अब परा शब्दका अर्थकूं कहै हैं,—

णिस्सेसकम्मणासे अप्पसहावेण जा समुप्पत्ती ।
कम्मजभावखए वि य सा वि य पत्ती परा होदि ॥१९९॥

भाषार्थ—जो समस्त कर्मका नाश होते संतें अपने स्वभावकरि उपजै सो परा कहिये. बहुरि कर्मतें उपजे जे औदयिक आदि भाव तिनका नाश होतें उपजै सो भी परा कहै. भावार्थ—परमात्मा शब्दका अर्थ ऐसा है जो परा कहै उत्कृष्ट मा कहिये लक्ष्मी जाकै होय ऐसा आत्माकूं प-

रमात्मा कहिये है. सो समस्त कर्मनिका नाशकरि स्वभाव-रूप लक्ष्मीकूं प्राप्त भये ऐसे सिद्ध, ते परमात्मा हैं. बहुरि घातिकर्मनिका नाशकरि अनन्तचतुष्टयरूप लक्ष्मीकं प्राप्त भये ऐसे अरहंत ते भी परमात्मा हैं. बहुरि ते ही औदयिक आदि भावनिका नाश करि भी परमात्मा भये कहिये।

आगें कोई जीवनिकूं सर्वथा शुद्ध ही कहै हैं तिनके मतकूं निषेधै हैं,–

जइ पुण सुद्धसहावा सव्वे जीवा अणाइकाले वि ।
तो तवचरणविहाणं सव्वेसिं णिप्फलं होदि ॥ २०० ॥

भावार्थ–जो सर्व जीव अनादि कालविषै भी शुद्ध स्वभाव हैं तो सर्वहीके तपश्चरणविधान है सो निष्फल होय है।

ता किह गिह्लदि देहं णाणाकम्माणि ता कहं कुडइ ।
सुहिदा वि य दुहिदा वि य णाणारूवा कहं होंति २०१

भावार्थ–जो जीव सर्वथा शुद्ध है तो देहकूं कैसें ग्रहण करै है ? बहुरि नाना प्रकारके कर्मनिकूं कैसें करै है ? बहुरि कोई सुखी है कोई दुःखी है ऐसें नानारूप कैसे होय है ? तातैं सर्वथा शुद्ध नाहीं है।

आगें अशुद्धता शुद्धताका कारण कहै हैं,–

सव्वे कम्मणिबद्धा संसरमाणा अणाइकालम्हि ।
पच्छा तोडिय बंधं सुद्धा सिद्धा धुवा होंति ॥ २०२

भावार्थ–जो रूप रस गन्ध स्पर्श परिणाम स्वरूपकरि इन्द्रियनिके ग्रहण करने योग्य हैं ते सर्व पुद्गल द्रव्य हैं. ते संख्याकरि जीवराशितैं अनन्तगुणे द्रव्य हैं ॥ २०७ ॥

अब पुद्गल द्रव्यकै जीवका उपकारीपणाकूं कहै हैं,–

जीवस्स वहुपयारं उवयारं कुणदि पुग्गलं दव्वं ।
देहं च इंदियाणि य वाणी उस्सासणिस्सासं ।२०८।

भावार्थ–पुद्गल द्रव्य है सो जीवके बहुत प्रकार उपकार करै है. देह करै है, इन्द्रिय करै है, बहुरि वचन करै है, उस्वास निस्वास करै है. भावार्थ–संसारी जीवके देहादिक पुद्गल द्रव्यकरि रचित हैं. इनकरि जीवका जीवतव्य है यह उपकार है ॥ २०८ ॥

अण्णं पि एवमाई उवयारं कुणदि जाव संसारं ।
मोहं अणाणमयं पि य परिणामं कुणइ जीवस्स ॥

भावार्थ–पुद्गल द्रव्य है सो जीवके पूर्वोक्तकूं आदिकरि अन्य भी उपकार करै है. जेतैं या जीवकै संसार है तेतैं घणा ही परिणाम करै है. मोहपरिणाम, पर द्रव्यनितैं ममत्त्व परिणाम, तथा अज्ञानमयी परिणाम, ऐसैं सुख दुःख जीवित मरण आदि अनेक प्रकार करै है. यहां उपकार शब्दका अर्थ किछू परिणाम विशेष करै सो सर्व ही लेणा ॥ २०९ ॥

आगैं जीव भी जीवकूं उपकार करै है, ऐसा कहै हैं ।

जीवा वि दु जीवाणं उवयारं कुणइ सव्वपच्चक्खं ।
तत्थ वि पहाणहेओ पुण्णं पावं च णियमेण ॥२१०॥

भावार्थ–जीव हैं ते भी जीवनिके परस्पर उपकार करैं हैं सो यह सर्वके प्रत्यक्ष ही है. सिरदार चाकरके, चाकर सिरदारके, आचार्य शिष्यके, शिष्य आचार्यके, पितामाता पुत्रके, पुत्र पितामाताके, मित्र मित्रके, स्त्री भरतारके इत्यादि प्रत्यक्ष देखिये है. सो तहां परस्पर उपकारकेविषैं पुण्यपापकर्म्म नियमकरि प्रधान कारण है ॥ २१० ॥

आगें पुद्गलकै बडी शक्ति है ऐसा कहै हैं,—

का वि अपुव्वा दीसदि पुग्गलदव्वस्स एरिसी सत्ती ।
केवलणाणसहाओ विणासिदो जाइ जीवस्स ॥२११॥

भावार्थ—पुद्गल द्रव्यकी कोई ऐसी अपूर्व शक्ति देखिये है जो जीवका केवलज्ञानस्वभाव है सो भी जिस शक्तिकरि विनश्या जाय है । भावार्थ–अनन्त शक्ति जीवकी है तामें केवलज्ञानशक्ति ऐसी है कि जाकी व्यक्ति (प्रकाश) होय तब सर्व पदार्थनिकूं एकै काल जानै । ऐसी व्यक्तिकूं पुद्गल नष्ट करै है, न होने दे है; सो यह अपुर्व शक्ति है । ऐसैं पुद्गलद्रव्यका निरूपण किया ।

अब धर्मद्रव्य अर अधर्मद्रव्यका स्वरूप कहै हैं,—

धम्ममधम्मं दव्वं गमणट्ठाणाण कारणं कमसो ।

जीवाण पुग्गलाणं विण्ण वि लोगप्पमाणाणि २१२

भाषार्थ—जीव अर पुद्गल इनि दोऊ द्रव्यनिकूं गमन अवस्थानका सहकारी अनुक्रमतैं कारण हैं, ते धर्म अर अधर्म द्रव्य हैं। ते दोऊं ही लोकाकाश परिमाणप्रदेशकूं धरै हैं। भावार्थ—जीव पुद्गलकूं गमनसहकारी कारण तौ धर्मद्रव्य है अर स्थितिसहकारी कारण अधर्मद्रव्य है। ए दोऊं लोकाकाशप्रमाण हैं।

आगें आकाशद्रव्यका स्वरूप कहै हैं,—

सयलाणं दव्वाणं जं दादुं सक्कदे हि अवगासं।
तं आयासं दुविहं लोयालोयाण भेयेण ॥ २२३ ॥

भाषार्थ—जो समस्त द्रव्यनिकौं अवकाश देनेकूं समर्थ है सो आकाश द्रव्य है। सो लोक अलोकके भेदकरि दोय प्रकार है। भावार्थ—जामें सर्व द्रव्य वसैं ऐसे अवगाहनगुणकूं धरै है सो यह आकाश द्रव्य है। सो जामें पांच द्रव्य वसै हैं सो तौ लोकाकाश है अर जामें अन्य द्रव्य नाहीं सो अलोकाकाश है, ऐसैं दोय भेद हैं।

आगें आकाशविषै सर्व द्रव्यनिकूं अवगाहन देनेकी शक्ति है तैसी अवकाश देनेकी शक्ति सर्व ही द्रव्यनिमें है ऐसैं कहै हैं,—

सव्वाणं दव्वाणं अवगाहणसत्ति अत्थि परमत्थं।
जह भसमपाणीयाणं जीवपएसाण जाण बहुआणं ॥

भापार्थ—सर्व ही द्रव्यनिकै परस्पर अवगाहना देनेकी शक्ति है। यह निश्चयतैं जाणहु। जैसैं भस्मकै अर जलकै अवगाहन शक्ति है तैसें जीवके असंख्यात प्रदेशनिकै जानूं। भावार्थ—जैसैं जलकूं पात्रविषै भरि तामें भस्म डारिये सो समावै। बहुरि तामें मिश्री डारिये सो भी समावै। बहुरि तामें सुई चोपिये सो भी समावै तैसें अवगाहनशक्ति जाननी. इहां कोई पूछै कि सर्व ही द्रव्यनिमें अवगाहन शक्ति है तो आकाशका असाधारण गुण कैसें है? ताका समाधान—जो परस्पर तो अवगाह सर्व ही देहैं तथापि आकाशद्रव्य सर्वतैं बडा है। तातैं यामें सर्व ही समावै यह असाधारणता है।

जदि ण हवदि सा सत्ती सहावभूदा हि सव्वदव्वाणं।
एकेकास पएसे कह ता सव्वाणि वट्टंति ॥ २१५ ॥

भापार्थ—जो सर्व द्रव्यनिकै स्वभावभूत अवगाहनशक्ति न होय तो एक एक आकाशके प्रदेशविषै सर्व द्रव्य कैसें वर्तैं। भावार्थ—एक आकाश प्रदेशविषै अनन्त पुद्गलके परमाणु द्रव्य तिष्ठै हैं। एक जीवका प्रदेश एक धर्मद्रव्यका प्रदेश एक अधर्मद्रव्यका प्रदेश एक कालाणुद्रव्य ऐसैं सर्व तिष्ठै हैं सो वह आकाशका प्रदेश एक पुद्गलके परमाणुकी बरावर है सो अवगाहनशक्ति न होय तो कैसें तिष्ठै?

आगें कालद्रव्यका स्वरूप कहै हैं,—

सव्वाणं दव्वाणं परिणामं जो करेदि सो कालो।
एकेकासपएसे सो वट्टदि एक्किको चेव ॥ २१६ ॥

भावार्थ—जो सर्व द्रव्यनिकै परिणाम करै है सो काल द्रव्य है। सो एक एक आकाशके प्रदेशविषै एक एक कालाणुद्रव्य वर्त्ते है। भावार्थ—सर्व द्रव्यनिके समय समय पर्याय उपजै हैं अर विनसैं हैं सो ऐसे परिणमनकूं निमित्त कालद्रव्य है। सो लोकाकाशके एक एक प्रदेशविषै एक एक कालाणु तिष्ठै है। सो यह निश्चय काल है॥ २१६॥

आगै कहै हैं कि परिणमनेकी शक्ति स्वभावभूत सर्व द्रव्यनिमैं है, अन्य द्रव्य निमित्तमात्र है—

णियणियपरिणामाणं णियणियदव्वं पि कारणं होदि।
अण्णं बाहिरदव्वं णिमित्तमत्तं वियाणेह॥ २१७॥

भावार्थ—सर्व द्रव्य अपने अपने परिणमनिके उपादान कारण हैं। अन्य बाह्य द्रव्य हैं सो अन्यके निमित्तमात्र जाणूं। भावार्थ—जैसैं घट आदिकूं माटी उपादान कारण है अर चाक दंडादि निमित्त कारण हैं। तैसैं सर्व द्रव्य अपने पर्यायनिकूं उपादान कारण हैं। कालद्रव्य निमित्त कारण है॥

आगै कहै हैं कि सर्वही द्रव्यनिकै परस्पर उपकार है सो सहकारीकारणभावकरि है—

सव्वाणं दव्वाणं जो उवयारो हवेइ अण्णोण्णं।
सो चिय कारणभावो हवदि हु सहयारिभावेण॥

भावार्थ—सर्व ही द्रव्यनिकै जो परस्पर उपकार है सो सहकारीभावकरि कारणभाव हो है यह प्रगट है॥ २१८॥

आगें द्रव्यनिके स्वभावभूत नाना शक्ति हैं ताकौं कौन निषेधि सके है ऐसैं कहै हैं,—

कालाइलद्धिजुत्ता णाणासत्तीहिं संजुदा अत्था ।
परिणममाणा हि सयं ण सक्कदे को वि वारेदुं ॥

भाषार्थ—सर्व ही पदार्थ काल आदि लब्धिकरि सहित भये नाना शक्तिसंयुक्त हैं तैसैं ही स्वयं परिणमै हैं तिनकूं परिणमतैं कोई निवारनेकूं समर्थ नाहीं । भावार्थ—सर्व द्रव्य अपने अपने परिणामरूप द्रव्य क्षेत्र काल सामग्रीकूं पाय आप ही भावरूप परिणमै हैं । तिनकूं कोई निवारि न सकै है ॥ २१९ ॥

आगें व्यवहारकालका निरूपण करै हैं,—

जीवाण पुग्गलाणं ते सुहुमा वादरा य पज्जाया ।
तीदाणागदभूदा सो ववहारो हवे कालो ॥ २२० ॥

भाषार्थ—जीव द्रव्य अर पुद्गल द्रव्यके सूक्ष्म तथा वादर पर्याय हैं ते अतीत भये अनागत आगामी होंयगे, भूत कहिये वर्तमान हैं सो ऐसा व्यवहार काल होय है. भावार्थ—जो जीव पुद्गलके स्थूल सूक्ष्म पर्याय हैं ते अतीतभये तिनिकूं अतीत नाम कह्या. वहुरि जो आगामी होंयगे तिनिकूं अनागत नाम कह्या. वहुरि जो वर्तें हैं तिनिकूं वर्तमान नाम कह्या. इनिकूं जेतीवार लगै है तिसहीकूं व्यवहार काल नाम करि कहिये हैं. सो जघन्य तौ पर्यायकी स्थिति एक स-

उत्तरपरिणामजुदं तं चिय कज्जं हवे णियमा ॥२२२॥

भावार्थ—पूर्व परिणाम सहित द्रव्य है सो कारणरूप है बहुरि उत्तर परिणामयुक्त द्रव्य है सो कार्यरूप नियमकरि है ॥ २२२ ॥

आगें वस्तुकै तीनू कालविषै ही कार्यकारणभावका निश्चय करै हैं,—

कारणकज्जविसेसा तिस्सु वि कालेसु होंति वत्थूणं।
एक्केक्कम्मि य समये पुव्वुत्तरभावमासिज्ज ॥२२३॥

भावार्थ—वस्तुनिकै पूर्व अर उत्तर परिणामकौं पायकरि तीनूं ही कालविषै एक एक समयविषै कारण कार्यके विशेष होय हैं. भावार्थ—वर्त्तमान समयमें जो पर्याय है सो पूर्वसमय सहित वस्तुका कार्य है. तैसैं ही सर्व पर्याय जाननी. ऐसें समय २ कार्यकारणभावरूप है ॥ २२३ ॥

आगें वस्तु है सो अनंतधर्मस्वरूप है ऐसा निर्णय करै हैं—

संति अणंताणंता तीसु वि कालेसु सव्वदव्वाणि ।
सव्वं पि अणेयंतं तत्तो भणिदं जिणिंदेहिं ॥२२४॥

भावार्थ—सर्व द्रव्य हैं ते तीनूं ही कालमें अनंतानंत हैं अनन्त पर्यायनिसहित हैं तातैं जिनेन्द्र देवने सर्व ही वस्तु अनेकांत कहिये अनंतधर्मस्वरूप कह्या है ॥ २२४ ॥

आगैं कहै हैं जो अनेकांतात्मक वस्तु है सो अर्थक्रियाकारी है,—

जं वत्थु अणेयंतं तं चिय कज्जं करेइ णियमेण ।
बहुधम्मजुदं अत्थं कज्जकरं दीसए लोए ॥२२५॥

भावार्थ—जो वस्तु अनेकांत है अनेक धर्मस्वरूप है सो ही नियमकरि कार्य करै है. लोकविषैं बहुतधर्मकरियुक्त पदार्थ है सो ही कार्य करनेवाला देखिये है. भावार्थ—लोकविषैं नित्य अनित्य एक अनेक भेद इत्यादि अनेक धर्मयुक्त वस्तु हैं सो कार्यकारी दीखै हैं जैसे माटीके घट आदि अनेक कार्य बणै हैं सो सर्वथा मांटी एक रूप तथा नित्यरूप तथा अनेक अनित्य रूप ही होय तौ घट आदि कार्य बणै नाहीं, तैसैं ही सर्व वस्तु जानना ॥ २२५ ॥

आगैं सर्वथा एकान्त वस्तुकै कार्यकारीपणा नाहीं है ऐसैं कहै हैं,—

एयंतं पुणु दव्वं कज्जं ण करेदि लेसमित्तं पि ।
जं पुणु ण करेदि कज्जं तं वुच्चदि केरिसं दव्वं ॥२२६॥

भावार्थ—बहुरि एकांत स्वरूप द्रव्य है सो लेशमात्र भी कार्यकूं नाहीं करै है, बहुरि जो कार्य ही न करै सो कैसा द्रव्य है. वह तो—शून्यरूपसा है. भावार्थ—जो अर्थक्रियास्वरूप होय सो ही परमार्थरूप वस्तु कहा है अर जो अर्थक्रियारूप नाहीं सो आकाशके फूलकी ज्यों शून्यरूप है ॥ २२६ ॥

आगैं सर्वथा नित्य एकांतविषैं अर्थक्रियाकारीपणाका अभाव दिखावै हैं,—

परिणामेण विहीणं णिच्चं दव्वं विणस्सदे णेयं ।
णो उप्पज्जदि य सया एवं कज्जं कहं कुणइ ॥२२७॥

भावार्थ–परिणामकरिहीन जो नित्य द्रव्य, सो विनसै नहीं, तब कार्य कैसे करै ? अर जो उपजै विनशै तो नित्यपणा नाहीं ठहरै. ऐसैं कार्य न करै सो वस्तु नाहीं है २२७

आगें पुनः क्षणस्थायीकै कार्यका अभाव दिखावै है–

पज्जयमित्तं तच्चं विणस्सरं खणे खणे वि अण्णाण्णं ।
अण्णइदव्वविहीणं ण य कज्जं किं पि साहेदि ॥२२८॥

भावार्थ– जो क्षणस्थायी पर्यायमात्र तत्त्व क्षणक्षणमें अन्य अन्य होय ऐसा विनश्वर मानिये तौ अन्वयीद्रव्यकरि रहित हूवा संता कार्य किछू भी नाहीं साधै है. क्षणस्थायी विनश्वरकै काहेका कार्य ॥ २२८ ॥

आगें अनेकान्तवस्तुकै कार्यकारणभाव बणै है सो दिखावै हैं,—

णवणवकज्जविसेसा तीसु वि कालेसु होंति वत्थुणं ।
एक्केक्कम्मि य समये पुव्वुत्तरभावमासिज्ज ॥२२९॥

भावार्थ–जीवादिक वस्तुनिकै तीनूही कालविषैं एक एक समयविषैं पूर्वउत्तरपरिणामका आश्रयकरि नवे नवे कार्यविशेष होय हैं नवे नवे पर्याय उपजै हैं ॥ २२९ ॥

आगैं पूर्वोत्तरभावकै कारणकार्यभावकूं दृढ करै हैं–

पुव्वपरिणामजुत्तं कारणभावेण वट्टदे दव्वं ।

उत्तरपरिमाणजुदं तं चिय कज्जं हवे णियमा ॥ २३० ॥

भाषार्थ—पूर्वपरिणामकरियुक्त द्रव्य है सो तौ कारण-भावकरि वर्ते है बहुरि सो ही द्रव्य उत्तरपरिणामकरि युक्त होय तब कार्य होय है. यह नियमतैं जाणूं. भावार्थ— जैसैं मांटीका पिंड तौ कारण है अर ताका घट बण्या सो कार्य है. तैसैं पहले पर्यायका स्वरूप कहि अब जीव पिछले पर्याय सहित भया तब सो ही कार्यरूप भया. ऐसैं नियम है ऐसैं वस्तुका स्वरूप कहिये है ॥ २३० ॥

अब जीव द्रव्यकै भी तैसैं ही अनादिनिधन कार्यका-रणभाव साधै हैं—

जीवो अणाइणिहणो परिणयमाणो हु णवणवं भावं ।
सामग्गीसु पवट्टदि कज्जाणि समासदे पच्छा ॥२३१॥

भाषार्थ—जीव द्रव्य है सो अनादिनिधन है सो नवे नवे पर्यायनिरूप प्रगट परिणमै है. सो पहले द्रव्य क्षेत्र काल भावकी सामग्रीविषै वर्त्तै है. पीछैं कार्यनिकूं पर्यायनिकूं प्राप्त होयहै। भावार्थ—जैसैं कोई जीव पहले शुभ परिणामरूप प्रवर्तै पीछैं स्वर्ग पावै तथा पहलै अशुभ परिणामरूप प्रवर्तै पीछैं नरक आदि पर्याय पावै ऐसैं जानना ॥ २३१ ॥

आगैं जीवद्रव्य अपने द्रव्यक्षेत्रकालभावविषै तिष्ठ्या ही नवे पर्यायरूप कार्यकूं करै ऐसैं कहै हैं—

स... ण्यो जीवो कज्जं साहेदि वट्टमाणं पि ।

खित्ते एकम्मि ठिदो णियदव्वं संठिदो चेव ॥२३२॥

भापार्थ-जीव द्रव्य है सो अपने चैतन्यस्वरूपविषै तिष्ठता अपने ही क्षेत्रविषै तिष्ठता अपने ही द्रव्यमें तिष्ठता अपने परिणमनरूप समयविषै अपनी पर्यायस्वरूप कार्यकूं साधै है. भावार्थ-परमार्थतैं विचारिये तब अपने द्रव्य क्षेत्रकालभावस्वरूप होता संता जीव पर्यायस्वरूप कार्यरूप परिणमै है पर द्रव्यक्षेत्रकालभाव हैं सो निमित्तमात्र हैं ॥ २३२ ॥

आगें अन्यस्वरूप होय कार्य करे तौ तामें दूषण दिखावे हैं--

ससरूवत्थो जीवो अण्णसरूवम्मि गच्छए जदि हि ।
अण्णुण्णमेलणादो इक्कसरूवं हवे सव्वं ॥ २३३ ॥

भापार्थ-जो जीव अपने स्वरूपविषै तिष्ठता पर स्वरूपविषै जाय तौ परस्पर मिलनेतैं सर्व द्रव्य एकस्वरूप होय जाय, तहां वडा दोप आवे. सो एकस्वरूप कदाचित् होय नाहीं यह प्रगट है ॥ २३३ ॥

आगें सर्वथा एकस्वरूप माननेमें दूषण दिखावे हैं—

अहवा वंभसरूवं एक्कं सव्वं पि मण्णदे जदि हि ।
चंडालबंभणाणं तो ण विसेसो हवे कोई ॥२३४॥

भापार्थ-जो सर्वथा एक ही वस्तु मानि ब्रह्मका स्वरूप सर्व मानिये तौ ब्राह्मण अर चांडालका किछू भी भेद न ठहरै. भावार्थ-एक ब्रह्मस्वरूप सर्व जगतकूं मा

तौ नानारूप न ठहरे. वहुरि अविद्याकरि नाना दीखता माने तौ अविद्या उत्पन्न कोनतैं भई कहिये ! जो ब्रह्मतैं भई कहिये तौ ब्रह्मतैं भिन्न भई कि अभिन्न भई, अथवा सत्‌रूप है कि असत्‌रूप है कि एकरूप है कि अनेक रूप है. ऐसैं विचार कीये कहूं ठहरना नहीं तातैं वस्तुका स्वरूप अनेकांत ही सिद्ध होय है सो ही सत्यार्थ है ॥ २३४ ॥

आगैं अणुमात्र तत्त्वकूं माननेमें दूपण दिखावै हैं—

अणुपरिमाणं तच्चं अंसविहीणं च मण्णदे जदि हि ।
तो संबंधाभावो तत्तो वि ण कज्जसंसिद्धि ॥२३५॥

भाषार्थ—जो एक वस्तु सर्वगत व्यापक न मानिये अर अंशकरि रहित अणुपरिणाम तत्त्व मानिये तौ दोय अंशके तथा पूर्वोत्तर अंशके सम्बन्धका अभावतैं अणुमात्र वस्तुतैं कार्यकी सिद्धि नाहीं होय है. भावार्थ—निरंश क्षणिक निरन्वयी वस्तुके अर्थक्रिया होय नाहीं, तातैं सांश नित्य अन्वयी वस्तु कथंचित् मानना योग्य है ॥ २३५ ॥

आगैं द्रव्यकै एकत्वपणा निश्चय करै हैं—

सव्वाणं दव्वाणं दव्वसरूवेण होदि एयत्तं ।
णियणियगुणभेएण हि सव्वाणि वि होंति भिण्णाणि ॥

भावार्थ—सर्व ही द्रव्यनिकै द्रव्यस्वरूपकरि तौ एकत्वपणा है वहुरि अपने अपने गुणके भेदकरि सर्व द्रव्य भिन्न भिन्न हैं. भावार्थ—द्रव्यका लक्षण उत्पाद व्यय ध्रौव्यस्वरूप

सत् है सो इस स्वरूपकरि तौ सर्वके एकपणा है. वहुरि अपने अपने गुण चेतनपणा जडपणा आदि भेदरूप हैं. तातैं गुणके भेदतैं सर्व द्रव्य न्यारे २ हैं. तथा एक द्रव्यके त्रिकालवर्ती अनन्तपर्याय हैं सो सर्व पर्यायनिविषै द्रव्य स्वरूपकरि तो एकता ही है. जैसे चेतनके पर्याय सर्व ही चेतन स्वरूप हैं. वहुरि पर्याय अपने अपने स्वरूपकरि भिन्न भी हैं. भिन्न कालवर्त्ती भी हैं. तातैं भिन्न २ भी कहिये. तिनके प्रदेश भेद भी नाहीं तातैं एक ही द्रव्यके अनेक पर्याय हो हैं यामैं विरोध नाहीं ॥ २३६ ॥

आगें द्रव्यकैं गुणपर्यायस्वभावपणा दिखावै हैं,—

जो अत्थो पडिसमयं उप्पादव्वयधुवत्तसब्भावो ।
गुणपज्जयपरिणामो सत्तो सो भण्णदे समये ॥२३७॥

भाषार्थ—जो अर्थ कहिये वस्तु है सो समय समय उत्पाद व्यय ध्रुवपणाके स्वभावरूप है सो गुणपर्यायपरिणामस्वरूप सत्त्व सिद्धांतविषै कहै हैं. भावार्थ—जे जीव आदि वस्तु हैं ते उपजना विनसना अर थिर रहना इन तीनूं भावमयी हैं. अर जो वस्तु गुणपर्याय परिणामस्वरूप है सो ही सत् हैं. जैसें जीवद्रव्यका चेतनागुण है तिसका स्वभाव विभावरूप परिणमन है. तैसें समय समय परिणमैं हैं ते पर्याय हैं. तैसें ही पुद्गलका स्पर्श रस गन्धवर्ण गुण हैं ते स्वभावविभावरूप समय समय परिणमै हैं ते पर्याय हैं. ऐसें सर्व द्रव्य गुणपर्यायपरिणामस्वरूप प्रगटैं हैं ।

आगें द्रव्यनिके व्यय उत्पाद कहा है सो कहै हैं,—

पडिसमयं परिणामो पुव्वो णस्सेदि जायदे अण्णो।
वत्थुविणासो पढमो उववादो भण्णदे विदिओ ॥२३८॥

भावार्थ—जो वस्तुका परिणाम समयसमयप्रति पहलै तो विनसै है अर अन्य उपजै है सो पहला परिणामरूप वस्तुका तौ नाश है, व्यय है. अर अन्य दूसरा परिणाम उपज्या ताकूं उत्पाद कहिये. ऐसैं व्यय उत्पाद होय हैं।

आगें द्रव्यकै ध्रुवपणाका निश्चय कहै हैं,—

णो उप्पजदि जीवो दव्वसरूवेण णेय णस्सेदि।
तं चेव दव्वमित्तं णिच्चत्तं जाण जीवस्स ॥ २३९ ॥

भावार्थ—जीव द्रव्य है सो द्रव्यस्वरूपकरि नाशकूं प्राप्त न होय है अर नाहीं उपजै है सो द्रव्यमात्रकरि जीवकै नित्यपणा जाणूं. भावार्थ—यह ही ध्रुवपणा है जो जीव सत्ता अर चेतनताकरि उपजै विनसै नाहीं, नवा जीव कोई नाहीं उपजै है विनसै भी नाहीं है ॥ २३९ ॥

आगैं द्रव्यपर्यायका स्वरूप कहै हैं,—

अण्णइरूवं दव्वं विसेसरूवो हवेइ पज्जाओ।
दव्वं पि विसेसेण हि उप्पज्जदि णस्सदे सततं ॥२४०॥

भावार्थ—जीवादिक वस्तु अन्वयरूपकरि द्रव्य है सो ही विशेषकरि पर्याय है. बहुरि विशेषरूपकरि द्रव्य भी निरंतर उपजै विनसै हैं. भावार्थ—अन्वयरूप पर्यायनिविषै सामान्य

भावकौं द्रव्य कहिये. अर विशेष भाव हैं ते पर्याय हैं. सो विशेषरूपकरि द्रव्य भी उत्पादव्ययस्वरूप कहिये. ऐसा नाहीं कि पर्याय द्रव्यतैं जुदा ही उपजै विनसै है किंतु अभेद विवक्षातैं द्रव्य ही उपजै विनसै है. भेदविवक्षातैं जुदे भी कहिये.

आगें गुणका स्वरूप कहै हैं,—

सरिसो जो परिमाणो अणाइणिहणो हवे गुणो सो हि ।
सो सामण्णसरूवो उप्पज्जदि णस्सदे णेय ॥२४१॥

भावार्थ-जो द्रव्यका परिणाम सदृश कहिये पूर्व उत्तर सर्व पर्यायनिविषै समान होय अनादिनिधन होय सो ही गुण है. सो सामान्यस्वरूपकरि उपजै विनसै नाहीं है. भावार्थ-जैसैं जीवद्रव्यका चैतन्य गुण सर्व पर्यायनिमें विद्यमान है अनादिनिधन है सो सामान्यस्वरूपकरि उपजै विनसै नाहीं है. विशेषरूपकरि पर्यायनिमें व्यक्तिरूप होय ही है, ऐसा गुण है. तैसैं ही अपना अपना साधारण असाधारण गुण सर्व द्रव्यनिमें जानना ।

आगें कहै हैं गुणभास विशेषस्वरूपकरि उपजै विनसै है गुणपर्यायनिका एकपणा है सो ही द्रव्य है,—

सो वि विणस्सदि जायदि विसेसरूवेण सव्वदव्वेसु ।
दव्वगुणपज्जयाणं एयत्तं वत्थु परमत्थं ॥२४२॥

भावार्थ-जो गुण है सो भी द्रव्यनिविषै विशेषरूपकरि

उपजै विनसै है ऐसैं द्रव्यगुणपर्यायनिका एकत्रपणा है सो ही परमार्थभूत वस्तु है. भावार्थ–गुणका स्वरूप ऐसा नाहीं जो वस्तुतै न्यारा ही है. नित्यरूप सदा रहै है. गुण गुणीकै कथंचित् अभेदपणा है, तातैं जे पर्याय उपजै विनसै हैं ते गुणगुणीके विकार हैं तातैं गुण उपजते विनसते भी कहिये. ऐसा ही नित्यानित्यात्मक वस्तुका स्वरूप है. ऐसैं द्रव्यगुणपर्यायनिकी एकता सो ही परमार्थरूप वस्तु है २४२

आगैं आशंका उपजै है जो द्रव्यनिविषै पर्याय विद्यमान उपजै है कि अविद्यमान उपजै है ? ऐसी आशकाकूं दूरि करै हैं,—

जदि दव्वे पज्जाया वि विज्जमाणा तिरोहिदा संति ।
ता उप्पत्ती विहला पडपिहिदे देवदत्तिव्व ॥२४३॥

भावार्थ–जो द्रव्यविषै पर्याय हैं ते भी विद्यमान हैं अर तिरोहित कहिये ढके हैं ऐसा मानिये तौ उत्पत्ति कहना विफल है, जैसैं देवदत्त कपडासूं ढक्या था ताकौं उघाड्या तब कहै कि यह उपज्या सो ऐसा उपजना कहना तो परमार्थ नाहीं विफल है, तैसैं द्रव्यपर्याय ढकीकौं उघडीकौं उपजती कहना परमार्थ नाहीं, तातैं अविद्यमानपर्यायकी ही उत्पत्ति कहिये ॥ २४३ ॥

सव्वाण पज्जयाणं अविज्जमाणाण होदि उप्पत्ती ।
कालाईलद्धीए अणाइणिहणम्मि दव्वम्मि ॥२४४॥

भाषार्थ—द्रव्य पर्यायकै भेद मानै ताकूं कहै हैं कि–हे मूढ ! जो तू द्रव्यकै अर पर्यायकै वस्तुतैं भी भेद मानै है तो द्रव्य अर पर्याय दोऊकैं निरपेक्षासिद्धि नियमकरि प्राप्त होय है. भावार्थ–द्रव्यपर्याय न्यारे न्यारे वस्तु ठहरै हैं. धर्मधर्मीपेक्षा नाहीं ठहरै है ॥ २४६ ॥

आगें विज्ञानको ही अद्वैत कहै हैं अर वाह्य पदार्थ नाहीं मानैं है तिनकूं दूषण बतावै हैं,—

जदि सव्वमेव णाणं णाणारूवेहिं संठिदं एक्कं ।
तो ण वि किंपि वि णेयं णेयेण विणा कहं णाणं ॥२४७॥

भाषार्थ—जो सर्व वस्तु एक ज्ञान ही है सो ही नानारूपकरि स्थित है तिष्ठै है. तो ऐसैं मानें ज्ञेय किछू भी न ठहरया. बहुरि ज्ञेय विना ज्ञान कैसैं ठहरै. भावार्थ–विज्ञानाद्वैतवादी बौद्धमती कहै हैं जो ज्ञानमात्र ही तत्त्व है सो ही नानारूप तिष्ठै है. ताकूं कहिये जो ज्ञानमात्र ही है तो ज्ञेय किछू भी नाहीं. अर ज्ञेय नाहीं तब ज्ञान कैसैं कहिये ? ज्ञेयकूं जाणै सो ज्ञान कहावै. ज्ञेयविना ज्ञान नाही. ॥ २४७ ॥

घडपडजडदव्वाणि हि णेयसरूवाणि सुप्पसिद्धाणि ।
णाणं जाणेदि यदो अप्पादो भिण्णरूवाणि ॥२४८॥

भाषार्थ—घट पट आदि समस्त जडद्रव्य ज्ञेयस्वरूपकरि भलेप्रकार प्रसिद्ध हैं. तिनकूं ज्ञान जाणै है. तातैं ते आत्मातैं ज्ञानतैं भिन्नरूप न्यारे तिष्ठै हैं। भावार्थ–ज्ञेयपदार्थ जडद्रव्य

न्यारे न्यारे आत्मातैं भिन्नरूप प्रसिद्ध हैं, तिनकूं लोप कैसैं करिये ? जो न मानिये तो ज्ञान भी न ठहरे. जाने विना ज्ञान काहेका ? ॥ २४८ ॥

जं सव्वलोयसिद्धं देहं गेहादिबाहिरं अत्थं ।
जो तंपि णाण मण्णदि ण मुणदि सो णाणणामं पि ॥

भावार्थ–जो देह गेह आदि बाह्य पदार्थ सर्व लोकप्रसिद्ध हैं तिनकूं भी जो ज्ञान ही माने तो वह वादी ज्ञानका नाम भी जाने नाहीं. भावार्थ–बाह्य पदार्थकूं भी ज्ञान ही माननेवाला ज्ञानका स्वरूप नाहीं जाणगा सो तो दूरि ही रहो ज्ञानका नाम भी नाहीं जानै है ॥ २४९ ॥

आगें नास्तित्ववादीके प्रति कहै हैं,—

अच्छीहिं पिच्छमाणो जीवाजीवादि बहुविहं अत्थं ।
जो भणदि णत्थि किंचि वि सो झुट्ठाणं महाझुट्ठो ॥

भावार्थ–जो नास्तिक वादी जीव अजीव आदि बहुत प्रकारके अर्थनिकूं प्रत्यक्ष नेत्रनिकरि देखता संता भी कहै किछू भी नाहीं है सो असत्यवादीनिमें महा असत्यवादी है भावार्थ–दीखती वस्तुकूं भी नाहीं बतावै सो महाझूठा है ।

जं सव्वं पि य संतं तासो वि असंतउं कहं होदि ।
णत्थित्ति किंचि तत्तो अहवा सुण्णं कहं मुणदि ॥

भावार्थ– [illegible] वस्तु सतरूप है विद्यमान है सो वस्तु

असत्यरूप अविद्यमान कैसैं होय अथवा किछू भी नाहीं है ऐसौ तो शून्य है ऐसा भी कैसैं जानैं. भावार्थ—छती वस्तु अणछती कैसैं होय तथा किछू भी नाहीं है तौ ऐसा कहनेवाला जाननेवाला भी नाहीं ठहरया. तब शून्य है ऐसा कौन जाणैं ॥ २५१ ॥

आगें इस ही गाथाका पाठान्तर है सो इस प्रकार है,

जदि सव्वं पि असंतं तासो वि य संतउं कहं भणदि ।
णत्थित्ति किं पि तच्चं अहवा सुण्णं कहं मुणदि ॥

भाषार्थ—जो सर्व ही वस्तु असत् है तो वह ऐसैं कहनेवाला नास्तिकवादी भी असत्रूप ठहरया तब किछु भी तत्त्व नाही है ऐसैं कैसैं कहै है. अथवा कहैं भी नाही सो शून्य है ऐसैं कैसैं जानै है. भावार्थ—आप छता है और कहै कि कछू भी नाहीं सो यह कहना तो वडा अज्ञान है. तथा शून्यतत्त्व कहना तो प्रलाप ही है कहनेवाला ही नाहीं तब कहै कौन ? सो नास्तित्ववादी प्रलापी है ॥ २५१ ॥

किं वहुणा उत्तेण य जित्तियमेत्ताणि संति णामाणि ।
तित्तियमेत्ता अत्था संति हि णियमेण परमत्था २५२

भाषार्थ—बहुत कहनेकरि कहा ? जेता नाम है तेता ही नियमकरि पदार्थ परमार्थ रूप हैं. भावार्थ—जेते नाम हैं तेते सत्यार्थ पदार्थ हैं. बहुत कहनेकरि पूरी पडो. ऐसैं पदार्थका स्वरूप कह्या ॥ २५२ ॥

क कहिये है परन्तु जीवद्रव्यका गुण है तातैं जीवकू छोडि अन्य पदार्थमें जाय नाहीं है ॥ २५५ ॥

आगें ज्ञान जीवके प्रदेशनिविषै तिष्ठता ही सर्वकूं जानै है ऐसैं कहै हैं,—

णाणं ण जादि णेयं णेयं पि ण जादि णाणदेसम्मि ।
णियणियदेसठियाणं ववहारो णाणणेयाणं ॥ २५६ ॥

भाषार्थ—ज्ञान है सो ज्ञेयविषै नाहीं जाय है. बहुरि ज्ञेय भी ज्ञानके प्रदेशनिविषै नाही आवै है. अपने अपने प्रदेशनिविषै तिष्ठै है तौऊ ज्ञानकै अर ज्ञेयकै ज्ञेयज्ञायक व्यवहार है. भावार्थ—जैसें दर्पण अपने ठिकाणै है, घटादिक वस्तु अपने ठिकाणै है. तौऊ दर्पणकी स्वच्छता ऐसी है मानूं दर्पणविषै घट आय ही बैठे है. ऐसें ही ज्ञानज्ञेयका व्यवहार जानना ॥ २५६ ॥

आगें मनःपर्यय अवधिज्ञान अर मति श्रुतज्ञानका सामर्थ्य कहै हैं,—

मणपज्जयविण्णाणं ओहीणाणं च देसपच्चक्खं ।
मइसुयणाणं कमसो विसदपरोक्खं परोक्खं च २५७

भाषार्थ—मनःपर्ययज्ञान बहुरि अवधिज्ञान ए दोऊ तौ देशप्रत्यक्ष हैं. बहुरि मतिज्ञान है सो विशद कहिये प्रत्यक्ष भी है परोक्ष भी है. अर श्रुतज्ञान है सो परोक्ष ही है. भावार्थ—मनःपर्यय अवधिज्ञान तो एकदेशप्रत्यक्ष हैं जातैं जेते

जो ज्ञान हैं सो तिनिकी प्रवृत्ति युगपत् नाहीं एककाल एक ही ज्ञानसूं उपयुक्त होय है. जब यह जीव घटकूं जानैं तिस काल पटकूं नाहीं जानैं, ऐसैं क्रमरूप ज्ञान है ॥ २५९ ॥

आगें इन्द्रियमनसम्बन्धी ज्ञानकी क्रमतैं प्रवृत्ति कही तहां आशंका उपजै है जो इन्द्रियनिका ज्ञान एककाल है कि नाहीं ? ताकी आशंका दूरि करनेकौं कहै हैं,—

एक्के काले एगं णाणं जीवस्स होदि उवजुत्तं ।
णाणाणाणाणि पुणो लद्धिसहावेण वुच्चंति ॥ २६० ॥

भाषार्थ—जीवकै एक कालमें एक ही ज्ञान उपयुक्त कहिये उपयोगकी प्रवृत्ति होय है. बहुरि लब्धिस्वभावकरि एक काल नाना ज्ञान कहे हैं. भावार्थ-भाव इन्द्रिय दोय प्रकारकी कही है· लब्धिरूप, उपयोगरूप. तहां ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमतैं आत्माकै जाननेकी शक्ति होय सो लब्धि कहिये सो तो पांच इन्द्रिय अर मन द्वारा जाननेकी शक्ति एक कालही तिष्ठै है. बहुरि तिनिकी व्यक्तिरूप उपयोगकी प्रवृत्ति है सो ज्ञेयसं उपयुक्त होय है तब एक काल एकहीसूं होय है ऐसी ही क्षयोपशमकी योग्यता है ॥ २६० ॥

आगें वस्तुकै अनेकात्मपणा है तौऊ अपेक्षातैं एकात्मपणा भी है ऐसैं दिखावै हैं,—

जं वत्थु अणेयंतं एयंतं तं पि होदि सविपेक्खं ।
सुयणाणेण णयेहिं य णिरवेक्खं दीसए णेव ॥ २६१ ॥

भावार्थ—जो वस्तु अनेकान्त है सो अपेक्षासहित एकान्त भी है तहां श्रुतज्ञान जो प्रमाण ताकरि साधिये तौ अनेकान्त ही है. बहुरि श्रुतज्ञान प्रमाणके अंश जे नय तिनिकरि साधिये तब एकान्त भी है. सो अपेक्षारहित नाहीं है जातें निरपेक्ष नय मिथ्या हैं. निरपेक्षातें वस्तुका रूप नाहीं देखिये है. भावार्थ—प्रमाण तौ वस्तुके सर्व धर्मनिकौं एक काल साधे है अर नय हैं ते एक एक धर्महीकौं ग्रहण करै हैं तातैं एकनयके दूसरी नयकी सापेक्षा होय तौ वस्तु सधै अर अपेक्षारहित नय वस्तुकौं साधै नाहीं, तातैं अपेक्षातैं वस्तु अनेकान्त भी है ऐसे जानना ही सम्यग्ज्ञान है ॥२६१॥

आगैं श्रुतज्ञान परोक्षपणै सर्वकूं प्रकाशै है यह कहै हैं,—

सव्वं पि अणेयंतं परोक्खरूवेण जं पयासेदि ।
तं सुयणाणं भण्णदि संसयपहुदीहिं परिचित्तं ॥२६२॥

भावार्थ—जो ज्ञान सर्व वस्तुकूं अनेकान्त परोक्षरूपकरि प्रकाशै जाणैं कहै सो श्रुतज्ञान है। सो कैसा है संशयविपर्यय अनध्यवसायकरि रहित है। ऐसा सिद्धान्तमें कहै हैं। भावार्थ—जो सर्व वस्तुकूं परोक्षरूपकरि अनेकान्त प्रकाशै सो श्रुतज्ञान है। शास्त्रके वचन सुननेतैं अर्थकं जानै सो परोक्ष ही जानै अर शास्त्रमें सर्व ही वस्तुका अनेकान्तात्मक स्वरूप कह्या है सो सर्व ही वस्तुकूं जानै। बहुरि गुरुनिके उपदेशपूर्वक जानै तब संशयादिक भी न रहै ॥ २६२ ॥

आगै श्रुतज्ञानके विकल्प जे भेद ते नय हैं तिनिका

र्थ—नय हैं ते सर्व ही सापेक्ष तौ सुनय हैं. निरपेक्ष कुनय हैं. तहां सापेक्षतैं सर्व वस्तु व्यवहारकी सिद्धि है, सम्यग्ज्ञानस्वरूप है. अर कुनयनितैं सर्व लोकव्यवहारका लोप होय है, मिथ्याज्ञानरूप है।

आगें परोक्ष ज्ञानमें अनुमान प्रमाणभी है ताका उदाहरणपूर्वक स्वरूप कहै हैं,—

जं जाणिज्जइ जीवो इंदियवावारकायचिट्ठाहिं ।
तं अणुमाणं भणणदि त पि णयं बहुविहं जाण २६७

भावार्थ—जो इन्द्रियनिके व्यापार अर कायकी चेष्टानिकरि शरीरमें जीवकूं जाणिये सो अनुमान प्रमाण कहिये है सो यह अनुमान ज्ञान भी नय है सो अनेक प्रकार है. भावार्थ—पहलै श्रुतज्ञानके विकल्प नय कहे थे, इहां अनुमानका स्वरूप कह्या जो शरीरमें तिष्ठता जीव प्रत्यक्ष ग्रहणमें नाहीं आवै यातैं इन्द्रियनिका व्यापार स्पर्शना स्वादलेना बोलना सूंघना सुनना देखना आदि चेष्टा गमन आदिक चिन्हनितैं जानिये कि शरीरमें जीव है सो यह अनुमान है जातैं साधनतैं साध्यका ज्ञान होय सो अनुमान कहिये. सो यह भी नय ही है. परोक्ष प्रमाणके भेदनिमें कह्या है सो परमार्थकरि नय ही है. सो स्वार्थ परमार्थके भेदतैं तथा हेतु चिन्हनिके भेदतैं अनेक प्रकार कह्या है ॥ २६७ ॥

आगें नयके भेदनिकूं कहै हैं,—

सो संगहेण इक्को दुविहो वि य दव्वपज्जएहिंतो ।
तेसिं च विसेसादो णइगमपहुदी हवे णाणं २६८

भावार्थ—सो नय संग्रहकरि कहिये सामान्यकरि तौ एक है. द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक भेदकरि दोय प्रकार है. बहुरि विशेषकरि तिनि दोऊनिके विशेषतैं नैगमनयकूं आदि देकरि हैं सो नय हैं ते ज्ञान ही हैं ॥ २६८ ॥

आगें द्रव्यनयका स्वरूप कहै हैं,—

जो साहदि सामण्णं अविणाभूदं विसेसरूवेहिं ।
णाणाजुत्तिवलादो दव्वत्थो सो णओ होदि २६९

भावार्थ—जो नय वस्तुकूं विशेषरूपनितैं अविनाभूत सामान्य स्वरूपकूं नाना प्रकार युक्तिके बलतैं साधै सो द्रव्यार्थिक नय है. भावार्थ—वस्तुका स्वरूप सामान्यविशेषात्मक है सो विशेषविना सामान्य नाहीं ऐसे सामान्यकूं युक्तिके बलतैं साधै सो द्रव्यार्थिक नय है ॥ २६९ ॥

आगें पर्यायार्थिक नयकूं कहै हैं,—

जो साहेदि विसेसे वहुविहसामण्ण संजुदे सव्वे ।
साहणलिंगवसादो पज्जयविसयो णयो होदि २७०

भावार्थ—जो नय अनेक प्रकार सामान्यकरि सहित सर्व विशेष तिनिकै साधनका जो लिंग ताके वशतैं साधै सो पर्यायार्थिक नय है. भावार्थ—सामान्य सहित विशेषनिकूं हेतुतैं साधै सो पर्यायार्थिक नय है. जैसैं सत् सामान्य करि स-

परमाणूपज्जंतं ववहारणओ हवे सो वि ॥२७३॥

भाषार्थ–जो नय संग्रह नयकरि विशेषरहित वस्तुकूं ग्रहण कीया था, ताकूं परमाणु पर्यन्त निरन्तर भेदै सो व्यवहार नय है. भावार्थ–संग्रह नय सर्व सत् सर्वकूं कह्या तहां व्यवहार भेद करै सो सत्द्रव्यपर्याय है. बहुरि संग्रह द्रव्य सामान्यकूं ग्रहै तहां व्यवहार नय भेद करै. द्रव्य जीव अजीव दोय भेदरूप है बहुरि संग्रह जीव सामान्यकूं ग्रहै तहां व्यवहार भेद करै। जीव संसारी सिद्ध दोय भेदरूप है इत्यादि। बहुरि पर्यायसामान्यकूं संग्रहण करै तहां व्यवहार भेद करै पर्याय अर्थपर्याय व्यंजनपर्याय भेदरूप है तैसे ही संग्रह अजीव सामान्यकूं ग्रहै तहां व्यवहारनय भेद करि अजीव पुद्गलादि पंच द्रव्य भेदरूप है, बहुरि संग्रह पुद्गल सामान्यकूं ग्रहण करै तहां व्यवहारनय अणु स्कंध घट पट आदि भेदरूप कहै ऐसैं जाकूं संग्रह ग्रहै तामैं भेद करता जाय तहां फेरि भेद न होय सकै तहां तांई संग्रह व्यवहारका विषय है. ऐसैं तीन द्रव्यार्थिक नयके भेद कहे ॥ २७३ ॥

अब पर्यायार्थिकके भेद कहै हैं तहां प्रथम ही ऋजुसूत्र नयकूं कहै हैं,—

जो वट्टमाणकाले अत्थपज्जायपरिणदं अत्थं ।
संतं साहदि सव्वं तं वि णयं रिजुणयं जाण २७४

भाषार्थ–जो नय वर्त्तमान कालविषै अर्थ पर्यायरूप परि-

गया जो अर्थ ताहि सर्वकूं सत्‌रूप साधै सो ऋजुसूत्र नय है. भावार्थ—वस्तु समय समय परिणमै है सो एक समय वर्त्तमान पर्यायकूं अर्थपर्याय कहिये है. सो या ऋजुसूत्र नयका विषय है. तिस मात्र ही वस्तुकौं कहै है. बहुरि घडी मुहूर्त्त आदि कालकौं भी व्यवहारमें वर्त्तमान कहिये है सो तिस वर्त्तमान कालस्थायी पर्यायकौं भी साधै तातैं स्थूल ऋजुसूत्र संज्ञा है. ऐसैं तीन तो पूर्वोक्त द्रव्यार्थिक अर एक ऋजुसूत्र ए च्यारि नय तो अर्थनय कहिये हैं ॥ २७४ ॥

आगें तीन शब्दनय हैं तिनिकौं कहै हैं तहां प्रथमही शब्दनयकौं कहै हैं,—

सव्वेसिं वत्थूणं संखालिंगादिबहुपयारेहिं ।
जो साहदि णाणत्तं सद्दणयं तं वियाणेह ॥ २७५ ॥

भाषार्थ—जो नय सर्व वस्तुनिकै संख्या लिंग आदि बहुत प्रकार करि नानापणाकौं साधै सो शब्द नय जाणू. भावार्थ—संख्या एक वचन द्विवचन बहुवचन, लिंग स्त्री पुरुष नपुंसकका वचन, आदि शब्दमें काल कारक पुरुष उपसर्ग लेणे. सो इनिकरि व्याकरणके प्रयोग पदार्थकौं भेदरूपकरि कहै सो शब्द नय है. जैसें पुष्य तारका नक्षत्र एक ज्योतिषीके विमानके तीनूं लिंग कहै तहां व्यवहारमें विरोध दीखै जातैं सो ही पुरुष सो ही स्त्री नपुंसक कैसैं होय ? तथापि शब्द नयका यह ही विषय है जो जैसा शब्द कहै तैसा ही अर्थकूं भेदरूप मानना ॥ २७५ ॥

आगें समभिरूढ नयकौं कहै हैं,—

**जो एगेगं अत्थं परिणादिभेएण साहए णाणं ।**
**मुक्खत्थं वा भासदि अहिरूढं तं णयं जाण २७६**

भाषार्थ—जो नय वस्तुकौं परिणामके भेदकरि एक एक न्यारा न्यारा भेद रूप साधै अथवा तिनिमें मुख्य अर्थ ग्रहण करि साधै सो समभिरूढ नय जाणूं. भावार्थ—शब्द नय वस्तुके पर्याय नामकरि भेद नाहीं करै अर यह समभिरूढ नय है सो एक वस्तुके पर्याय नाम हैं तिनिके भेदरूप न्यारे न्यारे पदार्थ ग्रहण करै तहां जिसकौं मुख्यकरि पकडै तिसकौं सदा तैसा ही कहै. जैसैं गऊ शब्दके बहुत अर्थ थे तथा गऊ पदार्थके बहुत नाम हैं. तिनकौं यह नय न्यारे न्यारे पदार्थ मानै है. तिनिमेंसूं मुख्यकरि गऊ पकड्या ताकौं चालतां बैठतां सोवतां गऊ ही कहबो करै. ऐसा समभिरूढ नय है ॥ २७६ ॥

आगें एवंभूत नयकौं कहै हैं.—

**जेण सहावेण जदा परिणदरूवम्मि तम्मयत्तादो ।**
**तप्परिणामं साहदि जो वि णओ सो वि परमत्थो ॥**

भाषार्थ—वस्तु जिस काल जिस स्वभावकरि परिणमनरूप होय तिस काल तिस परिणामतैं तन्मय होय है. तातैं तैस ही परिणामरूप साधै, कहै सो नय एवंभूत है. यह नय परमार्थरूप है. भावार्थ—वस्तुका जिस धर्मकी मुख्यता करि

नाम होय तिस ही अर्थके परिणमनरूप जिस काल परिणमै ताकौं तिस नामकरि कहै सो एवंभूत नय है. याकौं निश्चय भी कहिये है. जैसें गऊकौं चालै तिस काल गऊ कहै. अन्य काल कछु न कहै ॥ २७७ ॥

आगें नयनिके कथनकौं संकोचै हैं,—

एवं विविहणएहिं जो वत्थू ववहरेदि लोयम्मि ।
दंसणणाणचरित्तं सो साहदि सग्गमोक्खं च २७८

भावार्थ—जो पुरुष या प्रकार नयनिकरि वस्तुकौं व्यवहाररूप कहै है, साधे है अर प्रवर्त्तावै है सो पुरुष दर्शन ज्ञान चारित्रकौं साधै है. बहुरि स्वर्ग मोक्षकौं साधै है. भावार्थ—प्रमाण नयनिकरि वस्तुका स्वरूप यथार्थ सधै है. जो पुरुष प्रमाण नयनिका स्वरूप जाणि वस्तुकौं यथार्थ व्यवहाररूप प्रवर्त्तावै है तिसके सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रका अर ताका फल स्वर्ग मोक्षकी सिद्धि होय है ॥ २७८ ॥

आगें कहै हैं जो तत्त्वार्थका सुनना जानना धारणा भावना करनेवाले विरले हैं,—

विरला णिसुणहि तच्चं विरला जाणंति तच्चदो तच्चं ।
विरला भावहिं तच्चं विरलाणं धारणा होदि ॥२७९॥

भावार्थ—जगतविषै तत्त्वकौं विरले पुरुष सुणै हैं. बहुरि सुनि करि भी तत्त्वकौं यथार्थ विरले ही जाणै हैं. बहुरि जानि करि भी विरले ही तत्त्वकी भावना कहिये वारवार अ-

भ्यास करै हैं. वहुरि अभ्यास कीये भी तत्त्वकी धारणा
रलेनिकै होय है. भावार्थ—तत्त्वार्थका यथार्थ स्वरूप सुन
जानना भावना धारणा उत्तरोत्तर दुर्लभ है इस पांचमां व
लमें तत्त्वके यथार्थ कहनेवाले दुर्लभ हैं अर धारनेवाले
दुर्लभ हैं ॥ २७९ ॥

आगें कहै हैं जो कहे तत्त्वकौं सुनिकरि निश्चल भा
तैं भावै सो तत्त्वकौं जाणै,—

तच्चं कहिज्जमाणं णिच्चलभावेण गिह्लदे जो हि
तं च्चिय भावेइ सया सो वि य तच्चं वियाणेई २८

भावार्थ—जो पुरुष गुरुनिकरि कह्या जो तत्त्वका स्वरू
ताकौं निश्चल भाव करि ग्रहण करै है, वहुरि तिसकौं अन
भावना छोडि निरंतर भावै है, सो पुरुष तत्त्वकौं जाणै है

आगें कहै हैं तत्त्वकी भावना नाहीं करै है, सो स्त्री आ
दिकै वश कौन नाही है ? सर्व लोक है,—

को ण वसो इत्थिजणे कस्स ण मयणेण खंडियं माणं
को इंदिएहिं ण जिओ को ण कसाएहिं संतत्तो ॥

भावार्थ—या लोकविषै स्त्रीजनके वश कौन नाहीं है ?
वहुरि कामकरि जाका मन खण्डन न भया ऐसा कौन है ?
वहुरि इन्द्रियनिकरि न जीत्या ऐसा कौन है ? वहुरि कषा-

कपायनिके वशमें सर्व लोक हैं अर तत्त्वकी भावना करनेवाले विरले हैं ॥ २८१ ॥

आगें कहै हैं जो तत्त्वज्ञानी सर्व परिग्रहका त्यागी हो है सो स्त्रीआदिके वश नाहीं होय है,—

सो ण वसो इत्थिजणे सो ण जिओ इंदिएहिं मोहेण
जो ण य गिह्णदि गंथं अब्भंतर वाहिरं सव्वं २८२

भावार्थ—जो पुरुष तत्त्वका स्वरूप जाणि बाह्य अभ्यन्तर सर्व परिग्रहकौं नाहीं ग्रहण करै है, सो पुरुष स्त्रीजनके वश नाहीं होय है. बहुरि सो ही पुरुष इंद्रियनिकरि जीत्या न होय है. बहुरि सो ही पुरुष मोह कर्म जे मिथ्यात्व कर्म तिसकरि जीत्या न होय है. भावार्थ—संसारका बन्धन परिग्रह है सो सर्व परिग्रहकौं छांडै सो ही स्त्री इंद्रिय कषायादिककै वशीभूत नाहीं होय है. सर्वत्यागी होय शरीरका ममत्व न राखै, तब निजस्वरूपमें ही लीन होय है ॥ २८२ ॥

आगें लोकानुप्रेक्षाका चितवनका माहात्म्य प्रगट करै हैं,

एवं लोयसहावं जो झायदि उवसमेक्कसब्भाओ।
सो खविय कम्मपुंजं तस्सेव सिहामणी होदि ॥२८३॥

भावार्थ— जो पुरुष इस प्रकार लोकस्वरूपकौं उपशमकरि एक स्वभावरूप हुवा संता ध्यावै है, चितवन करै है, सो पुरुष खेपे हैं नाश किये हैं कर्मके पुंज जानें ऐसा तिस लो-

कषायनिके वशमें सर्व लोक हैं अर तत्त्वकी भावना करनेवाले विरले हैं ॥ २८१ ॥

आगे कहै हैं जो तत्त्वज्ञानी सर्व परिग्रहका त्यागी हो है सो स्त्रीआदिके वश नाहीं होय है,—

सो ण वसो इत्थिजणे सो ण जिओ इंदिएहिं मोहेण
जो ण य गिह्णदि गंथं अब्भंतर बाहिरं सव्वं २८२

भावार्थ—जो पुरुष तत्त्वका स्वरूप जाणि बाह्य अभ्यन्तर सर्व परिग्रहकौं नाहीं ग्रहण करै है, सो पुरुष स्त्रीजनकै वश नाहीं होय है. बहुरि सो ही पुरुष इंद्रियनिकरि जीत्या न होय है. बहुरि सो ही पुरुष मोह कर्म जे मिथ्यात्व कर्म तिसकरि जीत्या न होय है. भावार्थ—संसारका बन्धन परिग्रह है सो सर्व परिग्रहकौं छोडै सो ही स्त्री इंद्रिय कषायादिकके वशीभूत नाहीं होय है. सर्वत्यागी होय शरीरका ममत्व न राखै, तब निजस्वरूपमें ही लीन होय है ॥ २८२ ॥

आगें लोकानुप्रेक्षाका चिंतवनका माहात्म्य प्रगट करै हैं,

एवं लोयसहावं जो झायदि उवसमेक्कसब्भाओ ।
सो खविय कम्मपुंजं तस्सेव सिहामणी होदि ॥२८३॥

भावार्थ— जो पुरुष इस प्रकार लोकस्वरूपकौं उपशमकरि एक स्वभावरूप हुवा संता ध्यावै है, चिंतवन करै है, सो पुरुष क्षेपे हैं नाश किये हैं कर्मके पुंज जानै ऐसा तिस लो-

कहीका शिखामणि होय है. भावार्थ—ऐसैं साम्यभाव करि लोकानुप्रेक्षाका चितवन करै सो पुरुष कर्मका नाशकरि लोकके शिखर जाय तिष्ठै है. तहां अनन्त अनौपम्य वाधारहित स्वाधीन ज्ञानानन्दस्वरूप सुखकौं भोगवै है। इहां लोकभावनाका कथन विस्तारकरि करनेका आशय ऐसा है जो अन्यमती लोकका स्वरूप तथा जीवका स्वरूप तथा हिताहितका स्वरूप अनेक प्रकार अन्यथा असत्यार्थ प्रमाणविरुद्ध कहै हैं सो कोई जीव तो सुनिकरि विपरीत श्रद्धा करै हैं, केई संशयरूप होय हैं, केई अनध्यवसायरूप होय हैं, तिनिकै विपरीतश्रद्धातैं चित्त थिरताकौं न पावै है। अर चित्त थिर निश्चित हुवा विना यथार्थ ध्यानकी सिद्धि नाहीं । ध्यान विना कर्मनिका नाश होय नाहीं, तातैं विपरीत श्रद्धान दूरि होनेके अर्थ यथार्थ लोकका तथा जीवादि पदार्थनिका स्वरूप जाननेके अर्थ विस्तारकरि कथन किया है, ताकूं जानि जीवादिका स्वरूप पहिचानि अपने स्वरूपविषै निश्चल चित्त ठानि कर्म्म कलंक भानि भव्य जीव मोक्षकूं प्राप्त होहु, ऐसा श्रीगुरुनिका उपदेश है ॥ २८३ ॥

कुंडलिया.

लोकाकार विचारिकैं, सिद्धस्वरूपचितारि ।
रागविरोध विडारिकैं, आतमरूपसंभारि ॥
आतमरूपसंभारि मोक्षपुर बसा सदा ही ।

श्रीगुरु शिक्षा धारि टारि अभिमान कुशोका ।
मनथिरकारन यह विचारि निजरूप सुलोका ॥ १० ॥

इति लोकानुप्रेक्षा समाप्ता ॥ १० ॥

## अथ बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा लिख्यते ।

जीवो अणंतकालं वसइ णिगोएसु आइपरिहीणो ।
तत्तो णीसरिऊणं पुढवीकायादियो होदि ॥ २८४ ॥

भावार्थ—ये जीव अनादि कालतें लेकरि संसारविषै अनन्त काल तो निगोदविषै वसै है, बहुरि तहांतै नीसरिकरि पृथ्वीकायादिक पर्यायकूं धारै है. अनादितें अनन्तकालपर्यन्त नित्य निगोदमें जीवका वास है. तहां एक शरीरमें अनन्तानन्त जीवनिका आहार स्वासोच्छ्वास जीवन मरन समान है. स्वासके अठारहवें भाग आयु है तहांतें नीसरि कदाचित् पृथिवी अप तेज वायुकाय पर्याय पावै है सो यह पावना दुर्लभ है ॥ २८४ ॥

आगें कहै हैं यातें नीसरि त्रसपर्याय पावना दुर्लभ है,

तत्थ वि असंखकालं बायरसुहमेसु कुणइ परियत्तं ।
चिंतामणिव्व दुलहं तसत्तणं लहदि कट्ठेण २८५

भावार्थ—तहां पृथिवीकाय आदिविषै सूक्ष्म तथा बादरनिविषै असंख्यात काल भ्रमण करै है. तहांतें नीसरि त्रसपणा पावना बहुत कष्टकर दुर्लभ है. जैसें चिंतामणि-

पावना दुर्लभ होय तैसैं । भावार्थ—पृथिवीआदि थावरकायतैं नीसरि चिन्तामणि रत्नकी ज्यौं त्रस पर्याय पावना दुर्लभ है

आगें कहै हैं त्रसपणा भी पावै तहां पंचेन्द्रियपणा पावना दुर्लभ है,—

**वियलिंदिएसु जायदि तत्थ वि अत्थेइ पुव्वकोडीओ।**
**तत्तो णीसरिऊणं कहमवि पंचिंदिओ होदि ॥२८६॥**

भाषार्थ—थावरतैं नीसरि त्रस होय तहां भी विकलत्रय बेइन्द्रिय तेइंद्रिय चौइंद्रियपणा पावै तहां कोटिपूर्व तिष्ठै तहांतैं भी नीसरि करि पंचेंद्रियपणा पावना महा कष्टकर दुर्लभ है. भावार्थ—विकलत्रयतैं पंचेंद्रियपणा पावना दुर्लभ है जो विकलत्रयतैं फेरि थावर कायमें जाय उपजै तौ फेरि बहुत काल भुगतैं. तातैं पंचेंद्रियपणा पावना अतिशय दुर्लभ है ।

**सो वि मणेण विहीणो ण य अप्पाणं परं पि जाणेदि ।**
**अह मणसहिओ होदि हु तह वि तिरक्खो हवे रुद्दो ॥**

भाषार्थ—विकलत्रयतैं नीसरि पंचेन्द्रिय भी होय तौ असैनी मनरहित होय है. आप अर परका भेद जाणै नाहीं. बहुरि कदाचित् मनसहित सैनी भी होय तो तिर्यञ्च होय है. रौद्र क्रूर परिणामी विलाव घूघू सर्प सिंह मच्छ आदि होय है. भावार्थ—कदाचित् पंचेन्द्रिय भी होय तौं असैनी होय सैनीपणा दुर्लभ है बहुरि सैनी भी होय तो क्रूर तिर्यञ्च होय ताकै परिणाम निरन्तर पापरूप ही रहै हैं २८७

आगें ऐसें क्रूर परिणामीनिका नरकपात होय है, ऐसे कहे हैं--

सो तिव्वअसुहलेसो णरये णिवडेइ दुक्खदे भीमे।
तत्थ वि दुक्खं भुंजदि सारीरं माणसं पउरं ॥२८८॥

भावार्थ–क्रूर तिर्यंच होय सो तीव्र अशुभ परिणामकरि अशुभ लेश्या सहित मरि नरकमें पड़े है. कैसा है नरक दुःखदायक है भयानक है तहां शरीरसम्बन्धी तथा मनसम्बधी प्रचुर दुःख भोगवै है ॥ २८८ ॥

आगें कहे हैं तिस नरकतें नीसरि तिर्यंच होय दुःख सहै है,—

तत्तो णीसरिऊणं पुणरवि तिरिएसु जायदे पावं।
तत्थ वि दुक्खमणंतं विसहदि जीवो अणेयविहं २८९

भावार्थ–तिस नरकतें नीसरि फेरि भी तिर्यंच गतिविषै उपजै है तहां भी पापरूप जैसें होय तैसें यह जीव अनेक प्रकारका अनन्त दुःख विशेषकरि सहै है ॥ २८९ ॥

आगें कहै हैं कि मनुष्यपणा पावना दुर्लभ है सो भी मिथ्याती होय पाप उपजावै है,—

रयणं चउप्पहेपिव मणुअत्तं सुट्ठु दुल्लहं लहिय।
मिच्छो हवेइ जीवो तत्थ वि पावं समज्जेदि ॥२९०॥

भावार्थ–तिर्यंचतें नीसरि मनुष्यगति पावना अति दुर्लभ है. जैसें चौपथमें रत्नपड्या होय सो बडा भाग्यतें हाथ

भावार्थ—अथवा कदाचित् नीरोग भी होय तौ जीवित कहिये आयु दीर्घ न पावै यह पावना दुर्लभ है अथवा जो कदाचित् आयु भी चिरकाल कहिये दीर्घ पावै तो शील कहिये उत्तम प्रकृति भद्र परिणाम न पावै जातैं सुष्टु स्वभाव पावना दुर्लभ है ॥ २९३ ॥

अह होदि सीलजुत्तो तह वि ण पावेइ साहुसंसग्गं ।
अह तं पि कह वि पावइ सम्मत्तं तह वि अइदुलहं २९४

भावार्थ—बहुरि सुष्टु स्वभाव भी कदाचित् पावै तौ साधु पुरुषका संसर्ग संगति नाहीं पावै है, बहुरि सो भी कदाचित् पावै तो सम्यक्त्व पावना श्रद्धान होना अति दुर्लभ है ॥ २९४ ॥

सम्मत्ते वि य लद्धे चारित्तं णेव गिण्हदे जीवो ।
अह कहवि तं पि गिण्हदि तो पालेदुं ण सक्केदि २९५

भावार्थ—बहुरि सम्यक्त्व भी कदाचित् पावै तो यह जीव चारित्र नाहीं ग्रहण करै है, बहुरि कदाचित् चारित्र भी ग्रहण करै तो तिसकूं निर्दोष न पालि सकै है ॥ २९५ ॥

रयणत्तये वि लद्धे तिव्वकसायं करेदि जइ जीवो ।
तो दुग्गईसु गच्छदि पणट्ठरयणत्तओ होउं ॥२९६॥

भावार्थ—जो यह जीव कदाचित् रत्नत्रय भी पावै अर तीव्रकषाय करै तो नाशकूं प्राप्त भया है रत्नत्रय जाका ऐसा होयकरि दुर्गतिकूं गमन करै है ॥ २९६ ॥

बहुरि ऐसा मनुष्यपणा ऐसा दुर्लभ है जातैं रत्नत्रयकी प्राप्ति हो ऐसा कहै हैं,—

रयणुव्व जलहिपाडियं मणुयत्तं तं पि होइ अइदुलहं
एवं सुणिच्चइत्ता मिच्छकसायेय वज्जेह ॥ २९७ ॥

भाषार्थ—यह मनुष्यपणा जैसैं रत्न समुद्रमें पड्या फेरि पावणा दुर्लभ होय तैसैं पावना दुर्लभ है ऐसैं निश्चयकरि अर हे भव्य जीवो थें मिथ्या अर कषायनिकूं छोडो ऐसा उपदेश श्रीगुरुनिका है ॥ २९७ ॥

आगें कहै हैं जो कदाचित् ऐसा मनुष्यपणा पाय शुभ-परिणामनितैं देवपणा पावै तौ तहां चारित्र नाहीं पावै है,—

अहवा देवो होदि हु तत्थ वि पावेइ कह वि सम्मत्तं ।
सो तवचरणं ण लहदि देसजमं सीललेसं पि २९८

भाषार्थ—अथवा मनुष्यपणातैं कदाचित् शुभपरिणामतैं देव भी होय अर कदाचित् तहां सम्यक्त्व भी पावै तौ तहां तपश्चरण चारित्र न पावै है. देशव्रत श्रावकव्रत तथा शीलव्रत कहिये ब्रह्मचर्य अथवा सप्तशीलका लेश भी न पावै है।

आगें कहै हैं कि इस मनुष्यगतिविषै ही तपश्चरणादिक हैं ऐसा नियम है,—

मणुअगईए वि तओ मणुअगईए महव्वयं सयलं ।
मणुअगईए झाणं मणुअगईए वि णिव्वाणं ॥२९९॥

भावार्थ—हे भव्य जीव हो इस मनुष्यगतिविषै ही तपका आचरण होय है बहुरि इस मनुष्यगतिविषै ही समस्त महाव्रत होय हैं. बहुरि इस मनुष्यगतिविषै ही धर्मशुक्लध्यान होय हैं. बहुरि इस मनुष्यगतिविषै ही निर्वाण कहिये मोक्षकी प्राप्ति होय है ॥ २९९ ॥

इय दुलहं मणुयत्तं लहिऊणं जे रमंति विसएसु ।
ते लहिय दिव्वरयणं भूइणिमित्तं पजालंति ॥३००॥

भावार्थ—ऐसा यह मनुष्यपणा पायकरि जे इन्द्रिय विषयनिविषै रमै हैं ते दिव्य ( अमोलिक ) रत्नकूं पाय भस्मके अर्थ दग्ध करै हैं. भावार्थ—अति कठिन पावने योग्य यह मनुष्य पर्याय अमोलिक रत्नतुल्य है. ताकूं विषयनिविषै रमिकरि वृथा खोवना योग्य नाहीं ॥ ३०० ॥

आगें कहै हैं जो या मनुष्यपणामें रत्नत्रयकूं पाय बड़ा आदर करो,

इय सव्वदुलहदुलहं दंसण णाणं तहा चरित्तं च ।
मुणिऊण य संसारे महायरं कुणह तिण्हं पि ॥२०१॥

भावार्थ—ए सर्व दुर्लभतें भी दुर्लभ जाणि बहुरि दर्शन ज्ञान चारित्र संसारविषै दुर्लभतें दुर्लभ जाणि अर दर्शन ज्ञान चारित्र इनि तीनिविषै हे भव्य जीव हो ! बड़ा आदर करौ.! भावार्थ—निगोदतैं नीसरि पूर्व कहे तिस अनुक्रमतें दुर्लभतें दुर्लभ जाणूं, बहुरि तहां भी सम्यग्दर्शनज्ञानचारि

की प्राप्ति अति दुर्लभ जाणूं. तिसकूं पायकरि भव्य जीवनि-कूं महान् आदर करना योग्य है ॥ २०१ ॥

छप्पय.

वसि निगोदचिर निकसि खेद सहि धरनि तरुनि बहु ।
पवनबोद जल अगि निगोद लहि जरन मरन सहु ॥
लट गिंडोल उटकण मकोड तन भमर भमणकर ।
जलविलोलपशु तन सुकोल नभचर सर उरपर ॥
फिरि नरकपात अति कष्टसहि, कष्टकष्ट नरतन महत ।
तहँ पाय रत्नत्रय चिगद जे, ते दुर्लभ अवसर लहत ११

इति बोधिदुर्ल्लभानुप्रेक्षा समाप्ता ॥ ११ ॥

---

## अथ धर्म्मानुप्रेक्षा प्रारभ्यते.

आगें धर्मानुप्रेक्षाका निरूपण करै हैं तहां धर्मका मूल सर्वज्ञ देव है ताकूं प्रगट करै हैं,—

जो जाणदि पच्चक्खं तियालगुणपज्जएहि संजुत्तं ।
लोयालोयं सयलं सो सव्वण्हू हवे देओ ॥ २०२ ॥

भाषार्थ—जो समस्त लोक अर अलोक तीनकालगोचर समस्त गुणपर्यायनिकरि संयुक्त प्रत्यक्ष जाणै सो सर्वज्ञ देव है. भावार्थ—या लोकविषै जीव द्रव्य अनन्तानन्त हैं. तिनि-तें अनन्तानन्त गुणा पुद्गल द्रव्य हैं. एक एक आकाश, धर्म,

अधर्म द्रव्य है. असंख्यात कालाणु द्रव्य है. लोकके परें अनन्तप्रदेशी आकाश द्रव्य अलोक है. तिनि सर्व द्रव्यनिके अतीत काल अनन्त समयरूप आगामी काल तिनितें अनन्तगुणा समयरूप तिस कालके समयसमयवर्त्ती एक द्रव्यके अनन्त अनन्त पर्याय हैं. तिनि सर्व द्रव्यपर्यायनिकूं युगपत् एक समयविषै प्रत्यक्ष स्पष्ट न्यारे न्यारे जैसें हैं तैसें जानैं ऐसा जाके ज्ञान है सो सर्वज्ञ है. सो ही देव है अन्यकूं देव कहिये सो कहने मात्र है। इहां कहनेका तात्पर्य ऐसा जो धर्मका स्वरूप कहियेगा तो धर्मका स्वरूप यथार्थ इन्द्रियगोचर नाहीं अतीन्द्रिय है. जाका फल स्वर्ग मोक्ष है, सो भी अतीन्द्रिय है. छद्मस्थकै इन्द्रिय ज्ञान है. परोक्ष है सो याके गोचर नाहीं सो जो सर्व पदार्थनिकूं प्रत्यक्ष देखै सो धर्मका स्वरूप भी प्रत्यक्ष देखै सो धर्मका स्वरूप सर्वज्ञके वचनहीतैं प्रमाण है. अन्य छद्मस्थका कह्या प्रमाण नाहीं. सो सर्वज्ञके वचनकी परंपरातैं छद्मस्थ कहै सो प्रमाण है तातैं धर्मका स्वरूप कहनेकूं आदिविषै सर्वज्ञका स्थापन कीया ॥ ३०२ ॥

आगें जे सर्वज्ञकूं न मानै हैं तिनिकूं कहै हैं,—

जदि ण हवदि सव्वण्हू ता को जाणदि आदिंदियं अत्थं
इंदियणाणं ण मुणदि थूलं पि असेस पज्जायं ३०३

भावार्थ—हे सर्वज्ञके अभाववादी ! जो सर्वज्ञ न होय तौ अतीन्द्रियपदार्थ इन्द्रियगोचर नाहीं ऐसे पदार्थकूं कौन जानै ? इन्द्रियज्ञानतौ स्थूलपदार्थ इन्द्रियनितें सम्बन्धरूप व-

होय ताकूं जानै है ताके भी समस्तपर्याय हैं तिनिकूं नाहीं जानै है. भावार्थ—सर्वज्ञका अभाव मीमांसक अर नास्तिक कहै हैं ताकूं निषेध्या है जो सर्वज्ञ न होय तो अतीन्द्रिय पदार्थकूं कौन जानै ? जातैं धर्म अर अधर्मका फल अतीन्द्रिय है ताकूं सर्वज्ञविना कोऊ नाहीं जानैं तातैं धर्म अर अधर्मका फलकूं चाहता जो पुरुष है सो सर्वज्ञकूं मानि करि ताके वचनतैं धर्मका स्वरूप निश्चय करि अंगीकार करौ ॥ ३०३ ॥

तेणुवइट्ठो धम्मो संगासत्ताण तह असंगाणं ।
ढमो वारहभेओ दसभेओ भासिओ विदिओ ३०४

भावार्थ—तिस सर्वज्ञकरि उपदेश्या धर्म है सो दोय प्रकार है. एक तौ संगासक्त कहिये गृहस्थका अर एक असंग कहिये मुनिका. तहां पहला गृहस्थका धर्म तौ वारह भेदरूप है. वहुरि दूजा मुनिका धर्म दश भेदरूप है ॥ ३०४ ॥

आगें गृहस्थके धर्मके वारह भेदनिके नाम दोय गाथाकहै हैं,—

म्मदंसणसुद्धो रहिओ मज्जाइथूलदोसेहिं ।
धारी सामइओ पव्ववई पासु आहारी ॥ ३०५ ॥
ईभोयणाविरओ मेहुणसारंभसंगचत्तो य ।
ज्जाणुमोयविरओ उद्दिट्ठाहारविरओ य ॥ ३०६॥

भावार्थ—सम्यग्दर्शन है शुद्ध जाके ऐसा, १ मद्य आदि

स्थूल दोषनितैं रहित दर्शन प्रतिमाका धारी, २ पांच अणुव्रत-तीन गुणव्रत चार शिक्षाव्रत ऐसैं बार व्रतनिसहित व्रतधारी, ३ तथा समायिकव्रती, ४ पर्वव्रती, ५ प्रासुकाहारी ६ रात्रीभोजनत्यागी, ७ मैथुनत्यागी, ८ आरंभत्यागी, ९ परिग्रहत्यागी, १० कार्यानुमोदविरत ११ अर उद्दिष्टाहारविरत, १२ इसप्रकार श्रावकधर्मके १२ भेद हैं. भावार्थ—पहला भेद तौ पचीसमलदोषरहित शुद्धअविरतसम्यग्दृष्टी है. बहुरि ग्यारह भेद प्रतिमानके व्रतनिकरि सहित होंय सो व्रती श्रावक है ॥ ३०५–३०६ ॥

आगें इनि बारहनिका स्वरूप प्रभृतिका व्याख्यान करै हैं. तहां प्रथम हीं अविरत सम्यग्दृष्टीका कहै हैं. तहां भी पहले सम्यक्त्वकी उत्पत्तिकी योग्यताका निरूपण करै हैं,—

चउगादिभव्वो सण्णी सुविसुद्धो जग्गमाणपज्जत्तो ।
संसारतडे नियडो णाणी पावेइ सम्मत्तं ॥ ३०७ ॥

भावार्थ—ऐसा जीव सम्यक्त्वकूं पावै है. प्रथम हीं भव्य जीव होय जातैं अभव्यकै सम्यक्त्व होय नाहीं. बहुरि च्यारूं ही गतिविषै सम्यक्त्व उपजै है तहां भी मन सहित सैनीकै उपजै है. असैनीकै उपजै नाहीं. तहां भी विशुद्ध परिणामी होय, शुभ लेश्या सहित होय, अशुभ लेश्यामें भी शुभ लेश्यासमान कषायनिके स्थानकै होय तिनिकूं विशुद्ध उपचारकरि कहिये संक्लेश परिणामनिविषै सम्यक्त्व उपजै नाहीं. बहुरि जागताकै होय. सूताकै नाहीं होय. बहुरि

र्याप्तपूर्णके होय, अपर्याप्त अवस्थामें उपजै नाहीं. बहुरि सं-
सारका तट जाकै निकट आया होय निकट भव्य होय, अ-
र्द्ध पुद्गल परावर्त्तन काल पहलै सम्यक्त्व उपजै नाहीं. बहु-
रि ज्ञानी होय साकार उपयोगवान होय निराकार दर्शनो-
पयोगमें सम्यक्त्व उपजै नाहीं ऐसैं जीवकै सम्यक्त्वकी उ-
त्पत्ति होय है ॥ ३०७ ॥

आगें सम्यक्त्व तीन प्रकार है. तिनिमें उपशम सम्य-
क्त्व अर क्षायिक सम्यक्त्वकी उत्पत्ति कैसें है सो कहै हैं,—

सत्तण्हं पयडीणं उवसमदो होदि उवसमं सम्मं ।
खयदो य होइ खइयं केवलिमूले मणुसस्स ॥३०८॥

भावार्थ—मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृतिमि-
थ्यात्व, अनंतानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, इनि सात
मोहकर्मकी प्रकृतिनिके उपशम होतैं उपशम सम्यक्त्व होय है
अर इनि सातों मोहकर्मकी प्रकृतिका क्षय होनेतैं क्षायिक स-
म्यक्त्व उपजै है. सो यह क्षायिक सम्क्त्व केवलि कहिये के-
वलज्ञानी तथा श्रुतकेवलीकै निकट कर्मभुमिके मनुष्यकै ही
उपजै है, भावार्थ—इहां ऐसा जानना जो क्षायिक सम्यक्त्व-
का प्रारम्भ तौ केवलि श्रुतकेवलीके निकट मनुष्यकै ही हो-
य है. अर निष्ठापन अन्यगतिमें भी होय है ॥ ३०८ ॥

आगें क्षायोपशमिक सम्यक्त्व कैसें होय सो कहै हैं,—

अणउदयादो छह्णं सजाइरूवेण उदयमाणाणं ।

सम्मत्तकम्मउदए खयउवसामियं हवे सम्मं ॥२०९॥

भापार्थ-पूर्वोक्त सात प्रकृति तिनिमेंसूं छहप्रकृतिनिका उदय न हो। तथा सजाति कहिये समान जातीय प्रकृतिकरि उदयरूप होय वहुरि सम्यक् कर्म प्रकृतिका उदय होतें क्षायोपशमिक होय. भावार्थ-मिथ्यात्व सम्यग्मिथ्यात्वका तीव्र उदयका अभाव होय अर सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय होय अर अनन्तानुवंधी क्रोध मान माया लोभका उदयका अभाव होय तथा विसंयोजनकरि अप्रत्याख्यानावरण आदिक रूपकरि उदयमान होय तव क्षायोपशमिक सम्यक्त्व उपजै है. इनि तीनूं ही सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका विशेष कथन गोमट्टसार लब्धिसारतैं जानना ॥ २०९ ॥

आगें औपशमिक क्षायोपशमिक सम्यक्त्व अर अनंतानुवंधीका विसंयोजन अर देशव्रत इनिका पावना अर छूटि जाना उत्कृष्टकरि कहै हैं,—

गिण्हदि मुंचदि जीवो वे सम्मत्ते असंखवाराओ।
पढमकसायविणासं देसवयं कुणइ उक्किट्ठं ॥२१०॥

भापार्थ-यह जीव औपशमिक क्षायोपशमिक ए दोय तौ सम्यक्त्व अर अनंतानुवन्धीका विनाश विसंयोजन अप्रत्याख्यानादिरूप परिणमावना अर देशव्रत इनि च्यारिनिकूं असंख्यातवार ग्रहण करै है अर छोडै है. यह उत्कृष्टकरि कह्या है. भावार्थ-पल्यका असंख्यातवां भाग परिमाण जे

असंख्यात तेतीवार उत्कृष्टपणै ग्रहण करै अर छोडै पीछैं मुक्ति प्राप्ति होय ॥ ३१० ॥

आगें ऐसैं सप्त प्रकृतिके उपशम क्षय क्षयोपशमतैं उपज्या सम्यक्त्व कैसैं जाणिये ऐसा तत्त्वार्थश्रद्धानकौं नव गाथानिकरि कहै हैं,—

जो तच्चमणेयंतं णियमा सद्दहदि सत्तभंगेहिं ।
लोयाण पण्हवसदो ववहारपवत्तणट्ठं च ॥ ३११ ॥
जो आयरेण मण्णदि जीवाजीवादि णवविहं अत्थं ।
सुदणाणेण णयेहिं य सो सद्दिट्ठी हवे सुद्धो ॥३१२

भाषार्थ—जो पुरुष सप्तभंगनिकरि अनेकांत तत्त्वनिका नियमतैं श्रद्धान करे, जातैं लोकनिका प्रश्नके वशतैं विधिनिषेधतैं वचनके सात ही भंग होय हैं तातैं व्यवहारके प्रवर्त्तनेके अर्थि भी सातभंगनिका वचनकी प्रवृत्ति होय है. बहुरि जो जीव अजीव आदि नवप्रकार पदार्थकौं श्रुतज्ञान प्रमाणकरि तथा तिसके भेद जे नय तिनिकरि अपना आदर यत्न उद्यमकरि मानै श्रद्धान करै सो शुद्ध सम्यग्दृष्टी है. भावार्थ—वस्तुका स्वरूप अनेकांत है. जामें अनेक अंत कहिये धर्म होय सो अनेकान्त कहिये. ते धर्म अस्तित्व नास्तित्व एकत्व अनेकत्व नित्यत्व अनित्यत्व भेदत्व अभेदत्व अपेक्षात्व दैवसाध्यत्व पौरुषसाध्यत्व हेतुसाध्यत्व आगमसाध्यत्व अंतरगत्व वहिरंगत्व इत्यादि तौ सामान्य हैं. बहुरि

द्रव्यत्व पर्यायत्व जीवत्व अजीवत्व स्पर्शत्व रसत्व गन्धत्व व-र्णत्व शब्दत्व शुद्धत्व अशुद्धत्व मूर्त्तत्व अमूर्त्तत्व संसारित्व सिद्धत्व अवगाहत्व गतिहेतुत्व स्थितिहेतुत्व वर्त्तनाहेतुत्व इत्यादि विशेष धर्म हैं. सो तिनिके प्रश्नके वशतैं विधिनिषेधरूप वचनके सात भंग होय हैं. तिनिकै 'स्यात्' ऐसा पद लगावणा. स्यात् नाम कथंचित् कोईप्रकार ऐसा अर्थमें है. तिसकरि वस्तुकौं अनेकान्त साधणा. तहां वस्तु स्यात् अस्तित्वरूप है, ऐसैं कोईप्रकार अपने द्रव्य क्षेत्र काल भावकरि अस्तित्वरूप कहिये है. बहुरि स्यात् नास्तित्वरूप है, ऐसैं पर वस्तुके द्रव्य क्षेत्र काल भावकरि नास्तित्वरूप कहिये है. बहुरि वस्तु स्यात् अस्तित्व नास्तित्वरूप है, ऐसैं वस्तुमें दोऊ ही धर्म पाइये हैं अर वचनकरि क्रमतैं कहे जाय हैं, बहुरि स्यात् अवक्तव्य है. ऐसैं वस्तुमें दोऊ ही धर्म एक काल पाइये है तथापि एक काल वचनकरि कहे न जाय हैं तातैं कोई प्रकार अवक्तव्य है. बहुरि अस्तित्व करि कह्या जाय है दोऊ एक काल हैं, तातैं कहा न जाय ऐसैं वक्तव्य भी है अर अवक्तव्य भी है तातैं स्यात् अस्तित्व अवक्तव्य है. ऐसैं ही नास्तित्व अवक्तव्य कहना. बहुरि दोऊ धर्म क्रमकरि कह्या जाय युगपत् कह्या न जाय तातैं स्यात् अस्तित्व नास्तित्व अवक्तव्य कहना. ऐसैं सात ही भंग कोई प्रकार संभवै है. ऐसैं ही एकत्व अनेकत्व आदि सामान्य धर्मनिपरि सात भंग विधिनिषेधतैं लगावणा. जैसें २ जहां अपेक्षा सं-

भवे सो लगावणी. बहुरि तैसैं ही विशेषत्व धर्म जीवत्व आदिमें लगावना जैसे जीव नामा वस्तु सो स्यात् जीवत्व स्यात् अजीवत्व इत्यादि लगावणा. तहां अपेक्षा ऐसैं जो अपना जीवत्व धर्म आपमें है तातैं जीवत्व है. पर अजीवका अजीवत्व धर्म यामें नाहीं तौऊ अपने अन्य धर्मकौं मुख्य करि कहिये ताकी अपेक्षा अजीवत्व है इत्यादि लगावणा. तथा जीव अनन्त हैं ताकी अपेक्षा अपना जीवत्व आपमें परका जीवत्व यामें नाहीं है. तातैं ताकी अपेक्षा अजीवत्व है ऐसैं भी सधै है. इत्यादि अनादि निधन अनन्त जीव अजीव वस्तु हैं, तिनिविषै अपने अपने द्रव्यत्व पर्यायत्व अनन्त धर्म हैं तिनि सहित सप्त भंगतैं साधना. तथा तिनिके स्थूल पर्याय हैं ते भी चिरकालस्थायी अनेक धर्मरूप होय हैं- जैसैं जीव संसारी सिद्ध, बहुरि संसारीमें त्रस थावर, तिनिमें मनुष्य तिर्यंच इत्यादि. बहुरि पुद्गलमें अणु स्कन्ध तथा घट पट आदि, सो इनिकै भी कथंचित् वस्तुपणा संभवै है. सो भी तैसैं ही सप्त भंगतैं साधणा. बहुरि तैसैं ही जीव पुद्गलके संयोगतैं भये आस्रव बंध संवर निर्जरा पुण्य पाप मोक्ष आदि भाव तिनिमें भी बहुत धर्मपणाकी अपेक्षा तथा परस्पर विधिनिषेधतैं अनेक धर्मरूप कथंचित् वस्तुपणा संभवै है. सो सप्तभंगतैं साधणा.

जैसैं एक पुरुषमें पिता पुत्र मामा भाणजा काका भतीजापणा आदि धर्म संभवै हैं. सो अपनी अपनी अपेक्षातैं

विधिनिषेधकरि सात भंगतैं साधणा. ऐसा नियमकरि जानना, जो वस्तुमात्र अनेक धर्म स्वरूप है सो सर्वकूं अनेकांत जाणि श्रद्धान करै, वहुरि तैसैं ही लोककेविषैं व्यवहार प्रवर्तावै सो सम्यग्दृष्टी है. वहुरि जीव अजीव आस्रव बन्ध पुण्य पाप संवर निर्जरा मोक्ष ये नव पदार्थ हैं तिनिकूं तैसैं ही सप्तभंगतैं साधने. ताका साधन श्रुतज्ञान प्रमाण है. अर ताके भेद द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक तिनिके भी भेद नैगम संग्रह व्यवहार ऋजुसूत्र शब्द समभिरूढ एवंभूत नय हैं. वहुरि तिनिके भी उत्तरोत्तर भेद जेते वचनके प्रकार हैं तेते हैं, तिनिकूं प्रमाणसप्तभंगी अर नयसप्तभंगीके विधानकरि साधिये है. तिनिका कथन पहले लोकभावना में कीया है. वहुरि तिसका विशेष कथन तत्त्वार्थसूत्रकी टीकातैं जानना. ऐसैं प्रमाण नयनिकरि जीवादि पदार्थनिकूं जानिकरि श्रद्धान करे सो शुद्ध सम्यग्दृष्टी होय है. वहुरि इहां यह विशेष और जानना जो नय हैं ते वस्तुके एक २ धर्मके ग्राहक हैं ते अपने अपने विषयरूप धर्मकूं ग्रहण करनेविषैं समान हैं तौऊ पुरुष अपने प्रयोजनके वशतैं तिनिकों मुख्य गौणकरि कहै हैं जैसैं जीव नामा वस्तु है तामैं अनेक धर्म हैं. तौऊ चेतनपणा आदि प्राणधारणपणा अजीवनितैं असाधारण देखि तिनि अजीवनितैं न्यारा दिखावनेके प्रयोजनके वशतैं मुख्यकरि वस्तुका जीव नाम धरया. ऐसैं ही मुख्य गौण करनेका सर्व धर्मके प्रयोजनके वशतैं

इहां इस ही आशयतैं अध्यात्म कथनीविषै मुख्यकूं तो निश्चय कह्या है. अर गौणकूं व्यवहार कह्या है. तहां अभेद धर्म तो प्रधानकरि निश्चयका विषय कह्या. अर भेद नयकूं गौणकरि व्यवहार कह्या सो द्रव्य तो अभेद है. तातैं निश्चयका आश्रय द्रव्य है. बहुरि पर्याय भेद रूप है. तातैं व्यवहारका आश्रय पर्याय है तहां प्रयोजन ऐसा जो भेदरूप वस्तुकूं सर्व लोक जानै है. तातैं जो जानै सो ही प्रसिद्ध है. याहीतैं लोक पर्यायबुद्धि हैं. जीवकै नरनारक आदि पर्याय हैं. तथा राग द्वेष क्रोध मान माया लोभ आदि पर्याय हैं. तथा ज्ञानके भेदरूप मतिज्ञानादिक पर्याय हैं तिनि पर्यायनिहीकौं लोक जीव जानै हैं. तातैं इनि पर्यायनिविषै अभेदरूप अनादि अनन्त एकभाव जो चेतना धर्म ताकौं ग्रहणकरि निश्चय नयका विषय कहिकरि जीव द्रव्यका ज्ञान कराया. पर्यायाश्रित जो भेद नय ताकौं गौण कीया. तथा अभेद दृष्टिमें यह दीखै नाहीं तातै अभेद नयका दृढ़ श्रद्धान करावनेकौं कहा जो पर्याय नय है सो व्यवहार है, अभूतार्थ है, असत्यार्थ है. सो भेद बुद्धिका एकांत निराकरण करनेके अर्थ यह कहना जानना. ऐसा नाहीं कि यह भेद है, सो असत्यार्थ कह्या. जो वस्तुका स्वरूप नाहीं है जो ऐसैं सर्वथा मानै तो अनेकांतमें समझा नाहीं सर्वथा एकांत श्रद्धानतैं मिथ्यादृष्टी होय है. जहां अध्यात्मशास्त्रनिविषै निश्चय व्यवहार नय कहे हैं तहां भी तिनि दोऊ-

निका परस्पर विधिनिषेधतैं सप्तभंगकरि वस्तु साधणा. एककौं सर्वथा सत्यार्थ मानै अर एककौं सर्वथा असत्यार्थ मानै तौ मिथ्या श्रद्धान होय है. तातैं तहां भी कथंचित् जानना. बहुरि अन्य वस्तु अन्यविषै आरोपणकरि प्रयोजन साधिये है तहां उपचार नय कहिये है सो यह भी व्यवहारविषैं ही गर्भित है ऐसैं कह्या है. जो जहां प्रयोजन निमित्त होय तहां उपचार प्रवर्तै है. घृतका घट कहिये तहां माटीका घडाकै आश्रय घृत भरया होय तहां व्यवहारी जननिकूं आधार आधेय भाव दीखै है ताकूं प्रधानकरि कहिये है. जो घृतका घडा है ऐसैं ही कहैं लोक समझैं. अर घृतका घडा मगावै तब तिसकूं ले आवै, तातैं उपचारविषै भी प्रयोजन संभवै है ऐसैं ही अभेद नयकूं मुख्य करै तहां अभेद दृष्टिमें भेद दीखै नाहीं तब तिसमैं ही भेद कहै सो असत्यार्थ है तहां भी उपचारसिद्धि होय है यह मुख्य गौणका भेदकूं सम्यग्दृष्टी जानै है. मिथ्यादृष्टी अनेकांत वस्तुकूं जानै नाहीं. अर सर्वथा एक धर्म ऊपरि दृष्टि पडै तब तिसहीकूं सर्वथा वस्तु मानि अन्य धर्मकूं कै तौ सर्वथा गौणकरि असत्यार्थ मानै, कै सर्वथा अन्य धर्मका अभाव ही मानै. तथा मिथ्यात्व दृढ होय है सो यह मिथ्यात्वनामा कर्मकी प्रकृतिके उदयतैं यथार्थ श्रद्धा न होय है तातैं तिस प्रकृतिका कार्य है तो भी मिथ्यात्व ही कहिये है. अर तिस प्रकृतिका अभाव भये तत्त्वार्थका यथार्थ श्रद्धान होय है सो यह अनेकान्त वस्तु

प्रमाण, नयकरि सात भंगकरि साध्या हूवा सम्यक्त्वका कार्य है. तातैं याकूं भी सम्यक्त्व ही कहिये. ऐसैं जानना. जिनमतकी कथनी अनेक प्रकार है सो अनेकान्तरूप समझना. अर याका फल अज्ञानका नाश होकर उपादेयकी बुद्धि अर वीतरागताकी प्राप्ति है. सो इस कथनिका मर्म पावना बडे भाग्यतैं होय है. इस पञ्चम कालमें अवार इस कथनीका गुरुका निमित्त सुलभ नाहीं है तातैं शास्त्र समझनेका निरन्तर उद्यम राखि समझना योग्य है. जातैं याके आश्रय मुख्यपणै सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति है. यद्यपि जिनेन्द्रकी प्रतिमाका दर्शन तथा प्रभावना अंगका देखना इत्यादि सम्यक्त्वकी प्राप्तिकूं कारण है तथापि शास्त्रका श्रवण करना, पढना, भावना करना, धारणा, हेतुयुक्तिकरि स्वमत परमतका भेद जानि नयविवक्षाकूं समझना वस्तुका अनेकान्तस्वरूप निश्चय करना मुख्य कारण है. तातैं भव्य जीवनिकूं इसका उपाय निरन्तर राखणा योग्य है।

आगें कहै हैं जो सम्यग्दृष्टी भये अनन्तानुबंधी कषायका अभाव होय है ताके परिणाम कैसे होय हैं,—

जो ण य कुव्वदि गव्वं पुत्तकलत्ताइसव्वअत्थेसु ।
उवसमभावे भावदि अप्पाणं मुणदि तिणमित्तं ३१२

भावार्थ—जो सम्यग्दृष्टी होय है सो पुत्र कलत्र आदि सर्व परद्रव्य तथा परद्रव्यनिके भावनिविषै गर्व नाहीं करै है. परद्रव्यतैं आपकै बडापणा मानै तौ सम्यक्त्व काहेका. बहुरि

उपशम भावनिकूं भावै है अनन्तानुबन्धीसम्बन्धी तीव्र रागद्वेष परिणामके अभावतैं उपशम भावनिकी भावना निरन्तर राखै है बहुरि अपने आत्माकूं तृण समान हीण मानै है जातैं अपना स्वरूप तौ अनन्त ज्ञानादिरूप है. सो जेतै तिसकी प्राप्ति न होय तेतै आपकूं तृणबराबरी मानै है. काहूविषै गर्व नाहीं करे है ॥ ३१३ ॥

विसयासत्तो वि सया सव्वारंभेसु वट्टमाणो वि ।
मोहविलासो एसो इदि सव्वं मण्णदे हेयं ॥ ३१४ ॥

भाषार्थ—अविरत सम्यग्दृष्टी यद्यपि इन्द्रिय विषयनिविषै आसक्त है बहुरि त्रस थावर जीवके घात जामें होंय ऐसे सर्व आरम्भविषै वर्त्तमान है. अप्रत्याख्यानावरण आदि कषायनिके तीव्र उदयनितैं विरक्त न हूवा है तौऊ ऐसा जाणै है कि यह मोहकर्मका उदयका विलास है. मेरे स्वभावमें नाहीं है उपाधि है रोगवत है त्यजने योग्य है. वर्त्तमान कषायनिकी पीडा न सही जाय है तातैं असमर्थ हूवा विषयनिका सेवना तथा बहु आरंभमैं प्रवर्त्तना हो है ऐसा मानै है ॥ ३१४ ॥

उत्तमगुणगहणरओ उत्तमसाहूण विणयसंजुत्तो ।
साहम्मियअणुराई सो सद्दिट्ठी हवे परमो ॥ ३१५ ॥

भाषार्थ—बहुरि कैसा है सम्यग्दृष्टी उत्तम गुण जे सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तप आदिक तिनिविषै तौ

होय, बहुरि तिनि गुणनिके धारक जे उत्तम साधु तिनिके विनयकरि संयुक्त होय, बहुरि आप समान जे सम्यग्दृष्टी साधर्मी तिनिविषै अनुरागी होय, वात्सल्यगुणसहित होय, सो उत्तम सम्यग्दृष्टी होय है. ए तीणूं भाव न होंय तौ जानिये याकै सम्यक्त्वका यथार्थपणा नाही ॥ ३१५ ॥

देहामिलियं पि जीवं णियणाणगुणेण मुणदि जो भिण्णं
जीवमिलियं पि देहं कंचुअसरिसं वियाणेई ॥३१६॥

भावार्थ—यह जीव देहतैं मिलि रह्या है तौऊ अपना ज्ञानगुण जाणै है. तातैं आपकूं देहतैं भिन्न ही जाणै है. बहुरि देह जीवतैं मिलि रह्या है तौऊ ताकं कंचुक कहिये कपडेका जामासारिखा जाणै है जैसै देहतैं जामा भिन्न है तैसैं जीवतैं देह भिन्न है. ऐसैं जाणै है॥ ३१६ ॥

णिज्जियदोसं देवं सव्वाजिवाणं दयावरं धम्मं ।
वज्जियगंथं च गुरुं जो मण्णदि सो हु सद्दिठी ३१७

भावार्थ—जो जीव दोषवर्जित तौ देव मानै बहुरि सर्व जीवनिकी दयाकं श्रेष्ठ धर्म मानै. बहुरि निर्ग्रन्थ गुरुकूं गुरु मानै सो प्रगटपणैं सम्यग्दृष्टी है. भावार्थ—सर्वज्ञ वीतराग अठारह दोषनिकरि रहित देवकूं मानै, अन्य दोषसहित देव हैं तिनिकूं संसारी जाणै, ते मोक्षमार्गी नाहीं, ऐसा जानि वंदै पूजै नाहीं. तथा अहिंसारूप धर्म जानै, जे यज्ञादि देवतानिकै अर्थ पशुघातकरि चढावैं ताकूं धर्म मानै हैं. तिसकौं

पाप ही जानि आप तिसविषै नाहीं प्रवर्ते. बहुरि जे ग्रन्थ-सहित अनेक भेष अन्यमतीनके हैं तथा काल दोषतैं जैनम-तमें भी भेष भये हैं तिनि सर्वनिकौं भेषी पाषंडी जानै, वंदै पूजै नाहीं. सर्व परिग्रहतैं रहित होय तिनिहीकूं गुरु मानि वन्दै पूजै, जातैं देव गुरु धर्मके आश्रय ही मिथ्या सम्यक् उपदेश प्रवर्ते है. सो कुदेव कुधर्म कुगुरुका वन्दना पूजना तौ दूर ही रहौ तिनिके संसर्गहीतैं श्रद्धान विगडै है. तातैं स-म्यग्दृष्टी तिनिकी संगति भी न करे। स्वामी समन्तभद्र आ-चार्य रत्नकरण्ड श्रावकाचारमें ऐसैं कह्या है, जो सम्यग्दृष्टी है सो कुदेव कुत्सित आगम अर कुलिंगी भेषी तिनिकं भ-यतैं तथा किछू आशातैं तथा लोभतैं भी प्रणाम तथा ति-निका विनय न करै इनिका संसर्गतैं श्रद्धान विगडै है. धर्मकी प्राप्ति तौ दूरि ही रहो. ऐसा जानना।

आगें मिथ्यादृष्टी कैसा होय सो कहै हैं,—

दोससहियं पि देवं जीवाहिंसाइसंजुदं धम्मं ।
गंथासत्तं च गुरुं जो मण्णदि सो हु कुद्दिट्ठी ३१८

भाषार्थ—जो जीव दोषनिसहित देवनिकूं तौ देव मानै बहुरि जीवहिंसादिसहितकूं धर्म मानै, बहुरि परिग्रहकेविषै आशक्तकूं गुरु मानै, सो प्रगटपणे मिथ्यादृष्टी है. भावार्थ—भाव मिथ्यादृष्टी तौ अदृष्ट छिप्या मिथ्याती है. बहुरि जो कुदेव राग द्वेष मोह आदि अठारह दोषनिकरि सहितकूं देव मानिकरि पूजै वन्दै हैं. अर हिंसा जीवघात आदिकरि धर्म

भावार्थ— सर्वज्ञ देव सर्व द्रव्य क्षेत्र काल भावकी अवस्था जाणै है. सो जो सर्वज्ञके ज्ञानमें प्रतिभास्या है सो नियमकरि होय है तामें अधिक हीन किछू होता नाहीं ऐसैं सम्यग्दृष्टी विचारै है ॥ ३२१–३२२ ॥

आगें ऐसैं वो सम्यग्दृष्टी है अर यामें संशय करै सो मिथ्यादृष्टी है ऐसैं कहै हैं,—

एवं जो णिच्चयदो जाणदि दव्वाणि सव्वपज्जाए ।
सो सद्दिट्ठो सुद्धो जो संकदि सो हु कुद्दिट्ठो ३२३

भावार्थ—या प्रकार निश्चयतैं सर्व द्रव्य जीव पुद्गल धर्म अधर्म आकाश काल इनिकूं बहुरि इनि द्रव्यनिकी सर्व पर्यायनिकूं सर्वज्ञके आगमके अनुसार जाणै है श्रद्धान करै है सो शुद्ध सम्यग्दृष्टी होय है. बहुरि ऐसैं श्रद्धान न करै शंका संदेह करै है सो सर्वज्ञके आगमतैं प्रतिकूल है प्रगटपणैं मिथ्यादृष्टी है ॥ ३२३ ॥

आगें कहै हैं जो विशेष तत्त्वकूं नाहीं जानै है अर जिनवचनविषै आज्ञा मात्र श्रद्धान करै है सो भी श्रद्धावान कहिये है,—

जो ण वि जाणइ तच्चं सो जिणवयणे करेइ सद्दहणं
जं जिणवरेहिं भणियं तं सव्वमहं समिच्छामि ३२४

भावार्थ—जो जीव अपने ज्ञानावरणके विशिष्ट क्षयोपशम विना तथा विशिष्ट गुरुके संयोगविना तत्त्वार्थकूं नाहीं

जान सकै है सो जीव जिनवचनविषै ऐसैं श्रद्धान करै है जो जिनेश्वर देवनै जो तत्त्व कह्या है, सो सर्व ही मैं भले प्रकार इष्ट करूं हूं ऐसे भी श्रद्धावान् होय हैं. भावार्थ—जो जिनेश्वरके वचनकी श्रद्धा करै है जो सर्वज्ञ देवने कह्या है सो सर्व मेरे इष्ट है. ऐसैं सामान्य श्रद्धातैं भी आज्ञा सम्यक्त्व कह्या है ॥ ३२४ ॥

आगें सम्यक्त्वका माहात्म्य तीन गाथाकरि कहै हैं,—

रयणाण महारयणं सव्वजोयाण उत्तमं जोयं ।
रिद्धीण महारिद्धी सम्मत्तं सव्वसिद्धियरं ॥३२५॥

भावार्थ—सम्यक्त्व है सो रत्ननिविषै तौ महारत्न है बहुरि सर्व योग कहिये वस्तुकी सिद्धि करनेके उपाय, मंत्र, ध्यान आदिक तिनिमें उत्तम योग है जातैं सम्यक्त्वतैं मोक्ष सधै है. बहुरि अणिमादिक ऋद्धि हैं तिनिमें बडी ऋद्धि है बहुत कहा कहिये सर्वसिद्धि करनेवाला यह सम्यक्त्व ही है।

सम्मत्तगुणप्पहाणो देविंदणरिंदवंदिओ होदि ।
चत्तवयो वि य पावइ सग्गसुहं उत्तमं विविहं ३२६

भावार्थ—सम्यक्त्व गुणकरि सहित जो पुरुष प्रधान है सो देवनिके इन्द्रनिकरि तथा मनुष्यनिके इन्द्र चक्रवर्त्यादिककरि वन्दनीय हो हैं. बहुरि व्रतरहित होय तौऊ उत्तम नाना प्रकारके स्वर्गके सुख पावै है. भावार्थ—जामें सम्यक्त्व गुण होय सो प्रधान पुरुष है देवेन्द्रादिककरि पूज्य होय है. ब-

हुरि सम्यक्त्वमें देवहीकी आयु बांधै है तातैं व्रतरहितकै भी स्वर्गहीका जाना मुख्य कह्या है. बहुरि सम्यक्त्वगुणप्रधान-का ऐसा भी अर्थ होय है जो सम्यक्त्व पच्चीस मल दोष-नितैं रहित होय अपने निशंकित आदि गुणनिकरि सहित होय तथा संवेगादि गुणनिकरि सहित होय ऐसें सम्यक्त्व-के गुणनिकरि प्रधान पुरुष होय सो देवेन्द्रादिकरि पूज्य होय है अर स्वर्गकूं प्राप्त होय है ॥ ३२६ ॥

सम्माइट्ठी जीवो दुग्गइहेदुं ण बंधदे कम्मं ।
जं बहुभवेसु बद्धं दुक्कम्मं तं पि णासेदि ॥ ३२७ ॥

भाषार्थ—सम्यग्दृष्टी जीव है सो दुर्गतिका कारण जो अ-शुभ कर्म ताकूं नाहीं बांधै है. बहुरि जो पापकर्म पूर्वै बहुत भवनिविषै बांध्या है तिसका भी नाश करै है. भावार्थ—स-म्यग्दृष्टी मरणकरि द्वितीयादिक नरक जाय नाहीं. ज्योतिष व्यंतर भवनवासी देव होय नाहीं. स्त्री उपजै नाहीं. पांच थावर विकलत्रय असैनी निगोद म्लेच्छ कुभोगभूमि इनि-विषै उपजै नाहीं. जातैं याकै अनन्तानुबंधीके उदयके अभा-वतैं दुर्गतिके कारण कषायनिके स्थानकरूप परिणाम नाहीं है इहां तात्पर्य ऐसा जानना जो तीनकाल तीन लोकविषै स-म्यक्त्व समान कल्याणरूप अन्य पदार्थ नाहीं है. बहुरि मि-थ्यात्वसमान शत्रु नाहीं है. तातैं श्रीगुरुनिका यह उपदेश है जो अपना सर्वस्व उद्यम उपाय यत्नकरि मिथ्यात्वका नाश

सन कहे हैं. सो व्यसन नाम आपदा वा कष्टका है सो इ-
निके सेवनहारेकूं आपदा आवै है, राज पंचनिका दंडयोग्य
होय है तथा तिनिका सेवन भी आपदा वा कष्टरूप है, श्रा-
वक ऐसे अन्याय कार्य करै नाहीं. इहां दर्शन नाम सम्य-
क्त्वका है तथा धर्मकी मूर्त्ति सर्वके देखनेमें आवै ताका भी
नाम दर्शन है. सो सम्यग्दृष्टी होय जिनमतकूं सेवै अर अभ-
क्ष अन्याय अंगीकार करै तौ सम्यक्त्वकूं तथा जिनमतकौं
लजावै मलिन करै तातैं इनकौं नियमकरि छोडे ही दर्शन-
प्रतिमाधारी श्रावक होय है ॥ ३२८ ॥

दिढचित्तो जो कुव्वदि एवं पि वयं णियाणपरिहीणो
वेरग्गभावियमणो सो वि य दंसणगुणो होदि ३२९

भाषार्थ–ऐसे व्रतकूं दृढचित्त हूवा संता निदान कहिये
इह लोक परलोकनिके भोगनिकी वांछा ताकरि रहित हूवा
संता वैराग्यकरि भावित ( आला ) है चित्त जाका, ऐसा
हूवा संता जो सम्यग्दृष्टी पुरुष करै है सो दार्शनिक श्रावक
कहिए है । भावार्थ—पहिली गाथामें श्रावक कह्या
ताके ए तीन विशेषण और जानने. प्रथम तौ दृढचित्त
होय परीषह आदि कष्ट आवै तौ व्रतकी प्रतिज्ञातैं चिगै ना-
हीं, बहुरि निदानकरि रहित होय अर इस लोकसम्बन्धी जस
सुख संपत्ति वा परलोकसम्बन्धी शुभगतिकी वांछा रहित
वैराग्य भावनाकरि चित्त जाका आला कहिये सींच्या होय
अभक्ष अन्यायकूं अत्यन्त अनर्थ जाणि त्याग करै ऐसा नाहीं

जो शास्त्रमें त्यागने योग्य कहे तातैं छोडने, परिणाममें राग मिटै नाहीं त्यागके अनेक आशय होय हैं सो याकैं अन्य आशय नाहीं केवल तीव्र कषायके निमित्त महापाप जानि त्यागै है इनिकूं त्यागे ही आगै की प्रतिमाके उपदेशयोग्य होय है. वृती निःशल्य कह्या है सो शल्यरहित त्याग होय है ऐसें दर्शनप्रतिमाधारी श्रावकका स्वरूप कह्या ॥ ३३० ॥

आगें दूजी व्रतप्रतिमाका स्वरूप कहै हैं,—

**पंचाणुव्वयधारी गुणवयसिक्खावएहिं संजुत्तो ।**
**दिढचित्तो समजुत्तो णाणी वयसावओ होदि ३३०**

भाषार्थ—जो पांच अणुव्रतका धारी होय बहुरि गुणव्रत तीन अर शिक्षाव्रत च्यारि इनिकरि संयुक्त होय बहुरि दृढचित्त होय बहुरि समभावकरि युक्त होय बहुरि ज्ञानवान होय सो व्रत प्रतिमाका धारक श्रावक है. भावार्थ—इहां अणु शब्द अल्पका वाचक है जो पंच पापमें स्थूल पाप हैं तिनिका त्याग है. तातैं अणुव्रत संज्ञा है. बहुरि गुणव्रत अर शिक्षाव्रत तिनि अणुव्रतनिकी रक्षा करनहारे हैं तातैं अणुव्रती तिनिकूं भी धारै है. याकै प्रतिज्ञा व्रतकी है सो दृढचित्त है कष्ट उपसर्ग परीषह आये शिथिल न होय है. बहुरि अप्रत्याख्यानावरण कषायके अभावतैं ये व्रत होय हैं. अर प्रत्याख्यानावरण कषायके मन्द उदयतैं होय हैं. तातैं उपशमभाव सहितपणा विशेषण कीया है. यद्यपि दर्शनप्रतिमा धारीकै भी अप्रत्याख्यानावरणका अभाव तो भया है.

परन्तु प्रत्याख्यानावरण कषायके तीव्र स्थानकनिके उदयतैं अतीचार रहित पंच अणुव्रत होय नाहीं तातैं अणुव्रतसंज्ञा नाहीं आवै है अर स्थूल अपेक्षा अणुव्रत ताकै भी त्रसका भक्षणका त्यागतैं अणुत्व है व्यसननिमें चोरीका त्याग है सो असत्य भी यामें गर्भित है परस्त्रीका त्याग है वैराग्य भावना है तातैं परिग्रहके भी मूर्छाके स्थानक घटते हैं परिमाण भी करै है परन्तु निरतिचार नाहीं होय, तातैं व्रतप्रतिमा नाम न पावै है. बहुरि ज्ञानी विशेषण है सो युक्त ही है सम्यग्दृष्टी होय करि व्रतका स्वरूप जाणि गुरुनिकी दीई प्रतिज्ञा ले है सो ज्ञानी ही होय है, ऐसें जानना ॥ ३३० ॥

आगें पंच अणुव्रतमें पहला अणुव्रत कहै हैं,—

जो वावरई सदओ अप्पाणसमं परं पि मण्णंतो ।
णिंदणगरहणजुत्तो परिहरमाणो महारंभे ॥ ३३१ ॥
तसघादं जो ण करदि मणवयकाएहिं णेव कारयदि ।
कुव्वंतं पि ण इच्छंदि पढमवयं जायदे तस्स ॥३३२

भावार्थ—जो श्रावक त्रस जीव बेन्द्रिय तेन्द्रिय चौन्द्रिय पंचेंद्रियका घात मन वचन काय करि आप करै नाहीं परके पास करावै नाहीं अर परकूं करताकौं इष्ट ( भला ) न मानै ताकै प्रथम अहिंसा नामा अणुव्रत होय है. सो कैसा है श्रावक ? दयासहित तौ व्यापार कार्यमें प्रवर्त्तै है अर सर्व प्राणीकूं आप समान मानता है. बहुरि व्यापारादि कार्यनिमें

हिंसा होय है ताकी अपने मनविषै अपनी निंदा करै है. अर गुरुनिपास अपना पापकूं कहै है सो गर्हाकरि युक्त है. जो पाप लगै है ताकूं गुरुनिकी आज्ञा प्रमाण आलोचना प्रतिक्रमण आदि प्रायश्चित्त ले है. बहुरि जिनिमें त्रस हिंसा बहुत होती होय ऐसे बडे व्यापार आदिके कार्य महा आरम्भ तिनिकों छोडता संता प्रवर्त्तै है. भावार्थ—त्रस घात आप करै नाहीं. पर पासि करावै नाहीं करतेकूं भला जानै नाहीं पर जीवकों आप समान जानै तव परघात करै नाहीं. बहुरि बडे आरंभ जिनिमें त्रस घात बहुत होय ते छोडै अर अल्प आरम्भमें त्रस घात होय तिसमें आपकी निन्दा गर्हा करै आलोचन प्रतिक्रमणादि प्रायश्चित्त करै. बहुरि इनिके अतीचार अन्य ग्रन्थनिमें कहे हैं तिनिकों टालै. इहां गाथामें अन्य जीवकों आप समान जानना कह्या है तामें अतीचार टालना भी आय गया. परके वध बंधन अतिभारारोपण अन्नपाननिरोधमें दुःख होय है सो आप समान परकूं जानै तव काहेकूं करै ॥ ३३१–३३२ ॥

आगें दूसरा अणुव्रतकों कहै हैं,—

हिंसावयणं ण वयदि कक्कसवयणं पि जो ण भासेदि।
णिट्ठुरवयणं पि तहा ण भासदे गुज्झवयणं पि ३३३

हिदमिदवयणं भासदि संतोसकरं तु सव्वजीवाणं ।
धम्मपयासणवयणं अणुव्वई हवदि सो विदिओ

भावार्थ—जो हिंसाका वचन न कहै बहुरि कर्कश वच न कहै बहुरि निष्ठुर वचन न कहै बहुरि परका गुह्य वच न कहै. तौ कैसा वचन कहै ? परके हितरूप तथा प्रमाणरू वचन कहै. बहुरि सर्व जीवनिकै संतोषका करनहारा वच कहै, बहुरि धर्मका प्रकाशनहारा वचन कहै सो पुरुष दूसर अणुव्रतका धारी होय है । भावार्थ—असत्य वचन अनेक प्रकार है. तहां सर्वथा त्याग तौ सकल चारित्री मुनिकै होय है अर अणुव्रतमें स्थूलका ही त्याग है. सो जिस वचनतें परजीवका घात होय ऐसा तौ हिंसाका वचन न कहै बहुरि जो वचन परकूं कडवा लागै सुणतें ही क्रोधादिक उपजै ऐसा कर्कश वचन न कहै. बहुरि परके उद्वेग उपजि आवै, भय उपजि आवै, शोक उपजि आवै कलह उपजि आवै ऐसा निष्ठुरवचन न कहै. बहुरि परके गोप्य मर्मका प्रकाश करनेवाला वचन न कहै. उपलक्षणतें और भी ऐसा जामें परका बुरा होय सो वचन न कहै. बहुरि कहै तौ हितमित वचन कहै । सर्व जीवनिकै संतोष उपजै ऐसा कहै. बहुरि धर्मका जातें प्रकाश होय ऐसा कहै. बहुरि याके अतीचार अन्य ग्रंथनिमें कहे हैं जो मिथ्या उपदेश रहोभ्याख्यान कूटलेखक्रिया न्यासापहार साकारमन्त्रभेद सो गाथामें विशेषण कीये तिनितें सर्व गर्भित भये. इहां तात्पर्य ऐसा जानना जो जातें परजीवका बुरा होय जाय अपने उपरि आपदा आवै तथा वृथा प्रलाप वचनतें अपने प्रमाद बढै ऐसा स्थूल असत्य वचन अणुव्रती कहै नाहीं. परपासि कहावै

नाहीं. कहनेवालेकूं भला न जानै ताकै दूसरा अणुव्रत होय है ॥ २३३–२३४ ॥

आगें तीसरा अणुव्रतकूं कहै हैं,—

**जो बहुमुल्लं वत्थुं अप्पमुल्लेण णेय गिह्णदि ।**
**वीसरियं पि ण गिह्णदि लाहे थूये हि तूसेदि २३५**

**जो परदव्वं ण हरइ मायालोहेण कोहमाणेण ।**
**दिढचित्तो सुद्धमई अणुव्वई सो हवे तिदिओ २३६**

भावार्थ—जो श्रावक बहु मोलकी वस्तु अल्पमोलकरि न ले, बहुरि कपटकरि लोभकरि क्रोधकरि मानकरि परका द्रव्य न ले, सो तीसरा अणुव्रत धारी श्रावक होय है. सो कैसा है? दृढ है चित्त जाका, कारण पाय प्रतिज्ञा बिगाडै नाहीं। बहुरि शुद्ध है उज्वल है बुद्धि जाकी. भावार्थ—सातव्यसनके त्यागमें चोरीका त्याग तो किया ही है तामें इहां यह विशेष जो बहु मोलकी वस्तु अल्प मोलमें लेनेमें तो झगडा उपजै है न जानिये है कौन कारणतें पैला अल्पमें दे है. बहुरि परकी भूली वस्तु तथा मार्गमें पडी वस्तु भी न ले, यह न जाणै तो पैला न जाणै ताका डर कहा? बहुरि व्यापारमें थोडे ही लाभ वा नफाकरि संतोष करै, बहुत लाभके लोभतैं अनर्थ उपजै है. बहुरि कपट प्रपंचकरि काहूका धन ले नाहीं. कोईनै आपके पास धरया होय तो ताकूं न देनेके भाव राखै नाहीं. बहुरि लोभकरि तथा क्रोधकरि परका

खोसि न ले तथा मानकरि कहै हम बडे जोरावर हैं लीया तौ लीया. ऐसें परका धन ले नाहीं. ऐसैं ही परकौं लिवावै नाहीं. ऐसैं लेतेकूं भला जाणै नाहीं. बहुरि अन्य ग्रन्थनिमें याके पांच अतीचार कहे हैं. चोरकौं चोरीके अर्थ प्रेरणा करणा, तिसका ल्याया धन लेना, राज्यतैं विरुद्ध होय सो कार्य करना, व्योपारके तोल बाट हीनाधिक रखणे, अल्पमोलकी वस्तुकूं बहु मोलकी दिखाय ताका व्योहार करना, ए पांच अतीचार हैं सो गाथामें विशेषण किये तिनिमें आय गये. ऐसैं निरतिचार स्तेयत्यागव्रतकूं पालै सो तीसरा अणुव्रतका धारी श्रावक होय है ॥ ३३५-३३६ ॥

आगें ब्रह्मचर्यव्रतका व्याख्यान करै हैं,—

असुइमयं दुग्गंधं महिलादेहं विरच्चमाणो जो ।
रूवं लावण्णं पि य मणमोहणकारणं मुणइ ॥३३७

जो मण्णदि परमहिलं जणणीबहणीसुआइसारित्थं ।
मणवयणे कायेण वि बंभवई सो हवे थूलो ॥३३८॥

भावार्थ—जो श्रावक स्त्रीकी देहकूं अशुचिमयी दुर्गन्ध जाणतो संतो तथा ताका रूप लावण्य ताकौं भी मनकेविषै मोह उपजावनेकौं कारण जाणै है यातें विरक्त हूवा सन्ता प्रवर्ते है बहुरि जो परस्त्री बडीकौं माता सरिखी, बराबरिकीकूं बहणसारिखी, छोटीकौं बेटीसारिखी, मनवचनकायकरि जो जाणै है सो स्थूल ब्रह्मचर्यका धारक श्रावक है. प-

रस्त्रीका तो मनवचनकाय कृतकारित अनुमोदनाकरि त्याग करै अर स्वस्त्रीकेविषै संतोष करै. तीव्रकामके विनोद क्रीडारूप न प्रवर्त्तै. जातैं स्त्रीके शरीरकूं अपवित्र दुर्गन्ध जाणि वैराग्य भावनारूप भाव राखै. अर कामकी तीव्र वेदना इस स्त्रीके निमित्तैं होय है ताके रूप लावण्य आदि चेष्टाकूं मनके मोहनेकौं ज्ञानके भुलावनेकौं कामके उपजावनेकौं कारण जाणि विरक्त रहै सो चतुर्थ अणुव्रतका धारी होय है. वहुरि याके अतीचार परविवाह करणा, परकी परणी विनापरणी स्त्रीका संसर्ग, कामकी क्रीडा, कामका तीव्र अभिप्राय, ए कह्या है. ते स्त्रीका देहतैं विरक्त रहना इस विशेषणमें आय गये. परस्त्रीका त्याग तौ पहली प्रतिमामें सात व्यसनके त्यागमें आय गया, इहां अति तीव्र कामकी वासनाका भी त्याग है. तातैं अतीचार रहित व्रत पलै है. अपनी स्त्रीकेविषै भी तीव्रपणा नाहीं होय है. ऐसैं ब्रह्मचर्य व्रतका कथन कीया ॥ ३३७-३३८ ॥

अब परिग्रहपरिमाण पांचमा अणुव्रतका कथन करै हैं—

जो लोहं णिहणित्ता संतोसरसायणेण संतुट्ठो ।
णिहणदि तिह्णा दुट्ठा मण्णंतो विणस्सरं सव्वं ३३९॥
जो परिमाणं कुव्वदि धणधाणसुवण्णखित्तमाईणं ।
उवओगं जाणित्ता अणुव्वयं पंचमं तस्स ॥३४०॥

भावार्थ—जो पुरुष लोभ कषायकौं हीनकरि संतोष

रसायण करि संतुष्ट हूवा संता सर्व धन धान्यादि परिग्रहकौं विनाशीक मानता संता दुष्ट तृष्णाकौं अतिशयकरि हणै है. वहुरि धन धान्य सुवर्ण क्षेत्र आदि परिग्रहका अपना उपयोग सामर्थ्य जाणि कार्यविशेष जाणि तिसके अनुसार परिमाण करै है ताकै पांचमा अणुव्रत होय है. अंतरंगका परिग्रह तौ लोभ तृष्णा है ताकौं क्षीण करै अर वाह्यका परिग्रह परिमाण करै अर दृढचित्तकरि प्रतिज्ञाभंग न करै सो अतिचाररहित पंचम अणुव्रती होय है. ऐसैं पांच अणुव्रत निरतिचार पालै सो व्रत प्रतिमाधारी श्रावक है ऐसैं पांच अणुव्रतका व्याख्यान कीया ॥ ३३९–३४० ॥

अव इनि व्रतनिकौं रक्षाकरनेवाले सात शील हैं तिनिका व्याख्यान करै हैं तिनिमें पहले तीन गुणव्रत हैं तामें पहला गुणव्रतकौं कहै हैं,—

जह लोहणासणट्ठं संगपमाणं हवेइ जीवस्स ।
सव्वं दिसिसु पमाणं तह लोहं णासए णियमा ३४१
जं परिमाणं कीरदि दिसाण सव्वाण सुप्पसिद्धाणं ।
उवओगं जाणित्ता गुणव्वयं जाण तं पढमं ॥३४२॥

भावार्थ—जैसैं लोभके नाश करनेके अर्थ जीवकै परिग्रहका परिमाण होय है तैसैं सर्व दिशानिविषैं परिमाण कीया हूवा भी नियमतैं लोभका नाश करै है. तातैं जे सर्व ही जे पूर्व आदि प्रसिद्ध दश दिशा तिनिका अपना उपयोग प्रयो-

भावार्थ—परके दोषनिका ग्रहण करना परकी लक्ष्मी धन सम्पदाकी वांछा करना परकी स्त्रीकूं रागसहित देखना परकी कलहकूं देखना इत्यादि कार्यनिकूं करै सो पहला अनर्थदंड है. भावार्थ—परके दोषनिका ग्रहण करनेमें अपने भाव तौ विगड़ैं अर प्रयोजन अपना किछू सिद्ध नाहीं, परका बुरा होय आपकै दुष्टपना ठहरै. वहुरि परकी सम्पदा देखि आप ताकी इच्छा करै तौ आपकै किछू आय जाय नाहीं यामें भी निःप्रयोजन भाव विगडै है. वहुरि परकी स्त्रीकूं रागसहित देखनेमें भी आप त्यागी होयकरि निःप्रयोजन भाव काहेकूं विगाडै ? वहुरि परकी कलहके देखनेमें भी किछू अपना कार्य सधता नहीं. उलटा आपमें भी किछू आफति आय पडै है. ऐसैं इनिकूं आदि देकरि जिन कार्यनिविषै अपने भाव विगडैं तहां अपध्यान नामा पहला अनर्थदंड होय है सो अणुव्रतभंगका कारण है याके छोडें व्रत दृढ रहै हैं ॥ ३४४ ॥

अब दूजा पापोपदेश नामा अनर्थदंडकूं कहै हैं,—

जो उवएसो दिज्जइ किसिपसुपालणवाणिज्जपमुहेसु ।
पुरिसित्थीसंजोए अणत्थदंडो हवे बिदिओ ॥३४५॥

भावार्थ—जो खेती करना पशुका पालना वाणिज्य करना इत्यादि पापसहित कार्य तथा पुरुष स्त्रीका संजोग जैसैं होय तैसैं करना इत्यादि कार्यनिका परकूं उपदेश देना इनिका विधान वतावना जामैं किछू अपना प्रयोजन सधै

नाहीं केवल पाप ही उपजै सो दूजा पापोपदेश नाम अनर्थ-दंड है. परकूं पापके उपदेशमें अपने केवल पाप ही बंधे है. तातैं व्रतभंग होय है तातैं याकूं छोडै उनकी रक्षा है व्रत परि गुण करै है उपकार करै है तातैं याका नाम गुणव्रत है ॥ ३४५ ॥

आगें तीसरा प्रमादचरित नाम अनर्थदंडका भेदकूं कहै हैं,—

विहलो जो वावारो पुढवीतोयाण अग्गिपवणाण ।
तह वि वणप्फदिछेओ अणत्थदंडो हवे तिदिओ ३४६

भावार्थ-पृथ्वी जल अग्नि पवन इनिके विफल निःप्रयोजन व्यापारमें प्रवृत्ति करना तथा निःप्रयोजन वनस्पति हरतिकायका छेदन भेदन करना सो तीसरा प्रमादचरित नामा अनर्थ दण्ड है. भावार्थ— जो प्रमादके वशि होकर पृथिवी जल अग्नि पवन हरितकायकी निःप्रयोजन विराधना करै तहां त्रस थावरनिका घात ही होय अपना कार्य किछू सधै नाहीं तातैं याके करनेमें व्रत भंग है. छोडें व्रतकी रक्षा होय है ॥ ३४६ ॥

आगें चौथा हिंसादान नामा अनर्थदंडकूं कहै हैं,

मज्जारपहुदिधरणं आयुधलोहादिविक्कणं जं च ।
लक्खाखलादिगहणं अणत्थदंडो हवे तुरिओ ३४७

भावार्थ-जो बिलाव आदि जो हिंसक जीवोंका

आजीविका ही श्रेष्ट है. जामें व्रतभंग होय सो काहेकूं करै?
व्रतकी रक्षा ही करनी ॥ ३४८ ॥

आगें इस अनर्थदंडके कथनकूं संकोचै हैं,—

एवं पंचपयारं अणत्थदंडं दुहावहं णिच्चं ।
जो परिहरेइ णाणी गुणव्वदी सो हवे विदिओ ३४९

भापार्थ-जो ज्ञानी श्रावक इसप्रकार अनर्थदंडकूं दुःखनिका निरन्तर उपजावनहारा जाणि छोडै है सो दूसरा गुणव्रतका धारी श्रावक होय है. भावार्थ—यह अनर्थदंडका त्यागनामा गुणव्रत अणुव्रतनिका वडा उपकारी है तातैं श्रावकनिकूं अवश्य पालना योग्य है ॥ ३४९ ॥

आगें भोगोपभोगनामा तीसरा गुणव्रतकूं कहै हैं,--

जाणित्ता संपत्ती भोयणतंबोलवत्थुमाईणं ।
जं परिमाणं कीरदि भोउवभोयं वयं तस्स ॥ ३५० ॥

भापार्थ—जो अपनी सम्पदा सामर्थ्य जाणि अर भोजन तांबूल वस्त्र आदिका परिमाण मर्याद करै तिस श्रावककै भोगोपभोग नाम गुणव्रत होय है. भावार्थ— भोग तौ भोजन तांबूल आदि एकवार भोगमें आवै सो कहिए. बहुरि उपभोग वस्त्र गहणा आदि फेरि २ भोगमें आवै सो कहिये. तिनिका परिमाण यमरूप भी होय है अर नियमरूप भी होय है सो यथाशक्ति अपनी सामग्रीकूं विचारि यमरूप करि ले तथा नियमरूप भी करे हैं तिनितैं नित्य

काम जाणै तिस अनुसार करवो करै. यह अणुवृतका वडा उपकारी है ॥ ३५० ॥

आगें भोगपभोगकी छती वस्तुकं छोडै है ताकी प्रशंसा करै है,—

जो परिहेरइ संतं तस्स वयं थुव्वदे सुरिंदेहिं ।
जो मणुलड्डुव भक्खदि तस्स वयं अप्पसिद्धियरं ॥

भावार्थ—जो पुरुष छती वस्तुकूं छोडै है ताके वृतकूं सुरेन्द्र भी सरावै है प्रशंसा करै है वहुरि अणछतीका छोडणा तौ ऐसा है जैसैं लाडू तौ होय नाहीं अर संकल्पमात्र मनमें लाडूकी कल्पनाकरि लाडू खाय तैसा है. सो अणछती वस्तु तौ संकल्पमात्र छोडी ताकै वह छोडना वृत तौ है परन्तु अल्पसिद्धि करनेवाला है. ताका फल थोडा है. इहां कोई पूछै भोगोपभोग परिमाणकूं तीसरा गुणवृत कह्या सो तत्त्वार्थसूत्रविषै तौ तीसरा गुणवृत देशवृत कह्या है भोगोपभोग परिमाणकूं तीसरा शिक्षावृत कह्या है सो यह कैसैं ? ताका समाधान—जो यह आचार्यनिकी विवक्षाका विचित्रपणा है. स्वामी समंतभद्र आचार्यने भी रत्नकरण्डश्रावकाचारमें इहां कह्या तैसैं ही कह्या है सो यामें विरोध नाहीं. इहां तौ अणुव्रतकी उपकारीकी अपेक्षा लई है अर तहां सचित्तादि भोग छोडनेकी अपेक्षा मुनिव्रतकी शिक्षा देनेकी अपेक्षा लई है किछू विरोध है नाहीं. ऐसैं तीन गुणव्रतका व्याख्यान किया ॥ ३५१ ॥

बहुरि अपना स्वरूपविषै लीन हूवा संता अथवा सामायिक का वंदनाका पाठके अर्थकूं चितवता संता प्रवर्त्तै, बहुरि क्षेत्रका परिमाणकरि सर्व सावद्ययोग जो गृह व्यापारादि पापयोग ताकौं त्यागकरि पापयोगतैं रहित होय सामायिक करै सो श्रावक तिसकाल मुनि सारिखा है. भावार्थ—यह शिक्षाव्रत है तहां यह अर्थ सूचै है जो सामायिक है सो सर्व रागद्वेषसूं रहित होय सर्व बाह्यके पापयोग क्रियासूं रहित होय अपने आत्मस्वरूपकेविषै लीन हूवा मुनि प्रवर्त्तै है सो यह सामायिक चारित्र मुनिका धर्म है. सो ही शिक्षा श्रावककूं दीजिये है जो सामायिक कालकी मर्यादाकरि तिस कालमें मुनिकी रीति प्रवर्त्तै जातैं मुनि भये ऐसैं सदा रहना होयगा, इस ही अपेक्षाकरि तिसकाल मुनि सारिखा श्रावककूं कह्या है ॥ ३५५–३५७ ॥

आगें दूसरा शिक्षाव्रत प्रोषधोपवासकूं कहै हैं,—

ण्हाणविलेवणभूसणइत्थीसंसग्गगंधधूपदीवादि ।
जो परिहरेदि णाणी वेरग्गाभरणभूसणं किच्चा ३५८
दोसु वि पव्वेसु सया उववासं एयभत्तणिव्वियडी
जो कुणइ एवमाई तस्स वयं पोसहं विदियं ॥३५९॥

भावार्थ—जो ज्ञानी श्रावक एकपक्षविषै दोय पर्व आठैं चौदसिविषै स्नान विलेपन आभूषण स्त्रीका संसर्ग सुगंध धूप दीप आदि भोगोपभोग वस्तुकूं छोडै अर वैराग्य भा-

आहार ही तैं प्राणोंकी रक्षा होय तातैं यही अभयदान भया ऐसैं ही दानमें तीनूं गर्भित भये ॥ ३६३-३६४ ॥

आगे दानका माहात्म्यहीकूं फेरि कहै हैं,—

इहपरलोयणिरीहो दाणं जो देदि परमभत्तीए ।
रयणत्तयेसु ठविदो संघो सयलो हवे तेण ॥ ३६५ ॥
उत्तमपत्तविसेसे उत्तमभत्तीए उत्तमं दाणं ।
एयदिणे वि य दिण्णं इंदसुहं उत्तमं देदि ॥ ३६६ ॥

भाषार्थ—जो पुरुष ( श्रावक ) इसलोक परलोकके फलकी वांछा रहित हूवा संता परम भक्तिकरि संघके निमित्त दान देहै ता पुरुषने सकल संघकूं रत्नत्रय सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रविषैं स्थाप्या । बहुरि उत्तम पात्रका विशेषकै अर्थ उत्तम भक्तिकरि उत्तम दान एक दिन भी दीया हूवा उत्तम इन्द्रपदका सुखकूं देहै । भावार्थ—दानके दीये चतुर्विध संघकी थिरता होय है तो दानके देनेवालेने मोक्षमार्ग ही चलाया कहिये । बहुरि उत्तम ही पात्र उत्तम ही दाताकी भक्ति करि उत्तम ही दान सर्व ऐसी विधि मिलै ताका उत्तम ही फल होय है । इन्द्रादिक पदनिका सुख मिलै है ॥ ३६५-३६६ ॥

आगे चौथा देशावकाशिक शिक्षाव्रतकूं कहै हैं,—

पुव्वपमाणकदाणं सव्वदिसीणं पुणो वि संवरणं ।
इंदियविसयाण तहा पुणो वि जो कुणदि संवरणं ॥

वारसवएहिं जुत्तो जो संलेहण करेदि उवसंतो ।
सो सुरसोक्खं पाविय कमेण सोक्खं परं लहदि ३६

भापार्थ—जो श्रावक बारहवृतनिकरि सहित हूवा अं
समय उपशम भावनिकरि युक्त होय सलेखना करै है स
स्वर्गके सुख पायकरि अनुक्रमतैं उत्कृष्ट सुख जो मोक्ष
सुख सो पावै है। भावार्थ—सल्लेखना नाम कषायनिका अ
कायके क्षीण करनेका है सो श्रावक वारह व्रत पालि. पीछे
मरणका समय जाणैं तब पहली सावधान होय सर्व वस्तु
ममत्व छोडि कषायनिकूं क्षीणकरि उपशम भावरूप मंद क
पायरूप होय रहै। अर कायकूं अनुक्रमतैं ऊणोदर नीर
आदि तपनिकरि क्षीण करै। पहले ऐसे कायकूं क्षीण क
तौ शरीरमें मलके मूत्रके निमित्ततैं जो रोग होय हैं वे रो
न उपजै। अंतसमै असावधान न होय। ऐसें सल्लेखना क
अंतसमय सावधान होय अपने स्वरूपमें तथा अरहंत सिद्ध
परमेष्ठीका स्वरूप चिंतवनमें लीन हूवा तथा व्रतरूप संवर
परिणाम सहित हूवा संता पर्यायकूं छोडै तौ स्वर्गके सुख
निकं पावै। बहुरि तहां भी यह वांछा रहै जो मनुष्य हो
व्रत पालूं ऐसें अनुक्रमतैं मोक्ष सुखकी प्राप्ति होय है॥

एक्कं पि वयं विमलं सद्दिट्ठी जइ कुणेदि दिढचित्तो ।
तो विविहरिद्धिजुत्तं इंदत्तं पावए णियमा ॥ ३७०

भापार्थ—जो सम्यग्दृष्टी जीव दृढचित्त हूवा

भी व्रत अतीचाररहित निर्मल पालै तौ नानाप्रकारकी ऋद्धिनिकरि युक्त इन्द्रपणा नियमकरि पावै. भावार्थ—इहां एक भी व्रत अतीचाररहित पालनेका फल इन्द्रपणा नियमकरि कह्या. तहां ऐसा आशय सूचै है जो व्रतनिके पालनेके परिणाम सर्वके समानजाति हैं. जहां एक व्रत दृढचित्तकरि पालै तहां अन्य तिसके समान जातीय व्रत पालनेके अर्थ अविनाभावीपणा है सो सर्व ही व्रत पाले कहे. बहुरि ऐसा भी है जो एक आखडी त्यागकूं अन्तसमै दृढचित्तकरि पकडि ताविषै लीन परिणाम भये संतै पर्याय छूटै तौ तिसकाल अन्य उपयोगके अभावतैं बडा धर्म्य ध्यान सहित परगतिकूं गमन होय तब उच्चगति ही पावै. यह नियम है. ऐसा आशयतैं एक व्रतका ऐसा माहात्म्य कह्या है. इहां ऐसा न जानना जो एक व्रत तौ पालै अर अन्य पाप सेया करै ताका भी ऊंचा फल होय. ऐसैं तो चोरी छोडै परस्त्री सेयवो करै हिंसादिक करवो करै ताका भी उच्च फल होय सो ऐसा नाहीं है. ऐसैं दूजी व्रतप्रतिमाका निरूपण कीया. बारह भेदकी अपेक्षा यह तीसरा भेद भया ॥ ३७० ॥

आगें तीजी सामायिकप्रतिमाका निरूपण करै हैं,—

जो कुणइ काउसग्गं बारसआवत्तसंजुदो धीरो ।
णमुणदुगं पि करंतो चदुप्पणामो पसण्णप्पा ३७१
[illegible]तो ससरूवं जिणबिंबं अहव अक्खरं परमं ।

तरायकी उदयकी जाति है. इत्यादि कर्मके उदयकूं चिंतवै यह विशेष कह्या. बहुरि ऐसा भी विशेष जानना जो शिक्षाव्रतमें तौ मन वचनकायसंबंधी कोई अतीचार भी लागै तथा कालकी मर्यादा आदि क्रियामें हीनाधिक भी होय है बहुरि इहां प्रतिमाकी प्रतिज्ञा है सो अतीचार रहित शुद्ध पलै है. उपसर्ग आदिके निमित्ततैं टलै नाहीं है ऐसा जानना. याके पांच अतीचार हैं. मन वचन कायका डुलावना अनादर करणा, भूलिजाणा ए अतीचार न लगावै. ऐसैं सामायिक प्रतिमा बारह भेदकी अपेक्षा चौथा भेद भया ।
॥ ३७१-३७२॥

आगैं प्रोषधप्रतिमाका भेद कहैं हैं,-

सत्तमितेरसिदिवसे अवरह्ले जाइऊण जिणभवणे ।
किरियाकम्मं काऊ उववासं चउविहं गहिय ३७३
गिहवावारं चत्ता रत्तिं गमिऊण धम्मचिंताए ।
पच्चूहे उट्ठित्ता किरियाकम्मं च काढूण ॥ ३७४ ॥
सत्थब्भासेण पुणो दिवसं गमिऊण वंदणं किच्चा ।
रत्तिं णेदूण तहा पच्चूहे वंदणं किच्चा ॥ ३७५ ॥
पुज्जणविहिं च किच्चा पत्तं गहिऊण णवरि तिविहं पि
भुंजाविऊण पत्तं भुंजंतो पोसहो होदि ॥ ३७६ ॥

भावार्थ—सातैं तेरसिकै दिन दोय पहर पीछैं जिन चै-

त्यालय जाय अपराह्नको सामायिक आदि क्रिया कर्मकरि च्यारि प्रकार आहारका त्यागकरि उपवास ग्रहण करै. गृहका समस्त व्योपारकूं छोडिकरि धर्म ध्यानकरि तेरसिसातैंकी राति गमावै. प्रभात उठिकरि सामायिक क्रिया कर्म करै. आठैं चौदसिका दिन शास्त्राभ्यास धर्म ध्यानकरि गमाय अपराह्नका सामायिक क्रिया कर्म करि राति तैसें ही धर्मध्यान करि गमाय नवमी पुर्णमासीकै प्रभात सामायिक वन्दनाकरि जिनेश्वरका पूजन विधानकरि तीन प्रकारके पात्रकौं पडगाहि बहुरि तिस पात्रकौं भोजन कराय आप भोजन करै ताकै प्रोषध होय है. भावार्थ—पहलै शिक्षाव्रतमें प्रोषधकी विधि कही थी, सो भी इहां जाननी. गृहव्यापार भोग उपभोगकी सामग्री समस्तका त्यागकरि एकांतमें जाय बैठै अर सोलह पहर धर्मध्यानसें गमावणी. इहां विशेष इतना जो तहां सोलह पहरका कालका नियम नाहीं कहा था अर अतीचार भी लागै. अर इहां प्रतिमाकी प्रतिज्ञा है यामें सोलह पहरका उपवास नियमकरि अतीचार रहित करै है. अर याके अतीचार पांच हैं. जो वस्तु जिस काल राखी होय तिसका उठावना मेलना तथा सोवने बैठनेका संथारा करना सो विना देख्या जायगा, विना यतनतैं करै सो तीन अतीचार तौ ए. अर उपवासकैविषै अनादर करै, प्रीति नाहीं करै अर क्रिया कर्ममें भूलि जाय ए पांच अतीचार ल... नाहीं ॥ ३७३–३७६ ॥

आगें सचित्तत्यागप्रतिमाकौं कहै हैं,—

सच्चित्तं पत्तफलं छल्लीमूलं च किसलयं बीजं ।
जो णय भक्खदि णाणी साचित्तविरओ हवे सो वि ॥

भाषार्थ—जो ज्ञानी सम्यग्दृष्टी श्रावक पत्र फल त्वक छालि मूल कूंपल बीज ए सचित्त नाहीं भक्षण करै. सो सचित्तविरती श्रावक कहिये. भावार्थ—जीवकरि सहित होय ताकौं सचित्त कहिये है. सो पत्र फल छालि मूल बीज कूंपल इत्यादि हरित वनस्पति सचित्तकूं न खाय सो सचित्तविरत प्रतिमाका धारक श्रावक होय है * । ॥ ३७९॥

जो ण य भक्खेदि सयं तस्स ण अण्णस्स जुज्जदे दाउं
भुत्तस्स भोजिदस्सहि णत्थि विसेसो तदो को वि ॥

भाषार्थ—बहुरि जो वस्तु आप न भखै ताकूं अन्यकूं देना योग्य नाहीं है जातैं खानेवाले अर खुवावनेवालेमें किछू विशेष नाहीं है कृतका अर कारितका फल समान है तातैं जो वस्तु आप न खाय सो अन्यकूं भी न खुवाइये तव सचित्त त्याग व्रत पलै ॥ ३८० ॥

---

* सुक्कं पक्कं तत्तं अंबिललवणेहि मिस्सियं दव्वं ।
जं जंतेण य छिण्णं तं सव्वं फासुयं भणियं ॥ १ ॥

भाषार्थ-सूका हुवा, पकाया हुवा, खटाई अर लवणतें, मिला हुवा तथा जो यंत्रसे छिन्नभिन्न किया हुवा अर्थात् शोधा हुवा हो ऐसा सब हरितकाय प्रासुक कहिये जीवरहित अचित्त होता है ।

जो वज्जेदि सचित्तं दुज्जय जीहा वि णिज्जिया
दयभावो होदि किओ जिणवयणं पालियं तेण

अर्थ—जो श्रावक सचित्तका त्याग करै है तिसनै
इन्द्रियका जीतना कठिन सो भी जीती, बहुरि दयाभाव
किया, बहुरि जिनेश्वर देवके वचन पाले. भावार्थ—सचि
का त्यागमें बडे गुण हैं. जिह्वा इन्द्रियका जीतना होय
प्राणीनिकी दया पलै है. बहुरि भगवानके वचन पलै
जातैं हरित कायादिक सचित्तमें भगवानने जीव कहे हैं
आज्ञा पालन भया. याका अतीचार जो सचित्तैं मिल
स्तु तथा सचित्तैं बंध संबंधरूप इत्यादिक हैं ते अतीचार
गावै नाहीं तब शुद्ध त्याग होय. तब प्रतिमाकी प्रतिज्ञा
है. भोगोपभोग व्रतमें तथा देशावकाशिक व्रतमें भी सचि
का त्याग कह्या है परन्तु निरतीचार नियमरूप नाहीं
नियमरूप निरतीचार त्याग होय है. ऐसैं सचित्त त्याग पं
मी प्रतिमा अर बारहभेदनिमें छट्ठा भेद वर्णन किया ३०

आगे रात्रिभोजनत्याग प्रतिमाकूं कहै हैं,—

जो चउविहं पि भोज्जं रयणीए णेव भुंजदे णाणी
ण य भुंजावइ अण्णं णिसिविरओ सो हवे भोज्जो

भावार्थ—जो ज्ञानी सम्यग्दृष्टी श्रावक रात्रिविषै च्या
प्रकार अशन पान खाद्य स्वाद्य आहारकूं नाहीं भोगवै
नाहीं खाय है. बहुरि परकूं नाहीं भोजन करावै है सो अ

। भोजनका त्यागी होय है. भावार्थ—रात्रि भोजन-
मांसके दोषकी अपेक्षा तथा रात्रिविषैं बहुत आरंभतैं
तकी अपेक्षा पहली दूजी प्रतिमामें ही त्याग कराये
तु यहां कृतकारित अनुमोदना अर मन वचन कायके कोई
ागै तातैं शुद्धत्याग नाहीं. इहां प्रतिमाकी प्रतिज्ञाविषै
त्याग होय है तातैं प्रतिमा कही है ॥ ३८२ ॥

णिसिभुत्तिं वज्जदि सो उववासं करेदि छम्मासं
च्छरस्स मज्झे आरंभं मुयदि रयणीए ॥ ३८३ ॥

भावार्थ-जो पुरुष रात्रि भोजनकौं छोडै है सो वरस दिनमें
छह महीनाका उपवास करै है. बहुरि रात्रि भोजनके त्या-
गतैं भोजन संबंधी आरंभ भी त्यागै है. बहुरि व्यापार आ-
दिका भी आरंभ छोडै है सो महान दया पालै है. भावार्थ—
जो रात्रि भोजन त्यागै सो वरसदिनमें छह महीनाका उप-
वास करै है. बहुरि अन्य आरंभका भी रात्रिमें त्याग करै
है बहुरि अन्य ग्रंथनिमें इस प्रतिमाविषै दिनमें स्त्री सेवनका
भी मनवचनकाय कृतकारितअनुमोदनाकरि त्याग कह्या है.
ऐसैं रात्रिभुक्तत्यागप्रतिमाका निरूपण कीया. यह प्रतिमा
छठी वारह भेदनिमें सातवां भेद भया ॥ ३८२ ॥

आगें ब्रह्मचर्य प्रतिमाका निरूपण करै है,—

सव्वेसिं इत्थीणं जो अहिलासं ण कुव्वदे णाणी ।
मण वाया कायेण य बंभवई सो हवे सदिओ ३८

भापार्थ—जो श्रावक पापके मूल जे गृहस्थके कार्य तिनिविषै अनुमोदना न करै. कैसा हूवा संता जो भवितव्य है सो होय है ऐसैं भावना करता संता सो अनुमोदनविरति प्रतिमाधारी श्रावक है. भावार्थ—गृहस्थके कार्यके आहारके निमित्त आरम्भादिककी भी अनुमोदना न करै. उदासीन हूवा घरमें भी बैठै. वाह्य चैत्यालय मठ मंडपमें भी बैठै. भोजनकौं घरका तथा अन्य श्रावक बुलावै ताकैं भोजन करि आवै. ऐसा भी न कहै जो हमारे ताई फलाणी वस्तु तयार कीज्यो. जो कुछ गृहस्थ जिमावै सोही जीमि आवै सो दसमी प्रतिमाका धारी श्रावक होय है ॥ ३८८ ॥

जो पुण चिंतदि कज्जं सुहासुहं रायदोससंजुत्तो।
उवओगेण विहीणं स कुणदि पावं विणा कज्जं ३८९

भापार्थ—जो विना प्रयोजन रागद्वेषकरि संयुक्त हूवा सन्ता शुभ तथा अशुभ कार्यकौं चिंतवन करै है, सो पुरुष विना कार्य पाप उपजावै है. भावार्थ—आप तौ त्यागी भया फेरि विना प्रयोजन गृहस्थके शुभकार्य पुत्रजन्मप्राप्ति विवाहादिक अर अशुभकार्य काहूकौं पीडा देना मारना बांधना इत्यादि शुभाशुभ कार्यनिकौं चितवन करै रागद्वेष परिणाम करै तो निरर्थक पाप उपजावै ताकै दसमी प्रतिमा कैसैं होय ? तातैं ऐसी बुद्धि रहै जो जैसी तरह भवितव्य है तैसैं होयगा जैसैं आहार मिलणा है तैसैं मिलि रहैगा. ऐसैं परिणाम रहैं अनुमतित्याग पलै है. ऐसैं बारह भेदमें ग्यारहवां भेद कहा।

आगें उद्दिष्टविरतिप्रतिमाका स्वरूप कहै हैं,—

जो णव कोडिविसुद्धं भिक्खायरणेण भुंजदे भोज्जं ।
जायणरहियं जोग्गं उद्दिट्ठाहारविरओ सो ३९०

भावार्थ—जो श्रावक भोज्य जो आहार ताकूं नवकोटि विशुद्ध कहिये मनवचनकाय कृतकारितअनुमोदनाका आपकूं दोष लागै नाहीं, ऐसा भिक्षाचरण करि ले, तहां भी याचना रहित ले. मांगिकरि न ले, सो भी योग्य ले, सचित्तादिक अयोग्य होय सो न ले, सो उद्दिष्ट आहारका त्यागी है. भावार्थ—घर छोडि मठ मंडपमें रहै, भिक्षाकरि आहार ले जो याके निमित्त कोई आहार करै तौ, तिस आहारकूं न ले, बहुरि मांगिकरि न ले, बहुरि अयोग्य मांसादिक तथा सचित्त आहार न ले, ऐसा उद्दिष्टविरत श्रावक है ॥३९०॥

आगें अंतसमयविषै श्रावक आराधना करै ऐसैं कहै हैं,—

जो सावयवयसुद्धो अंते आराहणं परं कुणदि ।
सो अच्चुदम्मि सग्गे इंदो सुरसेविओ होदि ३९१

भावार्थ—जो श्रावक व्रतकरि शुद्ध पुरुष है अर अंत समय उत्कृष्ट आराधना दर्शनज्ञानचारित्रतपकूं आराधै है सो अच्युत स्वर्गविषै देवनिकरि सेवनीक इन्द्र होय है. भावार्थ—जो सम्यग्दृष्टी श्रावक ग्यारह प्रतिमाका निरतिचार शुद्ध व्रत पालै है, बहुरि अंतसमय मरणकालविषै दर्शन ज्ञान चरित्र तप आराधनाकूं आराधै है; सो अच्युत स्वर्ग-

विषै इन्द्र होय है. यह उत्कृष्ट श्रावकके व्रतका उत्कृष्ट फल है. ऐसैं ग्यारमी प्रतिमाका स्वरूप कह्या, अन्य ग्रंथनिमें याके दोय भेद कहे हैं; पहला भेदवाला तौ एक वस्त्र राखै, केस-निकौं कतरणी तथा पाछणासूं सौंरावै प्रतिलेखण हस्तादि-कसूं करै, भोजन बैठा करै अपने हाथसूंभी करै, अर पात्रमें भी करै. वहुरि दूसरा केसनिका लौंच करै. प्रतिलेखण पीछिसूं करै . अपने हाथहीमें भोजन करै, कोपीन धारै, इ-त्यादि याकी विधि अन्य ग्रन्थनितैं जाननी । ऐसैं प्रतिमा तौ ग्यारमी भई अर बारह भेद कहे थे, तिनिमें यह बारमा भेद श्रावकका भया । अब इहां संस्कृतटीकाकार अन्य ग्रंथ-निके अनुसार किछू कथन श्रावकका लिख्या है, सो भी संक्षेपतैं लिखिये है. तहां छट्ठी प्रतिमातांई तौ जघन्य श्रावक कह्या है. अर सातमी आठमी नवमी प्रतिमाका धारक म-ध्यम श्रावक कह्या है । अर दसमी ग्यारमी प्रतिमावाला उत्कृष्ट श्रावक कह्या है । वहुरि कह्या है जो समितिसहित प्रवर्तें तौ अणुव्रत सफल है. अर समितिरहित प्रवर्तें तौ व्रत पालता भी अव्रती है. वहुरि कह्या है जो गृहस्थके असि मसि कृषि वाणिज्यके आरंभमें त्रस थावरकी हिंसा होय है, सो त्रसहिंसाका त्याग याकै कैसें वणै है. सो याका समा-धानके अर्थ कहे हैं-जो पक्ष, चर्या, साधकता, तीन प्रवृत्ति श्रावककी कही हैं. तहां पक्षका धारक तो पाक्षिक श्रावक क-हिये और चर्याका धारक नैष्ठिक श्रावक कहिये अर साधक-

ताका धारक साधक श्रावक कहिये. तहां पक्ष तौ ऐसा जो मार्गमें त्रसहिंसाका त्यागी श्रावक कह्या है. सो मैं त्रस-जीवकूं मेरे प्रयोजनके अर्थ तथा परके प्रयोजनके अर्थ मारूं नाहीं. धर्मके अर्थ तथा देवताके अर्थ तथा मन्त्रसाधनके अर्थ तथा औषधके अर्थ तथा आहारके अर्थ तथा अन्य भोगके अर्थ मारूं नाहीं ऐसा पक्ष जाके होय सो पाक्षिक है. जो याके असि मसि कृषि वाणिज्य आदि कार्यनिमें हिंसा होय है तोऊ मारनेका अभिमत नाहीं है. कार्यका अभिप्राय है तहां घात होय है ताकी अपनी निंदा करे है. ऐसें त्रस हिंसा न करनेकी पक्षमात्रतें पाक्षिक कहिये है. यह अप्रत्याख्याना-वरण कषायके मंद उदयके परिणाम हैं तातें व्रती हो है। व्रत पालनेकी इच्छा है परन्तु निरतिचार व्रत पलै नाहीं तातें पाक्षिक ही कह्या है. बहुरि नैष्ठिक होय है तब अनु-क्रमतें प्रतिमाकी प्रतिज्ञा पलै है. याके अप्रत्याख्यानावरण कषायका अभाव भया तातें पांचवां गुणस्थानकी प्रतिज्ञा निरतिचार पलै. तहां प्रत्याख्यानवरण कषायके तीव्र मंद भेदनितें ग्यारह प्रतिमाके भेद हैं. ज्यों ज्यों कषाय मंद होतां जाय त्यों त्यों आगिली प्रतिमाकी प्रतिज्ञा होती जाय. तहां ऐसें कह्या है जो घरका स्वामिपना छोडि घरकार्य तौ पुत्रादिककूं सौंपै अर आप यथाशक्ति प्रतिमाकी प्रतिज्ञा अंगीकार करता जाय, जेते सकल संयम न होई तेते ग्यारमी प्रतिमावाई नैष्ठिक श्रावक कहावै. बहुरि जब

जीव न देखि आगम अनुसार कहै कि यह प्रासुक है ९. बहुरि जो आगमगोचर वस्तु है तिनिकूं आगमके वचनानुसार कहना सो समयसत्य है जैसैं पल्य सागर इत्यादिक कहना १०. बहुरि दशप्रकार सत्यका कथन गोम्मटसारमें है तहां सात नाम तौ येही हैं अर तीनके नाम इहां तौ देश, संयोजना, समय हैं अर तहां, संभावना, व्यवहार, उपमा ए हैं. बहुरि उदाहरण अन्य प्रकार हैं सो विवक्षाका भेद जानना. विरोध नाहीं. ऐसैं सत्यकी प्रवृत्ति होय है सो जिनसूत्रानुसार वचन प्रवृत्ति करै ताकै सत्यधर्म होय है ॥ ३९८ ॥

आगें उत्तम संयमधर्मकूं कहै हैं,—

जो जीवरक्खणपरो गमणागमणादिसव्वकम्मेसु ।
तणछेदं पि ण इच्छदि संजमभावो हवे तस्स ३९९

भाषार्थ—जो मुनि गमन आगमन आदि सर्व कार्यनिविषै तृणका छेदमात्र भी नाहीं चाहै न करै. कैसा है मुनि ? जीवनकी रक्षाविषै तत्पर है ऐसे मुनिकै संयमभाव होय है. भावार्थ—संयम दोय प्रकार कह्या है इन्द्रिय मनका वश करणा अर छह कायके जीवनिकी रक्षा करनी. सो इहां मुनिके आहार विहार करनेविषै गमन आगमन आदि का काम पडै तिनि कार्यनिमें ऐसे परिणाम रहैं जो मैं तृण मात्रका भी छेद नाहीं करूं. मेरा निमित्ततैं काहूका अहित न होय, ऐसैं यत्नरूप प्रवर्तै है जीवदयाविषै ही तत्पर रहै है. इहां टीकाकार अन्य ग्रंथनितैं संयमका विशेष वर्णन

कीया है. ताका संक्षेप--जो संयम दोयप्रकार है. उपेक्षासंयम, अपहृतसंयम। तहां जो स्वभावहीतैं रागद्वेषकूं छोडि गुप्ति धर्मविषै कायोत्सर्ग ध्यानकरि तिष्ठै तहां ताके उपेक्षासंयम कहिये. उपेक्षा नाम उदासीनता वा वीतरागताका है. बहुरि अपहृतसंयमके तीन भेद हैं. उत्कृष्ट मध्यम जघन्य। तहां चालतां बैठतां जो जीव दीखै तासूं आप टलिजाय जीवकूं सरकावै नाहीं सो उत्कृष्ट है. बहुरि कोमलमयूरकी पीछीकरि जीवकूं सरकावै सो मध्यम है. बहुरि अन्य तृणादिकतैं सरकावै सो जघन्य है. इहां अपहृत संयमीकूं पंच समितिका उपदेश है. तहां आहार विहारके अर्थ गमन करै सो प्रासुक मार्ग देखि जूडा प्रमाण भूमिकूं देखतैं मंद मंद अति यत्नतैं गमन करै, सो ईर्यासमिति है. बहुरि धर्मोपदेश आदिके निमित्त वचन कहै सो हितरूप मर्यादनै लीयां सन्देहरहित स्पष्ट अक्षररूप वचन कहै. बहु प्रलाप आदि वचनके दोष हैं तिनितैं रहित बोलै सो भाषासमिति है. बहुरि कायकी स्थितिके अर्थ आहार करै सो मनवचनकाय कृत कारित अनुमोदनाका दोष जामें न लागे, ऐसा परका दीया छियालीस दोष, बत्तीस अंतराय टालि चौदहमलरहित अपने हाथ विषै खड़ा अतियत्नतैं शुद्ध आहार करै सो एषणा समिति है. बहुरि धर्मके उपकरणनिकूं उठावना धरना सो अतियत्नतैं भूमिकूं देखि उठावना धरना सो आदान निक्षेपण समिति है. बहुरि अंगका मल मूत्रादिक क्षेपण सो त्रस थावर जीवनिकूं देखि टालिकरि यत्नतैं क्षेपना सो प्रतिष्ठापना

समिति है. ऐसैं पांच समिति पालै तिनिकै संयम पलै है
जातैं ऐसा कह्या है जो यत्नाचार प्रवर्तैं है ताकै बाह्य जी
कूं बाधा होय तौऊ बंध नाहीं है अर यत्नरहित प्रवर्तैं
ताकै बाह्य जीव मरो तथा मति मरो बंध अवश्य होय है. ब
हुरि अपहृत संयमके पालनेके अर्थ आठ शुद्धीनिका उप
देश है. भावशुद्धि १ कायशुद्धि २ विनयशुद्धि ३ ईर्यापथ-
शुद्धि ४ भिक्षाशुद्धि ५ प्रतिष्ठापनाशुद्धि ६ शयनासनशुद्धि
७ वाक्यशुद्धि ८ ।

तहां भावशुद्धि तौ कर्मका क्षयोपशमजनित है सो तिस
विना तौ आचार प्रकट नहीं होय. शुद्ध उज्वल भींतिमें
चित्राम शोभायमान दीखै जैसैं. बहुरि दिगंबररूप सर्व वि-
कारनितैं रहित यत्नरूप जाविषै प्रवृत्ति शान्त मुद्रा जाकूं
देखै अन्यकै भय न उपजै तथा आप निर्भय रहै ऐसी का-
यशुद्धि है. बहुरि जहां अरहंत आदिविषै भक्ति गुरुनिकै अ-
नुकूल रहना ऐसें विनयशुद्धि है. बहुरि मुनि जीवनिके ठिका-
ने सर्व जानै हैं तातैं अपने ज्ञानतैं सूर्यके उद्योगतैं नेत्र इंद्रि-
यतैं मार्गकूं अतियत्नतैं देखिकरि गमन करना सो ईर्यापथ-
शुद्धि है. बहुरि भोजनकूं गमन करै तब पहले तौ अपने मल
मूत्रकी बाधाकूं परखै, अपना अंगकूं नीकै प्रतिलेखै, बहुरि
आचार सूत्रमें कह्या तैसैं देश काल स्वभाव विचारै. बहुरि
एती जायगां आहारकौं प्रवेश करै नाहीं. गीत नृत्य वादि-
त्रकी जिनकै आजीविका होय, तिनकै घर जाय नाहीं. जहां
प्रसूति भई होय तहां जाय नाहीं. जहां मृत्यु भई होय तहां

जाय नाहीं. वेश्याकै जाय नाहीं. पापकर्म हिंसाकर्म होय तहां जाय नाहीं. दीनका घर, अनाथका घर, दानशाला, यज्ञ-शाला, यज्ञ, पुजनशाला, विवाह आदि मंगल जहां होय इनिकै आहार निमित्त जाय नाहीं. धनवानकै जाना कि नि-र्धनके जाना ऐसा विचारै नाहीं. लोकनिंद्य कुलके घर जाय नाहीं. दीनवृत्ति करै नाहीं. प्राशुक आहार ले. आगममें कह्या तैसें दोष अंतराय टालि निर्दोष आहार ले, सो भि-क्षाशुद्धि है. इहां लाभ अलाभ सरस नीरसविषै समानबुद्धि राखै है. सो भिक्षा पांच प्रकार कही है. गोचर १ अक्षम्र-क्षण २ उदराग्निप्रशमन ३ भ्रमराहार ४ गर्त्तपूरण ५. तहां गऊकी ज्यों दातारकी सम्पदादिककी तरफ न देखै, जैसा पाया तैसा आहार लेनेहीमें चित्त राखै, सो गोचरी वृत्ति है. बहुरि जैसें गाडीकौ वांगि ग्राम पहुंचै, वैसें संयमका सा-धक काय, ताकूं निर्दोष आहार दे संयम साधै, सो अक्षम्र-क्षण है. बहुरि अग्नि लागीकूं जैसें तैसें पाणीतैं बुझाय घर बचावै, तैसें क्षुधा अग्निकूं सरस नीरस आहारकरि बुझाय अपना परिणाम उज्ज्वल राखै सो उदराग्निप्रशमन है. बहुरि भ्रमर जैसें फूलकूं बाधा नाहीं करै अर वासना ले, वैसें मुनि दातारकूं बाधा न उपजाय आहार ले सो भ्रमराहार है. बहुरि जैसें गुभ्र कहिये खाडा ताकूं जैसें तैसें भरतकरि भरिये तैसें मुनि स्वादु निःस्वादु आहारकरि उदर भरै सो गर्त्तपूरण कहिये. ऐसें भिक्षाशुद्धि है. बहुरि मळमूत्र श्लेष्म थूक आदि क्षेपै सो जीवनिकूं देखि यत्नतैं क्षेपै सो प्रतिष्ठा-

पना शुद्धि है. वहुरि शयनासनशुद्धि जहां स्त्री दुष्ट जीव नपुंसक चोर मद्यपायी जीवबधके करणहारे, नीच लोक वसते होंय तहां न वसै. वहुरि शृंगार विकार आभूषणसुन्दर वेश ऐसी जो वेश्यादिक तिनिकी क्रीडा जहां होय, सुंदर गीत नृत्य वादित्र जहां होते होंय, वहुरि जहां विकारके कारण नग्न गुह्यप्रदेश जिनमें दीखैं ऐसे चित्राम होंय, वहुरि जहां हास्य महोत्सव घोडा आदिकं शिक्षा देनेका ठिकाना तथा व्यायामभूमि होय, तहां मुनि न वसै. जिनतैं क्रोधादिक उपजै ऐसे ठिकाने न वसै. सो शयनासनशुद्धि है. जेतैं कायोत्सर्ग खडा रहनेकी शक्ति होय तेतैं स्वरूपमें लीन होय खडे रहै पीछैं बैठै तथा खेदके मेटनेकं अल्पकाल सोवै. वहुरि वाक्यशुद्धि जहां आरम्भकी प्रेरणारहित वचन प्रवर्तै युद्ध, काम, कर्कश, प्रलाप, पैशुन्य, कठोर, परपीडा करनेवाले वाक्य न प्रवर्तै। अनेक विकथाके भेद हैं तिनिरूप वचन न प्रवर्तै. जिनिमें व्रत शीलका उपदेश अपना परका जामें हित होय मीठा मनोहर वैराग्यकूं कारण अपनी प्रशंसा परकी निन्दातैं रहित संयमी योग्य वचन प्रवर्तै सो वचनशुद्धि है. ऐसें संयम धर्म है. संयमके पांच भेद कहे हैं, सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसांपराय, यथाख्यात ऐसें पांच भेद हैं इनिका विशेष व्याख्यान अन्यग्रन्थनितैं जानना ॥ ३९९ ॥

आगें तप धर्मकूं कहे हैं,—

इहपरलोयसुहाणं णिरवेक्खो जो करेदि समभावो ।
विविहं कायकिलेसं तवधम्मो णिम्मलो तस्स ४००

भावार्थ—जो मुनि इस लोक परलोकके सुखकी अपेक्षा सूं रहित हूवा संता, बहुरि सुखदुःख शत्रु मित्र तृण कंचन निंदा प्रशंसा आदिविषै रागद्वेषरहित समभावी हूवा संता अनेक प्रकार कायक्लेश करै है तिस मुनिके निर्मल तपधर्म होय है । भावार्थ—चारित्रके अर्थ जो उद्यम अर उपयोग करै सो तप कह्या है । तहां कायक्लेश सहित ही होय है. तातैं आत्माकी विभावपरिणतिका संस्कार हो है ताकूं मेटनेका उद्यम करै. अपने शुद्धस्वरूप उपयोगकूं चारित्रविषै थांभै, तहां बडा जोरसूं थंभै है सो जोर करना सो ही तप है । सो बाह्य अभ्यंतर भेदतैं बारह प्रकार कह्या है । ताका वर्णन आगैं चूलिकामें होयगा. ऐसें तप धर्म कह्या ॥ ४०० ॥

आगें त्याग धर्मकूं कहै हैं,--

जो चयदि मिट्ठभोज्जं उवयरणं रायदोससंजणयं ।
वसदिं ममत्तहेदुं चायगुणो सो हवे तस्स ॥ ४०१ ॥

भावार्थ—जो मुनि मिष्ट भोजन छोडै, रागद्वेषका उपजावनहारा उपकरण छोडै, ममत्वका कारण वसतिका छोडै, तिस मुनिके त्यागनामा धर्म होय है. भावार्थ—मुनिकें संसार देह भोगके ममत्वका त्याग तो पहले ही है । बहुरि जिन वस्तूनिमें कार्य पडै है तिनिकूं मुख्यकरि कह्या है. आहारसूं काम पडै

तहां तौ सरस नीरसका ममत्व नाहीं करै. बहुरि धर्मोपक-रण पुस्तक पीछी कमंडलु जिनसूं राग तीव्र वंधै ऐसे न राखै, जो गृहस्थजनके काम न आवै. बहुरि वडी वस्तिका रहनेकी जायगासूं काम पडै सो ऐसी जायगां न वसै जातैं ममत्व उपजै, ऐसैं त्यागधर्म कह्या ॥ ४०१ ॥

आगैं आकिंचन्य धर्मकूं कहै हैं,—

तिविहेण जो विवज्जइ चेयणमियरं च सव्वहा संगं
लोयववहारविरदो णिग्गंथत्तं हवे तस्स ॥ ४०२ ॥

भाषार्थ—जो मुनि चेतन अचेतन परिग्रहकूं सर्वथा मन वचनकाय कृतकारितअनुमोदनाकरि छोडै, कैसा हूवा संता, लोकके व्यवहारसूं विरक्त हूवा संता छोडै, तिस मुनिकै निर्ग्रंथपणा होय है. भावार्थ—मुनि अन्य परिग्रह तौ छोडै ही हैं परन्तु मुनिपणामें योग्य ऐसे चेतन तो शिष्य संघ अर अचेतन पुस्तक पिच्छिका कमंडलु धर्मोपकरण अर आहार वस्तिका देह ये अचेतन तिनिसूं भी सर्वथा ममत्व छोडै ऐसा विचारै जो मैं तो आत्मा ही हों अन्य मेरी किछू भी नाहीं मैं अकिंचन हों, ऐसा निर्ममत्व होय ताकै आकिंचन्य धर्म होय है ॥ ४०२ ॥

आगैं ब्रह्मचर्य धर्मकूं कहै हैं,—

जो परिहरेदि संगं महिलाणं णेव पस्सदे रूवं ।
कामकहादिणियत्तो णवहा वंभं हवे तस्स ॥ ४०३ ॥

भाषार्थ—जो मुनि स्त्रीनिकी संगति न करै, तिनिका
रूपकूं नाहीं निरखै, बहुरि कामकी कथा आदि शब्दकरि
स्मरणादिककरि रहित होय ऐसैं नवधा कहिये मनवचनकाय,
कृत कारित अनुमोदनाकरि करै तिस मुनिकै ब्रह्मचर्य धर्म
होय है. भावार्थ—इहां ऐसा भी जानना जो ब्रह्म आत्मा है
ताविषै लीन होय सो ब्रह्मचर्य है। सो परद्रव्यविषै आत्मा
लीन होय तिनिविषै स्त्रीमें लीन होना प्रधान है जातैं काम
मनविषै उपजै है सो अन्य कषायनितैं भी यह प्रधान है।
अर इस कामका आलंबन स्त्री है सो याका संसर्ग छोडै
अपने स्वरूपविषै लीन होय है। तातैं याकी संगति करना
रूप निरखना, याकी कथा करनी, स्मरण करना, छोडै
ताके ब्रह्मचर्य होय है। इहां टीकामें शीलके अठारह हजार
भेद ऐसे लिखे हैं। अचेतन स्त्री—काष्ठ पाषाण अर लेपकृत,
तिनिकूं मनवचनकाय अर कृत कारित अनुमोदना इनि छह
तैं गुणे अठारह होंय। तिनिकूं पांच इंद्रियनितैं गुणे निव्वै
होय। द्रव्य अर भावतैं गुणे एकसो अस्सी ( १८० ) होंय
क्रोध मान माया लोभ इनि च्यारितैं गुणे सातसो वीस ७२०
होंय। बहुरि चेतन स्त्री देवांगना मनुष्यणी तिर्यंचणी तिनि
कूं कृत कारित अनुमोदनातैं गुणे नव ( ९ ) होंय, तिनिकूं
मन वचन काय इनि तीनतैं गुणे सत्ताईस २७ होंय, पांच
इन्द्रियनितैं गुणे एकसो पैंतीस १३५ होय, द्रव्य अर भाव-
करि गुणे दोयसो सत्तरि २७० होय, इनिकूं च्यारि संज्ञा
आहार भय मैथुन परिग्रहतैं गुणे एक हजार अस्सी १०

होय इनिकूं अनंतानुबंधी अप्रत्याख्यानावरण प्रत्याख्यानावरण संज्वलन क्रोध मान माया लोभ रूप सोलह कषायनितैं गुणे सतराहजार दोयसे अस्सी १७२८० होय अर अचेतन स्त्रीके सातसौ वीस भेद मिलाये अठारह हजार १८००० होंय ऐसें भेद हैं बहुरि इनि भेदनिकूं अन्य प्रकार भी कीये हैं सो अन्य ग्रन्थनितैं जानने. ए आत्माकी परणतिके विकारके भेद हैं सो सर्व ही छोडि अपने स्वरूपमें रमै तब ब्रह्मचर्य धर्म उत्तम होय है ॥ ४०३ ॥

आगें शीलवानकी वडाई कहै हैं,–उक्तं च,

जो ण वि जादि वियारं तरुणियणकडक्खवाणविद्धोवि
सो चेव सूरसूरो रणसूणो णो हवे सूरो ॥ १ ॥

भाषार्थ–जो पुरुष स्त्रीजनके कटाक्षरूप बाणनिकरि विंध्या भी विकारकूं प्राप्त न होय है सो शूरवीरनिमें प्रधान है, अर जो रणविषै शूरवीर है सो शूरवीर नाहीं है. भावार्थ–युद्धमें साम्हा होय मरनेवाले तो सूरवीर वहुत हैं अर जे स्त्रीके वश न होय हैं ब्रह्मचर्यव्रत पालैं हैं ऐसे विरले हैं तेही वडे साहसी हैं शूरवीर हैं, कामको जीतनेवाले ही बडे सुभट हैं । ऐसे यह दश प्रकार धर्मका व्याख्यान कीया ।

आगै याकूं संकोचै हैं,—

एसो दहप्पयारो धम्मो दहलक्खणो हवे णियमा ।
अण्णो ण हवदि धम्मो हिंसा सुहमा वि जत्थ त्थि ॥

भावार्थ–ऐसैं दश प्रकार धर्म है सो ही दशलक्षणस्वरूप धर्म नियमकरि है. बहुरि अन्य जहां सूक्ष्म भी हिंसा होय सो धर्म नाहीं है. भावार्थ–जहां हिंसाकरि अर तिसकूं कोई अन्यमती धर्म थापै है, तिसकूं धर्म न कहिये. यह दशलक्षणस्वरूप धर्म कह्या है सो ही धर्म नियमकरि है ४०४

आगें इस गाथामें कह्या है जो जहां सूक्ष्म भी हिंसा होय तहां धर्म नाहीं तिस ही अर्थकूं स्पष्टकरि कहै हैं,—

हिंसारंभो ण सुहो देवणिमित्तं गुरूण कज्जेसु ।
हिंसा पावं ति मदो दयापहाणो जदो धम्मो ॥४०५॥

भावार्थ–जातैं हिंसा होय सो पाप है, ऐसैं कह्या है. बहुरि धर्म है सो दया प्रधान है, ऐसैं कह्या है. तातैं देवके निमित्त तथा गुरुके कार्यके निमित्त हिंसा आरम्भ सो शुभ नाहीं है. भावार्थ–अन्यमती हिंसामें धर्म थापैं हैं. मीमांसक तो यज्ञ करै हैं, तहां पशुनिकों होमैं हैं ताका फल शुभ कहै हैं. बहुरि देवीके भैरूंके उपासक बकरे आदि मारि देवी भैरूंकै चढ़ावैं हैं ताका शुभ फल मानै हैं. बौद्धमती हिंसाकरि मांसादिक आहार शुभ कहै हैं. बहुरि श्वेताम्बरनिके केई सूत्रनिमें ऐसैं कही है जो देव गुरु धर्मके निमित्त चक्रवर्तिकी सेनाने चूरिये जो साधु ऐसैं न करै है तो अनन्त संसारी होय. कहूं मद्यमांसका आहार भी लिखा है. इनि सर्वनिका निषेध इस गाथामें जानना. जो देव गुरुके कार्यनिमित्त हिंसाका आरम्भ करै है सो शुभ नाहीं. धर्म

वार्थ–जातैं धर्म भगवानने हिंसारहित कह्या है तातैं देव गु-
रुके कार्यके निमित्त भी मुनि हिंसाका आरम्भ न करै. जे
श्वेताम्बर कहै हैं सो मिथ्या है ॥ ४०६ ॥

आगें इस धर्मका दुर्लभपणा दिखावै है—

इदि एसो जिणधम्मो अलद्धपुव्वो अणाइकाले वि।
मिच्छत्तसंजुदाणं जीवाणं लद्धिहीणाणं ॥ ४०७ ॥

भावार्थ–ऐसैं यह जिनेश्वर देवका धर्म अनादि काल-
विषै मिथ्यात्वकरि संयुक्त जे जीव जिनिकै काललब्धि आदि
नाहीं आई, तिनिकै अलब्धपूर्वक है पूर्वे कबहूं पाया नाहीं
भावार्थ–मिथ्यात्वकी अलट जीवनिकै अनादि कालतैं ऐसी
है जो जीव अजीवादि तत्त्वार्थनिका श्रद्धान कबहूं हुवा नाहीं,
विना तत्त्वार्थश्रद्धान अहिंसाधर्मकी प्राप्ति कैसें होय ? ४०७

आगे कहै हैं कि अलब्धपूर्वक धर्मकूं पायकरि केवल
पुण्यका ही आशय करि न सेवणा,—

एदे दहप्पयारा पावकम्मस्स णासिया भणिया।
पुण्णस्स य संजणया पर पुण्णत्थं ण कायव्वा ४०८

भावार्थ–ए दश प्रकार धर्मके भेद कहे, ते पापकर्मके तौ
नाश करनेवाले कहे बहुरि पुण्य कर्मके उपजावन हारे कहे
हैं परन्तु केवल पुण्यहीका अर्थ प्रयोजनकरि नाहीं अंगीकार क-
रने। भावार्थ–सातावेदनीय, शुभआयु, शुभनाम, शुभगोत्र तौ
पुण्य कर्म कहे हैं. अर च्यारि घातिकर्म अर असातावेदनीय

-भनाम अशुभआयु अशुभगोत्र पापकर्म कहे हैं सो दश लक्षण
धर्मकूं पापका नाश करनेवाला पुण्यका उपजावनहारा कह्या
तहां केवल पुण्य उपजावनेका अभिप्राय राखि इनिकूं न
सेवणे जातैं पुण्य भी बंध ही है. ए धर्म तौ पाप जो घाति
कर्म ताके नाश करनेवाला है. अर अघातिमें अशुभ प्रकृति
हैं तिनिका नाश करै है. अर पुण्य कर्म हैं ते संसारके अ-
भ्युदयकूं देहैं सो इनितैं तिसका भी व्यवहार अपेक्षा बन्ध
होय है तौ स्वयमेव होय ही है. तिसकी वांछा करणा तौ
संसारकी वांछा करना है, सो यह तौ निदान भया, मोक्षका
अर्थीकै यह होय नाहीं. जैसैं किसाण खेती नाजके अर्थ
करे है ताके घास स्वयमेव होय है. ताकी वांछा काहेकूं करे
मोक्षके अर्थीकं पुण्यबंधकी वांछा करना योग्य नाहीं ४०८

पुण्णं पि जो समच्छदि संसारो तेण ईहिदो होदि ।
पुण्णं सग्गइ हेउं पुण्णखयेणेव णिव्वाणं ॥ ४०९ ॥

भाषार्थ—जो पुण्यकौं भी चाहे है तिस पुरुषने संसार
चाह्या. जातैं पुण्य है सो सुगतिका बंधका कारण है अर
मोक्ष है सो भी पुण्यका भी क्षयकरि होय है. भावार्थ—पु-
ण्यतें सुगति होय है. सो जाने पुण्य चाह्या तिसने संसार
चाह्या सुगति है सो संसार ही है. मोक्ष तौ पुण्यका भी
क्षय भये होय है. सो मोक्षका अर्थीकौं पुण्यकी वांछा करणा
योग्य नाहीं ॥ ४०९ ॥

आहिलसेदि पुण्णं सकसाओ विसयसोक्खतह्णाए
रस विसोही विसोहिमूलाणि पुण्णाणि ४१० ॥

भापार्थ–जो कपायसहित भया संता विपयसुखकी तृ-
रि पुण्यकी अभिलापा करै है ताकै विशुद्धता मंदक-
अभावकरि दूर वर्त्तै है. बहुरि पुण्य कर्म है सो वि-
है मूल कारण जाका, ऐसा है. भावार्थ–जो विप-
ी तृष्णाकरि पुण्यकौं चाहै है सो तीव्र कपाय है. अर
ंध होय सो मंदकपायरूप विशुद्धि तातैं होय है सो
चाहै ताकै आगामी पुण्यबन्ध भी नाहीं होय है, नि-
त्र फल होय तौ होय ॥ ४१० ॥

सए ण पुण्णं जदो णिरीहस्स पुण्णसंपत्ती ।
जाणिऊण जइणो पुण्णे वि म आयरं कुणह ॥

भापार्थ–जातैं पुण्यकी वांछाकरि तौ पुण्यबन्ध नाहीं
है अर वांछा रहित पुरुपकै पुण्यका बंध होय है. तातैं
तीश्वर हौ ऐसा जाणिकरि पुण्य विपै भी वांछा आ-
ति करौ. भावार्थ–इहां मुनिराजकौं उपदेश कह्या है
ण्यकी वांछातैं पुण्यबन्ध नाहीं तौ आशा मिटै बंधै है
ाशा पुण्यकी भी मति करौ, अपने स्वरूपकी प्राप्ति-
ाशा करौ ॥ ४११ ॥

बंधदि जीवो मंदकसाएहि परिणदो संतो ।
मंदकसाया हेऊ पुण्णस्स ण हि बंछा ॥ ४

भावार्थ—जातैं जीव है सो मंदकषायरूप परिणया संता पुण्यको बांधै है. तातैं पुण्यबंधका कारण मंदकषाय है, वांछा पुण्यबन्धका कारण नाहीं है. पुण्यबंध मंदकषायतैं होय है, अर याकी वांछा है सो तीव्र कषाय है. तातैं वांछा न करणी. निर्वांछिक पुरुषकै पुण्य बंध होय है. यह लौकिक भी कहै है जो चाह करै ताकूं किछू मिलै नाहीं. विना चाहिवालेकौं वहुत मिलै है. तातैं वांछाका तौ निषेध ही है. इहां कोई पूछै अध्यात्म ग्रंथनिमें तौ पुण्यका निषेध बहुत कीया अर पुराणनिमें पुण्यहीका अधिकार है सो हम तौ यह जाणै हैं संसारमें पुण्यही वडा है, याहीतैं तौ इहां इन्द्रियनिके सुख मिलै हैं याहीतैं मनुष्य पर्याय, भली संगति, भला शरीर मोक्ष साधनेके उपाय मिलै हैं, पापतैं नरक निगोद जाय तब मोक्षका भी साधन कहां मिलै ? तातैं ऐसे पुण्यकी वांछा क्यों न कीजिये ? ताका समाधान—यह कह्या सो तौ सत्य है परन्तु भोगनिके अर्थ केवल पुण्यकी वांछाका अत्यंत निषेध है भोगनिके अर्थ पुण्यकी वांछा करै ताकै प्रथम तौ सातिशय पुण्य वंधै ही नाहीं, अर इहां तपश्चरणादिककरि किछू पुण्य बांधि भोग पावै, तहां अति तृष्णातैं भोगनिकौं सेवै तब नरक निगोद ही पावै अर बंध मोक्षके स्वरूप साधनेके अर्थ पुन्य पावै ताका निषेध है नाहीं, पुण्यतैं मोक्षसाधनेकी सामग्री मिलै ऐसा उपाय राखै तौ तहां परंम्पराय मोक्षहीकी वांछा भई, पुण्यकी तौ वांछा न भई. जैसे कोई पुरुष भोजन करनेकी वांछाकरि रसोईकी सामग्री

ली करै तिनिकी वांछा पहली होय तो भोजनहीकी वांछा
हिये. बहुरि भोजनकी वांछा विना केवल सामग्रीहीकी
छा करै तो सामग्री मिलै भी प्रयास मात्र ही भया. किछू
ल तौ न भया. ऐसैं जानना. पुराणनिमें पुण्यका अधि-
ार है सो भी मोक्षहीके अर्थि है संसारका तौ तहां भी
षेध ही है ॥ ४१२ ॥

आगें दश लक्षण धर्म है सो दया प्रधान है अर दया
सोई सम्यक्त्वका मुख्य चिह्न है जातैं सम्यक्त्व है सो
व अजीव आस्रव बंध संवर निर्जरा मोक्ष इनि तत्वार्थ-
के ज्ञानपूर्वक श्रद्धान स्वरूप है. सो यह होय तव सर्व
वनिकौं आप समान जाणै ही, तिनिकै दुःख होय तव
पकी ज्यों जाणै. तव तिनिकी करुणा होय ही. अर अ-
ा शुद्ध स्वरूप जाणै कषायनिकौं अपराध दुःखरूप जाणै
नितैं अपना घात जाणै तब आपकी दया कषायभावके अ-
वकौ मानैं ऐसैं अहिंसाकौं धर्म जाणैं हिंसाकौ अधर्म जानै
सा श्रद्धान सो ही सम्यक्त्व है. ताके निःशंकितकूं आदि दे-
रि आठ अंग हैं. तिनिकौं जीव दया ही परि लगाय कहै
तहां प्रथम निःशंकितकौं कहै हैं,—

; जीवदया धम्मो जण्णे हिंसा वि होदि किं धम्मो
धेवमादिसंका तदकरणं जाणि णिस्संका ॥४१३॥

भावार्थ—यह विचारै जो कहा जीव दया धर्म है कि य-
विषै पशुनिका वधरूप हिंसा होय है सो धर्म है ?

है. कैसा है तिस दुद्धर तपकरि मोक्षकी ही वांछा करता संता है. भावार्थ—जो धर्मकौं आचरण करै दुद्धर तप करै सो मोक्षहीके अर्थ करै स्वर्ग आदिके सुख न चाहै ताकै निःकांक्षित गुण होय है ॥ ४१५ ॥

आगें निर्विचिकित्सा गुणकौं कहै हैं,—

दहविहधम्मजुदाणं सहावदुग्गंधअसुइदेहेसु ।
जं णिंदणं ण कीरइ णिव्विदिगिंछा गुणो सो हु ४१६

भापार्थ—जो दशप्रकारके धर्मकरि संयुक्त जे मुनिराज तिनिका देह सो प्रथम तौ देहका स्वभाव ही करि दुर्गंध अशुचि है बहुरि स्नानादि संस्कारके अभावतें बाह्यमें विशेषकरि अशुचि दुर्गंध दीखै है ताकी अवज्ञा न करै सो निर्विचिकित्सा गुण है. भावार्थ—सम्यग्दृष्टि पुरुषकै प्रधान दृष्टि सम्यक्त्वज्ञानचारित्रगुणनि परि पडै है देह तौ स्वभाव ही करि अशुचि दुर्गंध है तातें मुनिराजनिकी देहकी तरफ कहा देखै ? तिनिके रत्नत्रयकी तरफ देखै तब काहेकौं ग्लानि आवै. यह ग्लानि न उपजावना सो ही निर्विचिकित्सा गुण है जाकै सम्यक्त्व गुण प्रधान न होय ताकी दृष्टि पहली देह परि पडै तब ग्लानि उपजै तब यह गुण न होय है ॥४१६॥

आगें अमूढदृष्टि गुणकौं कहै हैं,—

भयलज्जालाहादो हिंसारंभो ण मण्णदे धम्मो ।
जो जिणवयणे लीणो अमूढदिट्ठी हवे सो हु ॥४१७॥

त पुरुषनिमें कोई कर्मके उदयतें दोष लागे तो ताकों
ावै, उपदेशादिकरि दोष छुडावै, ऐसै न करै जामें वि-
की निन्दा होय, धर्मकी निन्दा होय, धर्म धर्मात्मनिमूं दो-
ा अभाव करना है सो छिपावना भी अभाव ही करना
जाकौं लोक न जानें सो अभाव तुल्य ही है ऐसें उपगूहन
होय है ॥ ४१८ ॥

आगे स्थितिकरण गुणकों कहै हैं,—

मादो चलमाणं जो अण्णं संटवेदि धम्मम्मि ।
पाणं पि सुदिढयदि ठिदिकरणं होदि तस्सेव ॥

भापार्थ—जो अन्यकौं धर्मतें चलायमान होतेकौं धर्मविषै
पै तथा अपने आत्माकौं भी चलनेतें दृढ करै तिसकै निश्च-
स्थितिकरण गुण होय है. भावार्थ—धर्मतें डिगनेके अनेक
ण हैं सो निश्चय व्यवहाररूप धर्मतें परकौं तथा आपकूं
ाता जाणि तथा उपदेशतें तथा जैसें होय तैसें दृढ करै,
ं स्थितिकरण गुण होय है ॥ ४१९ ॥

आगें वात्सल्य गुणकू कहै हैं,—

धम्मिएसु भत्तो अणुचरणं कुणदि परमसद्धाए ।
वयणं जंपंतो वच्छल्लं तस्स भव्वस्स ॥ ४२० ॥

भावार्थ—जो सम्यग्दृष्टी जीव धार्मिक जो सम्यग्दृष्टी
ाक मुनिनिविषै तो भक्तिवान् होय, बहुरि तिनिके अ-
ार प्रवर्ते, परम श्रद्धाकरि प्रियवचन बोलता होता प्रवर्ते

तिस भव्यकै वात्सल्यगुण होय है. भावार्थ—वात्सल्य गुणमें धर्मानुराग प्रधान है उत्कृष्टकरि धर्मात्मा पुरुषनिसूं जाकै भक्ति अनुराग होय तिनिमें प्रियवचन सहित प्रवर्त्तै. तिनिकूं भोजन गमन आगमन आदिकी कियाका अनुचर होय प्रवर्त्तै. गाय बछरेकीसी प्रीति राखै ताकै वात्सल्य गुण होय है ॥ ४२० ॥

आगें प्रभावना गुणकूं कहै हैं,—

जो दसभेयं धम्मं भव्वजणाणं पयासदे विमलं ।
अप्पाणं पि पयासदि णाणेण पहावणा तस्स २१

भाषार्थ—जो सम्यग्दृष्टी दशभेदरूप धर्मकौं भव्य जीवनिकै निकट अपने ज्ञानकरि प्रगट करै तथा अपनी आत्माकौं दशप्रकार धर्मकरि प्रकासै ताकै प्रभावना गुण होय है. भावार्थ—धर्मका विख्यात करना सो प्रभावना गुण है. सो उपदेशादिककरि तौ परकै विषै धर्म प्रगट करै. अर अपना आत्माकौं दशविध धर्म अंगीकारकरि कर्म कलंकतैं रहितकरि प्रगट करै ताकै प्रभावना गुण होय है ॥ ४२१ ॥

जिणसासणमाहप्पं बहुविहजुत्तीहिं जो पयासेदि ।
तह तिव्वेण तवेण य पहावणा णिम्मला तस्स २२

भाषार्थ—जो सम्यग्दृष्टी पुरुष अपने ज्ञानके बलतैं अनेक प्रकार युक्तिकरि वादीनिका निराकरणकरि तथा न्याय व्याकरण छंद अलंकार साहित्य विद्याकरि वक्तापणा वा शास्त्र-

की रचना करि तथा अनेकप्रकार युक्तिकरि वादीनिका नि॰
करणकरि तथा अनेक अतिशय चमत्कार पूजा प्रतिष्ठा तथा
ान् दुद्धर तपश्चरणकरि जिनशासनका माहात्म्य प्रगट
 ताकैं प्रभावना गुण निर्मल होय है. भावार्थ—यह प्र-
वना गुण वडा गुण है यातैं अनेक अनेक जीवनिकै ध-
ी रुचि श्रद्धा उपजि आवै है तातैं सम्यग्दृष्टी पुरुषनिकै
श्य होय है ॥ ४२२ ॥

आगें निःशंकित आदि गुण किस पुरुषकै होंय ताकौं
 हैं,—

ण कुणदि परतात्तिं पुण पुण भावेदि सुद्धमप्पाणं ॥
दियसुहणिरवेक्खो णिस्संकाईगुणा तस्स ॥ २३ ॥

भाषार्थ—जो पुरुष परकी निंदा न करै वहुरि शुद्ध आ-
कौं वार वार भावै वहुरि इन्द्रिय सुखकी अपेक्षा वांछा
ृत होय ताकै निःशंकित आदि अष्ट गुण अहिंसा धर्मरूप स-
क्त्व होय है. भावार्थ—इहां तीन विशेषण हैं तिनिका ता-
र्य यह है कि जो परकी निंदा करै ताकै निर्विचिकित्सा
 उपगूहन स्थितिकरण गुण कैसें होय तथा वात्सल्य
सें होय तातैं परका निंदक न होय तव ये चार गुण होय
 वहुरि जाकै अपना आत्माका वस्तु स्वरूपमें शंका संदेह
य तथा मूढ दृष्टि होय सो अपने आत्माकौं वारम्वार
द्ध कैसें भावै तातैं शुद्ध आपकौं भावै ताहीकै निःशंकि-
ा अमूढदृष्टि गुण होय. तथा प्रभावना भी ताहीकैं

बहुरि जाकै इन्द्रियसुखकी वांछा होय ताकै निःकांक्षित गुण नाहीं होय. इन्द्रिय सुखकी वांछातैं रहित भये ही निःकांक्षित गुण होय. ऐसैं आठ गुणके संभवनेके तीन विशेषण हैं ॥

आगैं ए कहै हैं–ये आठ गुण जैसैं धर्मविषै कहे तैसैं देव गुरु आदिविषै भी जानने,—

णिस्संकापहुदिगुणा जह धम्मे तह य देवगुरुतच्चे ।
जाणेहि जिणमयादो सम्मत्तविसोहया एदे ॥ २४ ॥

भाषार्थ–ए निःशंकित आदि आठ गुण कहे ते धर्मविषै प्रकट होते कहे तैसैं ही देवके स्वरूपविषै तथा गुरुके स्वरूपविषै तथा षड्द्रव्य पंचास्तिकाय सप्त तत्व नव पदार्थनिके स्वरूपविषै होय हैं. तिनिकौं प्रवचन सिद्धान्ततैं जानने. ए आठ गुण सम्यक्त्वकौं निरतिचार विशुद्ध करनेवाले हैं. भावार्थ–देव गुरु तत्वविषै शंका न करणी, तिनिका यथार्थ श्रद्धातैं इन्द्रिय सुखकी वांछा रूप कांक्षा न करणी; तिनिमैं ग्लानि न ल्यावनी, तिनिविषै मूढदृष्टि न राखणी; तिनिके दोषनिका अभाव करना तथा तिनिका ढांकना, तिनिका श्रद्धान दृढ करना, तिनिकै वात्सल्य विशेष अनुराग करना, तिनकी महिमा प्रकट करनी ऐसैं आठ गुण इनिविषै जानने. इनिकी कथा आगैं सम्यग्दृष्टी भये तिनिकी जिनशास्त्रनितैं जाननी. अर ये आठौं गुण सम्यक्त्वके अतीचार दूरकरि निर्मल करनहारे हैं ऐसैं जानना ॥ ४२४ ॥

आगें इस धर्मके करनेवाला तथा जाननेवाला दुर्लभ है ऐसें कहै हैं,—

धम्मं ण मुणदि जीवो अहवा जाणेइ कहवि कट्ठेण।
काउं तो वि ण सक्कदि मोहपिसाएण भोलविदो॥

भाषार्थ—या संसारमें प्रथम तौ जीव धर्मकौं जाणै ही नाहीं है बहुरि कोई प्रकार बडा कष्टकरि जो जाणै भी तौ मोहरूप पिशाचकरि भ्रमित किया हुवा करनेकौं समर्थ नाहीं होय है. भावार्थ—अनादिसंसारतैं मिथ्यात्वकरि भ्रमित जो यह प्राणी प्रथम तौ धर्मकौं जाणै ही नाहीं है बहुरि कोई काललब्धितैं गुरुके संयोगतैं ज्ञानावरणीके क्षयोपशमतैं जानै भी तौ ताका करना दुर्लभ है ॥ ४२५ ॥

आगें धर्मका ग्रहणका माहात्म्य दृष्टांतकरि कहै हैं,—

जह जीवो कुणइ रई पुत्तकलत्तेसु कामभोगेसु।
तह जइ जिणिंदधम्मे तो लीलाए सुहं लहदि २६

भाषार्थ—जैसें यह जीव पुत्र कलत्रविषै तथा काम भोगविषै रति प्रीति करै है तैसें जो जिनेन्द्रके वीतराग धर्मविषै करै तौ लीला मात्र शीघ्र कालमें ही सुखकूं प्राप्त होय है। भावार्थ—जैसी या प्राणीकें संसारविषै तथा इन्द्रियनिके विषयनिकेविषै प्रीति है तैसी जो जिनेश्वरके दश लक्षण धर्म स्वरूप जो वीतराग धर्म ताविषै प्रीति होय तौ थोडेसे ही कालविषै मोक्षकूं पावै ॥ ४२६ ॥

समान होय है. बहुरि हलाहल जो जहर सो भी अमृतसमान परिणवै है, बहुत कहा कहिये महान् बडी आपदा भी संपदा होय जाय है ॥ १ ॥

आलियवयणं पि सच्चं उज्जमरहिये वि लच्छिसंपत्ती।
धम्मपहावेण णरो अणओ वि सुहंकरो होदि ३२

भाषार्थ—धर्मके प्रभावकरि जीवके झूंठ वचन भी सत्य वचन होय हैं. बहुरि उद्यम रहितके भी लक्ष्मीकी प्राप्ति होय है बहुरि अन्यान्य कार्य भी सुखका करनहारा होय है भावार्थ—इहां यह अर्थ जानना जो पूर्वं धर्म सेया होय तौ ताके प्रभावतैं इहां झूंठ बोलै सो भी सांची होय जाय. उद्यमविना भी संपत्ति मिलै, अन्याय चालै तौ भी सुखी रहै. अथवा कोई झूंठ वचनका तूदा ( वायदा ) लगावै तौ बीजमैं (अंतमें) सांचा होय, अन्याय कीया लोक कहै है तौ न्यायवालेका सहाय ही होय ऐसा भी जानना ।

आगे धर्मरहित जीवकी निंदा कहै हैं,—

देवो वि धम्मचत्तो मिच्छत्तवसेण तरुवरो होदि ।
चक्की वि धम्मरहिओ णिवडइ णरए ण संपदे होदि

भाषार्थ—धर्मकरि रहित जीव है सो मिथ्यात्वका वसकरि देव भी वनस्पतिका जीव एकेन्द्रिय आय होय है. बहुरि चक्रवर्ती भी धर्मकरि रहित होय तब नरकविषै पडै है तातैं पाप है सो संपदाके अर्थ नाहीं है।

धम्मविहीणो जीवो कुणइ असज्झं पि साहसं जइ विं
तो ण वि पावदि इट्ठं सुट्ठु अणिट्ठं परं लहदि ३४

भावार्थ- धर्मरहित जीव है सो यद्यपि बडा असहवे योग्य साहस पराक्रम करै तौऊ ताकैं इष्ट वस्तुकी प्राप्ति न होय केवल उलटा अतिसैकरि अनिष्टकूं प्राप्त होय है भावार्थ-पापके उदयतैं भली करतैं बुरा होये है यह जगप्रसिद्ध है ॥ ४३४ ॥

इय पच्चक्खं पिच्छिय धम्माहम्माण विविहमाहप्पं ।
धम्मं आयरह सया पावं दूरेण परिहरह ३५

भावार्थ-हे प्राणी हो या प्रकार धर्म अर अधर्मका अनेक प्रकार माहात्म्य प्रत्यक्ष देखिकरि तुम धर्मकूं आदरौ अर पापकूं दूरहीतैं परिहरौ. भावार्थ-आचार्य दशप्रकार धर्मका स्वरूप कहिकरि अधर्मका फल दिखाया. अब इहां यह उपदेश कीया है जो हे प्राणी हो ! जो प्रत्यक्ष धर्म अधर्मका फल लोकविषै देखि धर्मकूं आदरौ पापकूं परिहरौ. आचार्य बडे उपकारी हैं निष्कारण आपकूं किछू चाहिये नाहीं. निस्पृह भये संते जीवनिके कल्याणहीके अर्थ वारंवार कहिकरि प्राणीनिकौं चेत करावै हैं, ऐसे श्रीगुरु वन्दने पूजने योग्य हैं. ऐसें यतिधर्मका व्याख्यान किया ।

दोहा ।

मुनिश्रावकके भेदतैं, धर्म दोय परकार ।

ताकूं मुनि चिंतवो सतत, गहि पावै भवपार ॥ १२ ॥

इति धर्मानुप्रेक्षा समाप्ता ॥ १२ ॥

## अथ द्वादश तपांसि कथ्यंते.

आगें धर्मानुप्रेक्षाकी चूलिकाकूं कहता संता आचार्य बारहप्रकार तपके विधानका निरूपण करै है,—

बारसभेओ भणिओ णिज्जरहेऊ तवो समासेण,
तस्स पयारा एदे भणिज्जमाणा मुणेयव्वा ॥ ३६ ॥

भाषार्थ—तप है सो वारह प्रकार संक्षेपकरि जिनागमविषै कह्या है. कैसा है? कर्म निर्जराका कारण है तिसके प्रकार आगें कहैंगे ते जानने. भावार्थ—निर्जराका कारण तप है सो बारहप्रकार है. बाह्यके अनशन अवमोदर्य वृत्तिपरिसंख्यान रसपरित्याग विविक्तशय्यासन कायक्लेश ऐसैं छः प्रकार. बहुरि अन्तरंगका प्रायश्चित्त विनय वैयावृत्य स्वाध्याय व्युत्सर्ग ध्यान ऐसैं छह प्रकार. इनिका व्याख्यान अब करिये हैं तहां प्रथम ही अनशन नाम तपकूं च्यारि गाथाकरि कहै हैं,—

उवसमणं अक्खाणं उववासो वण्णिदो मुणिंदेहि ।
तह्मा भुंजुंता वि य जिदिंदिया होंति उववासा ॥ ३७ ॥

भाषार्थ—मुनीन्द्र हैं तिनिनें इन्द्रियनिका उपवास कहिये विषयनिमें न जानें देना मनकूं अपने आत्मस्वरूपविषै लगावणा सो उपवास कह्या है. तातें जितेन्द्रिय हैं ते

आहार करते भी उपवास सहित ही कहिये. भावार्थ—इंद्रियका जीतना सो उपवास सो यतिगण भोजन करते भी उपवासे ही हैं जातैं इंद्रियनिकूं वशीभूतकरि प्रवर्तैं हैं ।

जो मणइंदियाविजई इहभवपरलोयसोक्खणिरवेक्खो
अप्पाणे च्चिय णिवसइ सज्झायपरायणो होदि ॥ ३८ ॥

कम्माण णिज्जरट्ठं आहारं परिहरेइ लीलाए ।
एगादिणादिपमाणं तस्स तवो अणसणं होदि ॥४२९॥

भाषार्थ—जो मन इंद्रियनिका जीतनहारा है बहुरि इस भव परभवके विषयसुखनिविषै अपेक्षा रहित है वांछा नाहीं करै है बहुरि अपने आत्मस्वरूप ही विषै बसै है. अथवा स्वाध्यायविषै तत्पर है । बहुरि एक दिनकी मर्यादातैं कर्मनिकी निर्जराके अर्थ क्रीडा कहिये लीलामात्र ही क्लेश रहित हर्षतैं आहारको छोडै है ताकै अनशन तप होय है. भावार्थ—उपवासका ऐसा अर्थ है जो इंद्रिय मन विषयनिविषै प्रवृत्तितैं रहित होय आत्मामें बसै सो उपवास है. सो इंद्रियनिका जीतना विषयनिकी इसलोक परलोक सम्बन्धी वांछा न करनी, कै तौ आत्मस्वरूपविषै लीन रहना, कै शास्त्रके अभ्यास स्वाध्यायविषै मन लगावणा ए तौ उपवासविषै प्रधान हैं. बहुरि क्लेश न उपजै जैसें क्रीडामात्र एक दिनकी मर्यादारूप आहारका त्याग करना ऐसें उपवास नामा अनशन तप होय है ॥ ४२८–४२९ ॥

उववासं कुव्वाणो आरंभं जो करेदि मोहादो ।
तस्स किलेसो अवरं कम्माणं णेव णिज्जरणं ॥ ४० ॥

भाषार्थ—जो उपवास करता संता मोहतैं आरंभ गृहकार्यादिककूं करै है ताकै पहिलै तौ गृहकार्यका क्लेश था ही बहुरि दूसरा भोजन विना क्षुधा तृष्णाका क्लेश भया ऐसैं होतैं क्लेश ही भया कर्मका निर्जरण तौ न भया. भावार्थ—आहारको तौ छोडै अर विषय कषाय आरंभकूं न छोडै ताकै आगें तौ क्लेश था ही दूसरा क्लेश भूख तिसका भया ऐसे उपवासमें कर्मकी निर्जरा कैसैं होय ? कर्मकी निर्जरा तौ सर्व क्लेश छोडि साम्यभाव करें होय है. ऐसा जानना ॥ ४४० ॥

आगें अवमोदर्य तपकूं दोय गाथाकरि कहै हैं,—

आहारगिद्धिरहिओ चरियामग्गेण पासुगं जोग्गं ।
अप्पयरं जो भुंजइ अवमोदरियं तवं तस्स ॥ ४१ ॥

भषार्थ—जो तपस्वी आहारकी अतिचाहरहित हूवा सूत्रोक्त चर्याका मार्गकरि योग्य प्रासुक आहार अतिशयकरि अल्प ले, तिसकै अवमोदर्य तप होय है. भावार्थ—मुनि आहारके छियालीस दोष टालते है बत्तीस अंतराय टालै है चौदह मल रहित प्रासुक योग्य भोजन लें है तौऊ ऊनोदर तप करै, तामें अपने आहारके प्रमाणतैं थोडा ले, एक ग्रासतैं

लगाय बत्तीस ग्रास ताईं आहारका प्रमाण कह्या है। तामें यथा इच्छा घटती ले सो अवमोदर्यतप है ॥ ४४१ ॥

जो पुण कित्तिणिमित्तं मायाए मिट्ठभिक्खलाहट्ठं ।
अप्पं भुंजदि भोज्जं तस्स तवं णिप्फलं विदियं ॥ ४२ ॥

भावार्थ—जो मुनि कीर्त्तिके निमित्त तथा माया कपट करि तथा मिष्ट भोजनके लाभके अर्थ अल्प भोजन करे है तपका नाम करे है ताकै तो दूसरा अवमोदर्य तप निष्फल है. भावार्थ— जो ऐसा विचारे अल्प भोजन कियेसूं मेरी कीर्त्ति होयगी, तव कपटकरि लोककों भुलावा दे किछू प्रयोजन साधनेके निमित्त तथा यह विचारे जो थोडा भोजन किये भोजन मिष्ट रससहित मिलेगा ऐसे अभिप्रायतैं ऊनोदर तप करे तो ताके निष्फल है. यह तप नाहीं पाखंड है।

आगें वृत्तिपरिसंख्यान तपकों कहै हैं,—

एगादिगिहपमाणं किं वा संकप्पकप्पियं विरसं ।
भोज्जं पसुव्व भुंजइ वित्तिपमाणं तवो तस्स ॥ ४३ ॥

भावार्थ—जो मुनि आहारकूं उतरै, तब पहले मनमें ऐसा मर्याद करि चालै जो आज एक ही घर पहलै मिलेगा तो आहार लेवैंगे नातर फिर आवैंगे तथा दोय घर ताईं जायगे ऐसे मर्याद करै, तथा एक रस ताकी मर्याद करै तथा देनेवालेकी मर्याद करै तथा पात्रकी मर्याद करै ऐसा दातार ऐसी रीति ऐसे पात्रमें लेकर देवैगा तो लेवैंगे, तथा आहारकी

अर्यादकरै सरस तथा नीरस तथा फलाणा अन्न मिलेगा तौ लेवैंगे इत्यादि वृत्तिकी संख्या गणना मर्यादा मनमें विचार चाले तैसैं ही मिलै तौ लेय अन्यथा न लेय. बहुरि आहार लेय तब पशु गऊ आदिकी ज्यों करै. जैसैं गऊ इतउत देखै नाहीं चरनेहीकी तरफ देखै तेसैं ले, तिसके वृत्तिपरिसंख्या-नतप है. भावार्थ—भोजनकी आशाका निरास करनेकौं यह तप है संकल्प माफिक विधि मिलना दैव योग है यह बड़ा कठिन तप महामुनि करै हैं ॥ ४५३ ॥

आगें रस परित्यागतपकौं कहै हैं,—

संसारदुक्खतट्ठो विससमविसयं विचिंतमाणो जो ।
णीरसभोज्जं भुंजइ रसचाओ तस्स सुविसुद्धो ॥ ४४ ॥

भापार्थ—जो मुनि संसार दुःखसूं तप्तायमान हूवा ऐसैं विचार करता है जो इन्द्रियनिके विषय हैं ते विष सरीखे हैं विष खाये एकबार मरै है विषय सेये बहुत जन्म मरण होय हैं. ऐसा विचारि नीरस भोजन करै है ताकै रसपरित्याग तप निर्मल होय है. भावार्थ—रस छह प्रकारके हैं घृत तैल दधि मिष्ट लवण दुग्ध ऐसैं बहुरि खाटा खारा मीठा कडु-वा तीखा कषायला. ए भी रस कह्या है तिनिका जैसैं इ-च्छा होय तैसैं त्याग करै. एक ही रस छोडै, दोय रस छोडै तथा सर्व ही छोडै ऐसैं रसपरित्याग तप होय है. ईहां कोई पूछै रसत्यागकौं कोई जाणै नाहीं मनहीमें त्याग करै तौ ऐसैं ही वृत्तिपरिसंख्यान है यामें वामें कहा विशेष ?

ताका समाधान, वृत्ति परिसंख्यानमें तो अनेक रीतिनिकी संख्या हैं इहां रसहीका त्याग है यह विशेष है. बहुरि यह भी विशेष जो रसपरित्याग तो बहुत दिनका भी होय ताकूं श्रावक जाणि लें जाय अर वृत्तिपरिसंख्यान बहुत दिनका होय नाहीं ॥ ४४४ ॥

आगें विविक्तशय्यासन तपकूं कहै हैं,—

जो रायदोसहेदू आसणसिज्जादियं परिच्चयई ।
अप्पा णिव्विसय सया तस्स तवो पंचमो परमो ॥

भावार्थ-जो मुनि रागद्वेषके कारण जे आसन अर शय्या इनि आदिकनिकों छोडै बहुरि सदा अपने आत्मस्वरूपविषै बसे अर निर्विषय कहिये इन्द्रियनिके विषयनितें विरक्त होय तिस मुनिके पांचवां तप विविक्तशय्यासन उत्कृष्ट होय है. भावार्थ—आसन कहिये बैठनेका स्थान अर शय्या कहिये सोवनेका स्थान, आदि शब्दतें मलमूत्रादि क्षेपनेका स्थान, ऐसा होय जहां रागद्वेष न उपजै अर वीतरागता बधै ऐसा एकान्त स्थानक होय तहां बैठे सोवै. जातें इन्द्रियनिकों अपना अपना स्वरूप लावना है इन्द्रियविषय सेवने नाहीं है तातें एकान्त स्थानक कहा है ॥ ४४५ ॥

पूजादिसु णिरवेक्खो संसारसरीरभोगणिव्विण्णो ।
अब्भंतरतवकुसलो उवसमसीलो महासंतो ॥ ४४६ ॥
जो णिवसेदि मसाणे वणगहणे णिज्जणे महाभीमे ।

अण्णत्थ वि एयंते तस्स वि एदं तवं होदि ॥४४७॥

भाषार्थ–जो महामुनि पूजा आदिविषै तौ निरपेक्ष है अपनी पूजा महिमादिक नाहीं चाहै है, बहुरि स्वाध्याय ध्यान आदि जे अंतरंग तप तिनिविषै प्रवीण है, ध्यानाध्ययनका निरन्तर अभ्यास राखे है, बहुरि उपशमशील कहिये मंद कषायरूप शान्तपरिणाम ही है स्वभाव जाका, बहुरि महा पराक्रमी है, क्षमादिपरिणाम युक्त है, ऐसा महामुनि मसाण भूमिविषै तथा गहन वनविषै तथा जहां लोक न प्रवर्त्तै, ऐसे निर्जनस्थानविषै तथा महाभयानक उद्यानविषै तथा अन्य भी ऐसा एकान्त स्थानविषै जो वसै ताके निश्चय यह विविक्तशय्यासन तप होय है. भावार्थ–महामुनि विविक्तशय्यासन तप करै है सो ऐसें एकान्त स्थानकमें सोवे बैठे है जहां चित्तके क्षोभके करनेहारे कछू भी पदार्थ न होय. ऐसे सूने घर गिरिकी गुफा वृक्षके मूल तथा स्वयमेव गृहस्थनिके बणाये उद्यानमें वस्तिकादिक देव मन्दिर तथा मसाणभूमि इत्यादिक एकांत स्थानक होंय तहां ध्यानाध्ययन करे है जातें देहतें तो निर्ममत्व है विषयनितें विरक्त है, अपने आत्मस्वरूपविषै अनुरक्त है सो मुनि विविक्तशय्यासनतपसंयुक्त है ॥ ४४६–४४७ ॥

आगे कायक्लेशतपकूं कहै हैं,—

दुस्सहउवसग्गजई आतावणसीयवायखिण्णो वि ।
जो ण वि खेदं गच्छदि कायकिलेसो तवो तस्स ॥

भावार्थ—जो मुनि दुःसह उपसर्गका जीतनहारा आता-प सीत वातकरि पीडित होय खेदकूं प्राप्त न होय, चित्तमें क्षोभ क्लेश न उपजै तिस मुनिके कायक्लेश नामा तप होय है। भावार्थ—महामुनि ग्रीष्मकालमें तौ पर्वतके शिखर आदि विषै जहां सूर्यके किरणिनिका अत्यन्त आताप होय तलैं भूमि शिलादिक तप्तायमान होय वहां आतापनयोग धारे हैं, बहुरि शीतकालमें नदी आदिके तटविषै चोडे जहां अति शीत पडै दाहतैं वृक्ष भी दाहे जांय तहां खडे रहैं. बहुरि चतुर्मासमें वर्षा वरसै प्रचंड पवन चालै दंशमशक काटैं ऐसे समय वृक्षके तले योग धारे हैं. तथा अनेक विकट आसन करे हैं ऐसें अनेक कायक्लेशके कारण मिलावे हैं अर साम्यभावतैं चिगै नाहीं हैं. जातें अनेक प्रकारके उपसर्गके जीतनहारे हैं तातैं चित्तविषै जिनके खेद नाहीं उपजै है. अपने स्वरूपके ध्यानमें लगे रहैं तिनके कायक्लेशनामा तप होय है. जिनके काय तथा इंद्रियनिसूं ममत्व होय है तिनिके चित्तमें क्षोभ हो है ए मुनि सर्वतैं निस्पृह वर्त्तैं हैं तिनकूं काहेका खेद होय? ऐसे छहप्रकार बाह्यतपका निरूपण किया,

आगें छहप्रकार अंतरंग तपका व्याख्यान करै हैं तहां प्रथम ही प्रायश्चित्तनामा तपकूं कहै हैं,—

दोसं ण करेदि सयं अण्णं पि ण कारएदि जो तिविहं।
कुव्वाणं पि ण इच्छइ तस्स विसोही परा होदि ४४९

भावार्थ—जो मुनि आप दोष न करै अन्य पास दोष

न करावै दोप करता होय ताकूं इष्ट भला न जाणै तिसकै उत्कृष्ट विशुद्धि होय है. भावार्थ—इहां विशुद्धि नाम प्रायश्चित्तका है जातैं 'प्रायः' शब्दकरि तौ प्रकृष्ट चारित्रका ग्रहण है ऐसा चारित्र जाकै होय सो 'प्रायः' कहिये साधु लोक ताका चित्त जिस कार्यविषै होय है सो प्रायश्चित्त कहिये, सो आत्माकै विशुद्धि करै सो प्रायश्चित्त है बहुरि दूसरा अर्थ ऐसा भी है जो प्रायः नाम अपराधका है ताका चित्त कहिये शुद्ध करना सो भी प्रायश्चित्त कहिये. ऐसैं पूर्वै कीये अपराधतैं जातैं शुद्धता होय सो प्रायश्चित्त है. ऐसैं जो मुनि मनवचनकाय कृतकारितअनुमोदनाकरि दोप नाहीं लगावै ताकै उत्कृष्ट विशुद्धता होय. यही प्रायश्चित्त[1] नामा तप है ॥ ४४९ ॥

अह कहवि पमादेण य दोसो जदि एदि तं पि पयडेदि
णिद्दोससाहुमूले दसदोसविवज्जिदो होदुं ॥ ४५० ॥

भाषार्थ—अथवा कोई प्रकार प्रमादकरि अपने चारित्रमें दोप आया होय तौ ताकूं निर्दोप जे साधु आचार्य उनकै निकट दश दोपवर्जित होयकरि प्रकट करै आलोचना करै. भावार्थ—अपने चारित्रमें दोप प्रमादकरि लग्या होय तौ

---

१ यत्याचारोक्तं दशप्रकारं प्रायश्चित्तं ।

१ आलोयण पडिकमणं उभय विवेगो तहा विउसग्गो ।
तवछेदो मूलं पि य परिहारो चेव सद्दहणं ॥

आचार्य पास जाय दशदोषवर्जित आलोचना करै. ते प्रमा-द—इन्द्रिय ५ निन्द्रा १ कषाय ४ विकथा ४ स्नेह १ ये पांच हैं तिनके पंद्रह भेद हैं भंगनिकी अपेक्षा बहुत भेद होय हैं तिनिकरि दोष लागे है. बहुरि आलोचनाके दश दोष हैं तिनिके नाम आकंपित १ अनुमानित २ बादर ३ सूक्ष्म ४ दृष्ट ५ प्रच्छन्न ६ शब्दाकुलित ७ बहुजन ८ अ-व्यक्त ९ तत्सेवी १० ए दश दोष हैं. तिनिका अर्थ ऐसा जो आचार्यकूं उपकरणादि देकरि आपकी करुणा उपजाय आलोचना करै जो ऐसें कीये प्रायश्चित्त थोडा देसी, ऐसा विचारै तौ यह आकंपितदोष है. बहुरि वचन ही करि आ-चार्यनिकी बडाई आदिकरि आलोचना करै अभिप्राय ऐसा राखै जो आचार्य मोसूं प्रसन्न रहै तौ प्रायश्चित्त थोडा ब-तावै, ऐसें अनुमानित दोष है. बहुरि प्रत्यक्ष दृष्टदोष होय सो कहै अदृष्ट न कहै सो दृष्टदोष है. बहुरि स्थूल बडा दोष तौ कहै सूक्ष्म न कहै सो बादरदोष है. बहुरि सूक्ष्म दोष ही कहै बादर न कहै यह जनावै यानैं सूक्ष्म ही कह दिया सो बादर काहेकूं छिपावै सो सूक्ष्मदोष है. बहुरि छिपायकरि ही कहै कोई अन्यनैं अपना दोष कह्या है तब

---

( १ ) विकहा तहा कषाया इंदिय णिद्दा तहेव पणओ य।
चउ चउ पण मेगेगं होंदि पमादा हु पण्णरसा ॥ १ ॥

[ २ ] आकंपिय अणुमाणिय जं दिट्ठं बादरं च सुहमं च।
छण्णं सद्दाउलियं बहुजणमव्वत्त तस्सेवी ॥ २ ॥

कहै ऐसा ही दोष मोकूं लाग्या है ताका नाम प्रकट न करै सो प्रच्छन्न दोष है. बहुरि बहुत शब्दका कोलाहलविषै दोष कहै अभिप्राय ऐसा कोई और न सुणै तहां शब्दाकुलित दोष है. बहुरि गुरु पासि आलोचनाकरि फेरि अन्य गुरु-पासि आलोचना करै अभिप्राय ऐसा जो याका प्रायश्चित्त देखैं, अन्य गुरु कहा बतावै, ऐसैं बहुजननामा दोष है. बहुरि जो दोष व्यक्त होय सो कहै अभिप्राय ऐसा—जो यह दोष छिपाया छिपै नाहीं कह्या ही चाहिये. सो अव्यक्त दोष है. बहुरि अन्य मुनिने लाग्या दोपकी गुरुपासि आलोचनाकरि प्रायश्चित्त लिया देखकरि तिस समान आपकूं दोष लाग्या होय ताकी आलोचना गुरुपासि न करै आपही प्रायश्चित्त लेवै, अभिप्राय दोष प्रगटकरनेका न होय सो तत्सेवी दोष है. ऐसें दशदोषरहित सरलचित्त होय बालककी ज्यों आलोचना करै ॥ ४५० ॥

जं किंपि तेण दिण्णं तं सव्वं सो करेदि सद्धाए।

णो पुण हियए संकदि किं थोवं किमु बहुवं वा ४५१

भावार्थ-दोपकी आलोचना करे पीछैं जो किछू आचार्य प्रायश्चित्त दीया तिस सर्व हीकूं श्रद्धाकरि करै. हृदयविषै ऐसैं शंका संदेह न करै जो ए प्रायश्चित्त दिया सो थोडा है कि बहुत है. भावार्थ-प्रायश्चित्तके तत्त्वार्थ सूत्रमें नव भेद कहे हैं. आलोचन प्रतिक्रमण तदुभय विवेक व्युत्सर्ग तपश्छेद परिहार उपस्थापना. तहां आलोचना तौ

दोषका यथावत् कहना, प्रतिक्रमण—दोषका मिथ्या करावना, तदुभय—आलोचन प्रतिक्रमण दोऊ करावना, विवेक—आगामी त्याग करावना, व्युत्सर्ग—कायोत्सर्ग करावना, तप, छेद कहिये दीक्षा छेदन, बहुत दिनके दीक्षितकूं थोड़े दिनका करना, परिहार—संघवाह्य करना, उपस्थापन। फेरि नवा सिरवें दीक्षा देना. ऐसें नव हैं इनिके भी अनेक भेद हैं. तहां देश काल अवस्था सामर्थ्य दूषणका विधान देखि यथाविधि आचार्य प्रायश्चित्त देहैं ताकूं श्रद्धाकरि अंगीकार करै तामें संशय न करै ॥ ४५१ ॥

पुणरवि काउं णेच्छदि तं दोसं जइवि जाइ सयखंडं ।
एवं णिच्छयसहिदो पायच्छित्तं तवो होदि ॥ ४५२ ॥

भावार्थ—लाग्यादोषका प्रायश्चित्त लेकरि तिस दोषकूं किया न चाहै जो आपके शतखंड भी होय तौ न करै ऐसें निश्चय सहित प्रायश्चित्त नामा तप होय है. भावार्थ—ऐसा दिढचित्त करै जो लाग्या दोषकों फेरि अपना शरीरके शतखंड होय जाय तौऊ सो दोष न लगावै सो प्रायश्चित्त तप है ॥ ४५२ ॥

जो चिंतइ अप्पाणं णाणसरूवं पुणो पुणो णाणी ।
विकहादिविरत्तमणो पायच्छित्तं वरं तस्स ॥ ४५३ ॥

भावार्थ—जो ज्ञानी मुनि आत्माकूं ज्ञानस्वरूप फेरि फेरि वारंवार चिंतवन करै, बहुरि विकथादिक प्रमादनितें

ताकैं वैयावृत्य नामा तप होय है. सो कैसैं करै आप अपनें पूजा महिमा आदिविषै अपेक्षा वांछातैं रहित जैसें होय तैसें करै. भावार्थ-निस्पृह हूवा मुनिनिकी चाकरी करै सो वैयावृत्य है. तहां आचार्य उपाध्याय तपस्वी शैक्ष्य ग्लान गण कुल संघ साधु मनोज्ञ ये दश प्रकारके यति वैयावृत्य करने योग्य कहे हैं. तिनिका यथायोग्य अपनी शक्तिसारूं वैयावृत्य करै ॥ ४५७ ॥

जो वावरइसरूवे समदमभावम्मि सुद्धिउवजुत्तो ।
लोयववहारविरदो विज्जावच्चं परं तस्स ॥ ४५८ ॥

भाषार्थ-जो मुनि शमदमभावरूप जो अपना आत्मस्वरूप ताके विषै शुद्ध उपयोगकरि युक्त हूवा प्रवर्तै अर लोकव्यवहार बाह्य वैयावृत्यसूं विरक्त होय, ताकै उत्कृष्ट निश्चय वैयावृत्य होय है. भावार्थ—जो मुनि सम कहिये राग द्वेष रहित साम्यभाव, बहुरि दम कहिये इन्द्रियनिकों विषयनिविषै न जानै देना, ऐसा जो अपना आत्मस्वरूप ताविषै लीन होय, ताकै लोकव्यवहाररूप बाह्य वैयावृत्य काहेकौं होय ? ताकै निश्चय वैयावृत्य ही होय है, शुद्धोपयोगी मुनिनिकी यह रीति है ॥ ४५८ ॥

आगें स्वाध्याय तपकौं छह गाथानिकरि कहै हैं,—

परतत्तीणिरवेक्खो दुट्ठवियप्पाण णासणसमत्थो ।
तच्चविणिच्छयहेदू सज्झाओ ज्झाणसिद्धियरो ॥ ४५९ ॥

भाषार्थ-जो मुनि परकी निन्दाविषै निरपेक्ष होय बां-

छारहित होय है. बहुरि दुष्ट जे मनके खोटे विकल्प ति-
निके नाश करनेकूं समर्थ होय ताकै तत्त्वका निश्चय कर-
नेका कारण अर ध्यानकी सिद्धि करनेवाला स्वाध्यायनामा
तप होय है. भावार्थ–जो परकी निंदा करनेविषै परिणाम
राखै अर आर्त्तरौद्रध्यानरूप खोटे विकल्प मनमें [illegible]
कीया करै ताकै शास्त्रनिका अभ्यासरूप स्वाध्याय [illegible]
तातैं तिनिकौं छोडि स्वाध्याय करै ताकै तत्त्वका निश्चय
होय अर धर्म्यशुक्लध्यानकी सिद्धि होय, ऐसा स्वाध्याय
तप है ॥ ४५९ ॥

पूजादिसु णिरवेक्खो जिणसत्थं जो पढेइ भत्तीए ।
कम्ममलसोहणट्ठं सुयलाहो सुहयरो तस्स ॥ ४६० ॥

भावार्थ–जो मुनि अपनी अपनी पूजा महिमा आदि-
विषै तौ निरपेक्ष होय, वांछारहित होय अर भक्तितैं जि-
नशास्त्र पढै, बहुरि कर्ममलके सोधनेकै अर्थि पढै [illegible]
तका लाभ सुखकारी होय. भावार्थ–जो पूजा महिमा आ-
दिके अर्थ शास्त्रकूं पढै है ताकैं शास्त्रका पढना सुखकारी
नाहीं. अपने कर्मक्षयके निमित्त जिनशास्त्रनिकौं पढै ताकै
सुखकारी है ॥ ४६० ॥

जो जिणसत्थं सेवइ पंडियमाणी फलं समीहंतो ।
साहम्मियपडिकूलो सत्थं पि विसं हवे तस्स ॥ ४६१ ॥

भावार्थ–जो पुरुष जिनशास्त्र तौ पढै है [illegible]

जन है. दुष्ट अभिप्रायतैं पढै ताका निषेध है ॥ ४६२ ॥

जो अप्पाणं जाणदि असुइसरीरादु तच्चदो भिण्णं ॥
जाणगरूवसरूवं सो सत्थं जाणदे सव्वं ॥ ४६३ ॥

भाषार्थ—जो मुनि अपने आत्माकौं इस अपवित्र शरीरतैं भिन्न ज्ञायकरूप स्वरूप जाणै सो सर्व शास्त्र जाणै. भावार्थ—जो मुनि शास्त्र अभ्यास अल्प भी करै है अर अपना आत्माका रूप ज्ञायक देखन जाननहारा इस अशुचि शरीरतैं भिन्न शुद्ध उपयोगरूप होय जाणै है, सो सर्व ही शास्त्र जानै है. अपना स्वरूप न जान्या अर वहुत शास्त्र पढे तौ कहा साध्य है? ॥ ४६३ ॥

जो ण विजाणदि अप्पं णाणसरूवं सरीरदो भिण्णं ॥
सो ण विजाणदि सत्थं आगमपाढं कुणंतो वि ४६४

भाषार्थ—जो मुनि अपने आत्माकौं ज्ञानस्वरूप शरीरतैं भिन्न नाहीं जानै है सो आगमका पाठ करै तौऊ शास्त्रकौं नाहीं जानै है. भावार्थ—जो मुनि शरीरतैं भिन्न ज्ञानस्वरूप आत्माकौं नाहीं जानै है सो वहुत शास्त्र पढै है तौऊ विना पढ्या ही है. शास्त्रके पढनेका सार तौ अपना स्वरूप जानि रागद्वेषरहित होना था सो पढिकरि भी ऐसा न भया तो काहेका पढया? अपना स्वरूप जानि ताविषै स्थिर होना सो निश्चयस्वाध्यायतप है. वाचना पृच्छना अनुप्रेक्षा आम्नाय धर्मोपदेश ऐसैं पांचप्रकार व्यवहारस्वाध्याय है सो

जो देहपालणपरो उवयरणादीविसेससंसत्तो।
बाहिरववहाररओ काओसग्गो कुदो तस्स ॥ ४६७ ॥

भाषार्थ—जो मुनि देहके पालनेविषै तत्पर होय, उपकरण आदिकविषै विशेष संसक्त होय, बहुरि बाह्य व्यवहार लोकरंजन करनेविषै रत होय, तत्पर होय ताकै कायोत्सर्ग तप काहेतैं होय ? भावार्थ—जो मुनि बाह्य व्यवहार पूजा प्रतिष्ठा आदि तथा ईर्यासमिति आदि क्रिया ताकौं लोक जानैं यह मुनि है ऐसी क्रियामें तत्पर होय अर देहका आहारादिकतैं पालना उपकरणादिकका विशेष संवारना शिष्यजनादिकतैं बहुत ममता राखि प्रसन्न होना इत्यादिकमें लीन होय अर अपना स्वरूपका यथार्थ अनुभव जाकै नाहीं तामें कबहूं लीन होय ही नाहीं कायोत्सर्ग भी करै तो खड़ा रहना आदि बाह्य विधान करले तो ताकै कायोत्सर्ग तप न कहिये निश्चय विना बाह्यव्यवहार निरर्थक है ॥ ४६७ ॥

अंतो मुहुत्तमेत्तं लीणं वत्थुम्मि माणसं णाणं।
झाणं भण्णइ समए असुहं च सुहं च तं दुविहं ४६८

भाषार्थ—जो मनसंबंधी ज्ञान वस्तुविषै अंतर्मुहूर्तमात्र लीन होय एकाग्र होय सो सिद्धान्तविषै ध्यान कह्या है सो शुभ बहुरि अशुभ ऐसें दोय प्रकार कह्या है. भावार्थ—ध्यान परमार्थतैं ज्ञानका उपयोग ही है जो ज्ञानका उपयोग एक ज्ञेय वस्तुमें अन्तर्मुहूर्तमात्र एकाग्र ठहरै सो ध्यान है सो शुभ भी है अर अशुभ भी है ऐसें दोय प्रकार है ॥ ४६८ ॥

आगें शुभ अशुभध्यानके नाम स्वरूप कहै हैं,—

असुहं अट्ट रउद्दं धम्मं सुक्कं च सुहयरं होदि।
अट्टं तिव्वकसायं तिव्वतमकसायदो रुद्दं ॥ ४६९ ॥

भावार्थ—आर्त्तध्यान रौद्रध्यान ए दोऊ तौ अशुभध्यान हैं बहुरि धर्मध्यान अर शुक्लध्यान ए दोऊ शुभ अर शुभतर हैं तिनिमें आदिका आर्त्तध्यान तौ तीव्र कषायतैं होय है अर रौद्रध्यान अति तीव्र कषायतैं होय है ॥ ४६९ ॥

मंदकसायं धम्मं मंदतमकसायदो हवे सुक्कं।
अकसाए वि सुयड्ढे केवलणाणे वि तं होदि ॥४७०॥

भावार्थ—धर्म ध्यान है सो मंदकषायतैं होय है. बहुरि शुक्लध्यान है सो अतिशयकरि मंदकषायतैं होय महामुनि श्रेणी चढै तिनिके होय है. अर कषायका अभाव भये श्रुतज्ञानी उपशांतकषाय क्षीणकषाय तथा केवलज्ञानी सयोगी अयोगी जिनकैं भी कहिये है. भावार्थ—धर्मध्यान तौ व्यक्तरागसहित पंच परमेष्ठी तथा दशलक्षणस्वरूप धर्म तथा आत्मस्वरूपविषै उपयोग एकाग्र होय है तातैं याकूं मन्दकषाय सहित है ऐसा कह्या है. बहुरि शुक्लध्यान है सो उपयोगमें व्यक्तराग तौ नाहीं अर अपने अनुभवमें न आवै ऐसा सूक्ष्मराग सहित श्रेणी चढै है तहां आत्मपरिणाम उज्वल होय है यातैं शुचि गुणके योगतैं शुक्ल कह्या है. ताकूं मन्दतमकषाय कहिये अतिशय मंदकषायतैं होय है ऐसा कह्या है तथा कषायके अभाव भये भी कह्या है ॥ ४७० ॥

आगें आर्त्तध्यानकूं कहै हैं,—

दुक्खयरविसयजोए केण इमं चयदि इदि विचिंतंतो।
चेठ्ठदि जो विक्खित्तो अट्टं ज्झाणं हवे तस्स ॥४७१

मणहरविसयविजोगे कह तं पावेमि इदि वियप्पो जो
संतावेण पयट्टो सो चिय अट्टं हवे ज्झाणं ॥ ४७२ ॥

भाषार्थ—जो पुरुष दुःखकारी विषयका संयोग होते ऐसा चिंतवन करै जो यह मेरे कैसे दूर होय ? बहुरि तिसके संयोगतैं विक्षिप्तचित्त भया संता चेष्टा करै, रुदनादिक करै तिसके आर्त्तध्यान होय है. बहुरि जो मनोहर प्यारी विषय सामग्रीका वियोग होतैं ऐसा चिंतवन करे जो ताहि मैं कैसैं पाऊं, ताके वियोगतैं संतापरूप दुःखरूप प्रवर्त्तै, सो भी आर्त्तध्यान है. भावार्थ—आर्त्तध्यान सामान्य तौ दुःखक्लेशरूप परिणाम है. तिस दुःखमें लीन रहै अन्य किछू चेत रहै नाहीं ताकूं दोय प्रकारकरि कह्या. प्रथम तौ दुःखकारी सामग्रीका संयोग होय ताकूं दूरि करनेका ध्यान रहै. दूसरा इष्ट सुखकारी सामग्रीका वियोग होय ताके मिलावनेका चिंतवन ध्यान रहै सो आर्त्तध्यान है. अन्य ग्रंथनिमें च्यारि भेद कहे हैं—इष्टवियोगका चिंतवन, अनिष्टसंयोगका चिंतवन, पीडाका चिंतवन, निदानबंधका चिंतवन. सो इहां दोय कहे तिनिमें ही अंतर्भाव भये. अनिष्टसंयोगके दूरि करनेमें तौ पीडा चिंतवन आय गया, अर इष्टके मिलावनेकी वां-

में निदानबंध आयगया. ये दोऊ ध्यान अशुभ हैं पापबंधकूं करे हैं धर्मात्मा पुरुषनिके त्यजने योग्य हैं ॥ ४७२ ॥

आगें रौद्रध्यानकौं कहैं हैं,—

हिंसाणंदेण जुदो असच्चवयणेण परिणदो जो दु ।
तत्थेव अथिरचित्तो रुद्दं ज्झाणं हवे तस्स ॥ ४७३ ॥

भाषार्थ—जो पुरुष हिंसाविषै आनन्दकरि संयुक्त होय. बहुरि असत्य वचन करि परिणमता रहै तहां ही विक्षिप्तचित्त रहै तिसकै रौद्रध्यान होय है. भावार्थ—हिंसा जो जीवनिका घात तिसकौं करि अति हर्ष मानै, शिकार आदिमें आनन्दतें प्रवर्त्तै, परके विघ्न होय, तब अति संतुष्ट होय बहुरि झूठ बोलि करि अपना प्रवीणपणा मानै, परके दोषनिकौं निरन्तर देखै, कहै तामें आनंद मानै ऐसैं ए दोय भेद रौद्रध्यानके कहे ॥ ४७३ ॥

आगें दोय भेद और कहै हैं,—

परविसयहरणसीलो सगीयविसयेसु रक्खणे दक्खो ।
तग्गयचित्ताविट्ठो णिरंतरं तं पि रुद्दं पि ॥ ७४ ॥

भाषार्थ—जो पुरुष परकी विषय सामग्रीकूं हरणेका स्वभावसहित होय, बहुरि अपनी विषय सामग्रीकी रक्षा करणेविषै प्रवीण होय, तिनि दोऊ कार्यनिविषै लीनचित्त निरन्तर राखै, तिस पुरुषकै यह भी रौद्रध्यान ही है. भावार्थ, परकी सम्पदाकौं चोरनेविषै प्रवीण होय चोरीकरि हर्ष मानै

बहुरि अपनी विषय सामग्रीकूं राखने का अति यत्न करै ताकी रक्षाकरि आनन्द मानै ऐसें ये दोय भेद रौद्रध्यानके भये. ऐसें ये चारों भेदरूप रौद्रध्यान अतितीव्र कषायके योगतें होय हैं, महापाप रूप हैं. महापापबन्धकूं कारण हैं. सो धर्मात्मा पुरुष ऐसे ध्यानकौं दूरिहीतें छोडै हैं. जेते जगतकौं उपद्रवके कारण हैं तेते रौद्रध्यानयुक्त पुरुषतें बणै है. जातें पापकरि हर्षमानै सुख मानै ताकौ धर्मका उपदेश भी नाहीं लागै है. अति प्रमादी हूवा अचेत पापहीमें मस्त रहै है ॥ ४७४ ॥

आगें धर्मध्यानकूं कहै हैं,—

विण्णिवि असुहे ज्झाणे पावणिहाणे य दुक्खसंताणे।
णच्चा दूरे वज्जह धम्मे पुण आयरं कुणहु ॥ ७५ ॥

भाषार्थ—हे भव्य जीव हो ! आर्त रौद्र ये दोऊं ही ध्यान अशुभ हैं पापके निधान दुःखके संतान जाणिकरि दूरिहीतें छाडौ, बहुरि धर्मध्यानविषै आदर करौ. भावार्थ—आर्तरौद्र दोऊं ही ध्यान अशुभ हैं अर पापके भरे हैं अर दुःखहीकी संतति इनिमें चली जाय है. तातें छोडिकरि धर्मध्यान करनेका श्रीगुरुनिका उपदेश है ॥ ४७५ ॥

आगें धर्मका स्वरूप कहै हैं,—

धम्मो वत्थुसहावो खमादिभावो य दसविहो धम्मो।
रयणत्तयं च धम्मो जीवाणं रक्खणं धम्मो ॥ ७६ ॥

भाषार्थ—वस्तुका स्वभाव सो धर्म है. जैसें जीवका द-

र्शन ज्ञान स्वरूप चैतन्यस्वभाव सो याका एही धर्म है, बहुरि क्षमादिक भाव दश प्रकार सो धर्म हैं. बहुरि रत्नत्रय सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित्र सो धर्म है. बहुरि जीवनिकी रक्षा करना सो भी धर्म है. भावार्थ—अभेदविवक्षाकरि तौ वस्तुका स्वभाव सो धर्म है जीवका चैतन्य स्वभाव सो ही याका धर्म है. बहुरि भेद विवक्षाकरि दशलक्षण उत्तम क्षमादिक तथा रत्नत्रयादिक धर्म है. बहुरि निश्चयतैं तौ अपने चैतन्यकी रक्षा विभावपरिणतिरूप न परिणमना अर व्यवहारकरि परजीवकौं विभावरूप दुःख क्लेशरूप न करना ताहीका भेद जीवकौं प्राणांत न करना यह धर्म है ॥ ४७६ ॥

आगें धर्मध्यान कैसे जीवकैं होय सो कहै हैं,—

धम्मे एयग्गमणो जो ण हि वेदेइ इंदियं विसयं।
वेरग्गमओ णाणी धम्मज्झाणं हवे तस्स ॥ ७७ ॥

भाषार्थ—जो पुरुष ज्ञानी धर्मविषैं एकाग्रमन होय वर्त्तै, बहुरि इन्द्रियनिके विषयनिकौं न वेदै. बहुरि वैराग्यमयी होय, तिस ज्ञानीकै धर्मध्यान होय है. भावार्थ—ध्यानका स्वरूप एक ज्ञेयकेविषै ज्ञानका एकाग्र होना है. जो पुरुष धर्मविषैं एकाग्रचित्त करै तिस काल इन्द्रिय विषयनिकौं न वेदै ताकैं धर्मध्यान होय है. याका मूलकारण संसारदेहभोगसूं वैराग्य है विना वैराग्यके धर्ममें चित्त थंभै नाहीं ॥७७॥

सुविसुद्धरायदोसो वाहिरसंकप्पवज्जिओ धीरो।

स्वरूपविषै मनकूं रोककरि आनंदसहित चितवन होय सो उत्तम धर्मध्यान है. भावार्थ—जो समस्त अन्य विकल्पनिसूं रहित आत्मस्वरूपविषै मनकूं थांभनेतैं आनन्दरूप चिन्तवन रहै सो उत्तम धर्मध्यान है. इहां संस्कृत टीकाकार धर्मध्यानका अन्य ग्रंथनिके अनुसार विशेष कथन किया है. ताकौं संक्षेपकरि लिखिये है—तहां धर्मध्यानके च्यारि भेद कहे हैं. आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय, संस्थानविचय, ऐसैं. तहां जीवादिक छह द्रव्य पंचास्तिकाय सप्ततत्त्व नव पदार्थनिका विशेष स्वरूप विशिष्ट गुरुके अभावतैं तथा अपनी मंदबुद्धिके वशतैं प्रमाण नय निक्षेपनितैं साधिये ऐसा जान्या न जाय तब ऐसा श्रद्धान करै जो सर्वज्ञ वीतराग देवने कह्या है सो हमारै प्रमाण है ऐसैं आज्ञा मानि ताके अनुसार पदार्थनिमें उपयोग थांभै * सो आज्ञाविचय धर्मध्यान है १. बहुरि अपाय नाम नाशका है सो जैसैं कर्मनिका नाश होय तैसैं चितवै तथा मिथ्यात्वभाव धर्मविषै विघ्नके कारण हैं तिनिका चितवन राखै—अपने न होनेका चितवन करै परके मेटनेका चितवन करै सो अपायविचय है २. बहुरि विपाक नाम कर्मके उदयका है सो जैसा कर्म उदय होय ताका तैसा स्वरूपका चितवन करै सो विपाकविचय है ३. बहुरि लोकका स्वरूप चितवना सो संस्थान विचय है ४. बहुरि दशप्रकार भी कह्या है—अपायविचय उपायविचय जीवविचय आज्ञाविचय विपाकविचय अजीवविचय

हेतुविचय विरागविचय भवविचय संस्थानविचय. ऐसें इनि दशनिका चितवन सो ए च्यारि भेदनिका विशेष कीये हैं. बहुरि पदस्थ पिंडस्थ रूपस्थ रूपातीत ऐसें च्यारि भेदरूप धर्मध्यान होय है. तहां पद तौ अक्षरनिके समुदायका नाम है सो परमेष्ठीके वाचक अक्षर हैं जिनकूं मंत्र संज्ञा है सो तिनि अक्षरनिकूं प्रधानकरि परमेष्ठीका चितवन करै तहां जिस अक्षरमें एकाग्रचित्त होय सो तिसका ध्यान कहिये। तहां नमोकार मन्त्रके पैंतीस अक्षर हैं ते प्रसिद्ध हैं तिनिविषै मन लगावै तथा तिस ही मन्त्रके भेदरूप कीये संक्षेप षोडश अक्षर हैं "अरहंत सिद्ध आइरिय उवज्झाय साहू" ऐसें षोडश अक्षर हैं. बहुरि इसहीके भेदरूप 'अरहंत सिद्ध' ऐसे छह अक्षर हैं बहुरि इसहीका संक्षेप " अ सि आ उ सा " ये आदिअक्षररूप पांच अक्षर हैं. बहुरि "अरहंत" ए च्यारि अक्षर हैं. बहुरि "सिद्ध" अथवा "अर्हं" ऐसें दोय अक्षर हैं बहुरि "ॐ" ऐसा एक अक्षर है. यामें पंचपरमेष्ठीका आदि

---

* सूक्ष्मं जिनोदितं तत्त्वं हेतुभिर्नैव हन्यते।
आज्ञासिद्धं तु तद्ग्राह्यं नान्यथावादिनो जिनाः॥

१ पदस्थं मंत्रवाक्यस्थं पिण्डस्थं स्वात्मचिन्तनं।
रूपस्थं सर्वचिद्रूपं रूपातीतं निरंजनं॥

[ २ ] अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो नमः।

[ ३ ] णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं॥

स्वरूपविषै मनकूं रोककरि आनंदसहित चितवन होय सो उत्तम धर्मध्यान है. भावार्थ—जो समस्त अन्य विकल्पनिसूं रहित आत्मस्वरूपविषै मनकूं थांभनेतैं आनन्दरूप चिन्तवन रहै सो उत्तम धर्मध्यान है. इहां संस्कृत टीकाकार धर्मध्यानका अन्य ग्रंथनिके अनुसार विशेष कथन किया है. ताकौं संक्षेपकरि लिखिये है—तहां धर्मध्यानके च्यारि भेद कहे हैं. आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय, संस्थानविचय, ऐसैं. तहां जीवादिक छह द्रव्य पंचास्तिकाय सप्ततत्त्व नव पदार्थनिका विशेष स्वरूप विशिष्ट गुरुके अभावतैं तथा अपनी मंदबुद्धिके वशतैं प्रमाण नय निक्षेपनितैं साधिये ऐसा जान्या न जाय तब ऐसा श्रद्धान करै जो सर्वज्ञ वीतराग देवने कह्या है सो हमारै प्रमाण है ऐसैं आज्ञा मानि ताके अनुसार पदार्थनिमें उपयोग थांभै * सो आज्ञाविचय धर्मध्यान है १. बहुरि अपाय नाम नाशका है सो जैसैं कर्मनिका नाश होय तैसैं चितवै तथा मिथ्यात्वभाव धर्मविषै विघ्नके कारण हैं तिनिका चितवन राखै—अपने न होनेका चितवन करै परके मेटनेका चितवन करै सो अपायविचय है २. बहुरि विपाक नाम कर्मके उदयका है सो जैसा कर्म उदय होय ताका तैसा स्वरूपका चितवन करै सो विपाकविचय है ३. बहुरि लोकका स्वरूप चितवना सो संस्थान विचय है ४. बहुरि दशप्रकार भी कह्या है—अपायविचय उपायविचय जीवविचय आज्ञाविचय विपाकविचय अजीवविचय

हेतुविचय विरागविचय भवविचय संस्थानविचय. ऐसैं इनि दशनिका चितवन सो ए च्यारि भेदनिका विशेष कीये हैं. बहुरि पंदस्थ पिंडस्थ रूपस्थ रूपातीत ऐसैं च्यारि भेदरूप धर्मध्यान होय है. तहां पद तो अक्षरनिके समुदायका नाम है सो परमेष्ठीके वाचक अक्षर हैं जिनकूं मंत्र संज्ञा है सो तिनि अक्षरनिकूं प्रधानकरि परमेष्ठीका चितवन करै तहां तिस अक्षरमें एकाग्रचित्त होय सो तिसका ध्यान कहिये। तहां नमोकार मन्त्रके पैंतीस अक्षर हैं ते प्रसिद्ध हैं तिनिविषै मन लगावै तथा तिस ही मन्त्रके भेदरूप कीये संक्षेप सोलह अक्षर हैं "अरहंत सिद्ध आइरिय उवज्झाय साहू" ऐसैं सोलह अक्षर हैं. बहुरि इसहीके भेदरूप 'अरहंत सिद्ध' ऐसे छह अक्षर हैं बहुरि इसहीका संक्षेप " अ सि आ उ सा " ये आदिअक्षररूप पांच अक्षर हैं. बहुरि "अरहंत" ए च्यारि अक्षर हैं. बहुरि "सिद्ध" अथवा "अर्हं" ऐसैं दोय अक्षर हैं बहुरि "ॐ" ऐसा एक अक्षर है. यामें पंचपरमेष्ठीका आदि

---

* सूक्ष्मं जिनोदितं तत्त्वं हेतुभिर्नैव हन्यते ।
आज्ञासिद्धं तु तद्ग्राह्यं नान्यथावादिनो जिनाः ॥

१ पदस्थं मन्त्रवाक्यस्थं पिण्डस्थं स्वात्मचिन्तनं ।
रूपस्थं सर्वचिद्रूपं रूपातीतं निरंजनं ॥

[ २ ] अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो नमः ।

[ ३ ] णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरीयाणं ।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥ १ "

रहित परमात्मस्वरूपविषै लयकूं प्राप्त होय सो रूपातीत ध्यान है. ऐसा ध्यान सातवें गुणस्थान होय तब श्रेणीकौं मांडै यह ध्यान व्यक्तरागसहित चतुर्थ गुणस्थानतैं लगाय सातवां गुणस्थान ताई अनेक भेदरूप प्रवर्त्तै है ॥ ४८० ॥

आगें शुक्लध्यानकौं पांच गाथाकरि कहैं हैं,—

जत्थ गुणा सुविसुद्धा उवसमखमणं च जत्थ कम्माणं ।
लेसा वि जत्थ सुक्का तं सुक्कं भण्णदे ज्झाणं ॥४८१॥

भाषार्थ—जहां भले प्रकार विशुद्ध व्यक्त कषायनिके अनुभवरहित उज्ज्वल गुण कहिये ज्ञानोपयोग आदि होय, बहुरि कर्मनिका जहां उपशम तथा क्षय होय, बहुरि जहां लेश्या भी शुक्ल ही होय, तिसकौं शुक्लध्यान कहिये है. भावार्थ—यह सामान्य शुक्लध्यानका स्वरूप कह्या विशेष आगें कहै हैं. बहुरि कर्मके उपशमनका अर क्षपणका विधान अन्य ग्रन्थनितैं टीकाकार लिख्या है सो आगें लिखियेगा ।

आगें विशेष भेदनिकूं कहै हैं,—

पडिसमयं सुज्झंतो अणंतगुणिदाए उभयसुद्धीए ।
पढमं सुक्कं ज्झायदि आरूढो उभयसेणीसु ॥ ४८२ ॥

भाषार्थ—उपशमक अर क्षपक इनि दोऊं श्रेणीनिविषै आरूढ हूवा संता समय समय अनंतगुणी विशुद्धता उपशमरूप तथा क्षयरूपकरि शुद्ध होता संता मुनि क्लध्यान पृथक्त्ववितर्कवीचार नामा ध्यावै है.

मिथ्यात्व तीन, कषाय अनंतानुबंधी च्यारि प्रकृतिनिका उपशम तथा क्षय करि सम्यग्दृष्टी होय. पीछैं अप्रमत्त गुणस्थानविषै सातिशय विशुद्धतासहित होय श्रेणीका प्रारम्भ करै, तब अपूर्वकरण गुणस्थान होय शुक्लध्यानका पहला पाया प्रवर्त्तै, तहां जो मोहकी प्रकृतिनिकूं उपशमावनेका प्रारंभ करै तौ अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण सूक्ष्मसांपराय इनि तीनूं गुणस्थानविषैं समय समय अनन्तगुणी विशुद्धताकरि वर्द्धमान होता संता मोहनीय कर्मकी इकईस प्रकृतिनिकूं उपशमकरि उपशांत कषाय गुणस्थानकूं प्राप्त होय है. अर कै मोहकी प्रकृतिनिकूं खपावनेका प्रारंभ करै तौ तीनू गुणस्थानविषै इकईस मोहकी प्रकृतिनिका सत्तामेंसूं नाशकरि क्षीणकषाय बारहवां गुणस्थानकूं प्राप्त होय है. ऐसैं शुक्लध्यानका पहला पाया पृथक्त्ववितर्कवीचार नामा प्रवर्त्तै है. तहां पृथक कहिये न्यारा न्यारा वितर्क कहिये श्रुतज्ञानके अक्षर अर अर्थ अर वीचार कहिये अर्थका व्यंजन कहिये अक्षररूप वस्तुका नामका अर मन वचन कायके योग इनिका पलटना सो इस पहले शुक्लध्यानमें होय है. तहां अर्थ तौ द्रव्य गुणपर्याय है सो पलटै, द्रव्यसूं द्रव्यान्तर गुणसूं गुणान्तर पर्यायसूं पर्यायान्तर. बहुरि तैसैं ही वर्णसूं वर्णान्तर बहुरि तैसें ही योगसूं योगांतर है।

इहां कोई पूछै—ध्यान तौ एकाग्रचितानिरोध है पलटनेकै ध्यान कैसैं कहिये? ताका समाधान—जो जेतीवार एक-

परि थंभे सो तौ ध्यान भया पलट्या तब दूसरे परि थंभ्या सो भी ध्यान भया ऐसैं ध्यानके संतानकं भी ध्यान कहिये। इहां संतानकी जाति एक है ताकी अपेक्षा लेणी. बहुरि उपयोग पलटै सो इसके ध्याताकै पलटावनेकी इच्छा नाहीं है जो इच्छा होय तौ रागसहित यह भी धर्म ध्यान ही ठहरै. इहां रागका अव्यक्त भया सो केवलज्ञानगम्य है ध्याताके ज्ञान गम्य नाहीं. आप शुद्ध उपयोगरूप हूवा पलटनेका भी ज्ञाता ही है. पलटना क्षयोपशम ज्ञानका स्वभाव है सो यह उपयोग बहुत काल एकाग्र रहै नाहीं याकूं शुक्ल ऐसा नाम रागके अव्यक्त होनेहीतैं कह्या है ॥ ४८२ ॥

आगें दूजा भेद कहैं हैं,—

णिस्सेसमोहविलये खीणकसाओ य अंतिमे काले ।
ससरूवम्मि णिलीणो सुक्कं ज्झायेदि एयत्तं ४८३

भाषार्थ—आत्मा समस्त मोहकर्मका नाश भये क्षीणकषाय गुणस्थानका अंतके कालविषै अपने स्वरूपविषै लीन हूवा संता एकत्ववितर्कवीचारनामा दूसरा शुक्लध्यानकौं ध्यावै है. भावार्थ—पहले पायेमें उपयोग पलटै था सो पलटता रहगया एक द्रव्य तथा पर्यायपरि तथा एक व्यंजनपरि तथा एक योगपरि थंभि गया, अपने स्वरूपमें लीन है ही, अब घातिकर्मका नाशकरि उपयोग पलटैगा सो सर्वका प्रत्यक्ष ज्ञाता होय लोकालोककौं जानना यह ही पलटना रह्या है ॥ ४८३ ॥

आगें तीसरा भेद कहै हैं,—

केवलणाणसहावो सुहमे जोगम्मि संठिओ काए ।
जं ज्झायदि सजोगजिणो तं तादियं सुहमकिरियं च ॥

भापार्थ—केवलज्ञान है स्वभाव जाका ऐसा सयोगी जिन सो जब सूक्ष्म काय योगमें तिष्ठै तिस काल जो ध्यान होय सो तीसरा सूक्ष्मक्रिया नामा शुक्लध्यान है. भावार्थ—जब घातिकर्मका नाश करि केवल उपजै, तब तेरहवां गुणस्थानवर्ती सयोगकेवली होय है तहां तिस गुणस्थानकालका अंतमें अंतर्मुहूर्त्त शेष रहै तब मनोयोग वचनयोग रुकि जाय अर काययोगकी सूक्ष्मक्रिया रह जाय तब शुक्लध्यानका तीसरा पाया कहिये है. सो इहां उपयोग तौ केवलज्ञान उपज्या तबहीतैं अवस्थित है अर ध्यानमें अन्तर्मुहूर्त ठहरना कह्या है सो इस ध्यानकी अपेक्षा तौ इहां ध्यान है नाहीं अर योगके थंभनेकी अपेक्षा ध्यानका उपचार है अर उपयोगकी अपेक्षा कहिये तौ उपयोग थंभ ही रह्या है किछू जानना रह्या नाहीं तथा पलटावनेवाला प्रतिपक्षी कर्म रह्या नाहीं तातैं सदा ही ध्यान है अपने स्वरूपमें रमि रहे हैं. ज्ञेय आरसीकी ज्यों समस्त प्रतिबिंबित होय रहे हैं, मोहके नाशतैं काहूविषै इष्ट अनिष्टभाव नाहीं है ऐसैं सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती नामा तीसरा शुक्लध्यान प्रवर्त्तै है ॥ ४८४ ॥

आगें चौथा भेद कहै हैं,—

जोगविणासं किच्चा कम्मचउक्कस्स खवणकरणट्ठं ।

तैं कर्मकी निर्जरा होय है अर संवर होय है सो ए दोऊ ही मोक्षके कारण हैं सो जो मुनिव्रत लेयकरि वाह्य अभ्यंतर भेदकरि कह्या जो तप ताकौं तिस विधानकरि आचरै है सो मुक्ति पावै है, तब ही कर्मका अभाव होय है. याहीतैं अविनाशी वाधा रहित आत्मीक सुखकी प्राप्ति होय है. ऐसैं बारह प्रकारके तपके धारक तथा इस तपका फल पावैं ते साधु च्यारि प्रकारकरि कहे हैं. अनगार, यति, मुनि, ऋषि, तहां सामान्य साधु गृहवासके त्यागी मूलगुणनिके धारक ते अनगार हैं. वहुरि ध्यानमें तिष्ठै श्रेणी मांडैं ते यति हैं. वहुरि जिनकौं अवधि मनःपर्ययज्ञान होय तथा केवलज्ञान होय ते मुनि हैं. वहुरि ऋद्धिधारी होंय ते ऋषि हैं. तिनके च्यारि भेद. राजऋषि, ब्रह्मऋषि, देवऋषि, परमऋषि, तहां विक्रिया ऋद्धिवाले राजऋषि, अक्षीण महानस ऋद्धिवाले ब्रह्मऋषि, आकाशगामी देवऋषि, केवलज्ञानी परमऋषि हैं ऐसैं जानना ॥ ४८६ ॥

आगें या ग्रंथका कर्त्ता श्रीस्वामिकार्त्तिकेयनामा मुनि सो अपना कर्त्तव्यप्रगट करै हैं,—

जिणवयणभावणट्ठं सामिकुमारेण परमसद्धाए ।
रइया अणुपेक्खाओ चंचलमणरुंभणट्ठं च ॥४८७॥

भावार्थ—यह अनुप्रेक्षा नाम ग्रंथ है सो स्वामिकुमार जो स्वामिकार्त्तिकेय नामा मुनि तानैं रच्या है. गाथारूप रचना है. इहां कुमार शब्दकरि ऐसा सूच्या है जो यह मुनि

जन्महीतैं ब्रह्मचारी हैं तानैं यह रची है, सो श्रद्धाकरि रची है. ऐसा नाहीं जो कथनमात्रकरि दिई हो इस विशेषणतैं अनुप्रेक्षातैं अति प्रीति सूचै है. बहुरि प्रयोजन कहै हैं कि,- जिन वचनकी भावनाकी अर्थ रच्या है. इस वचनतैं ऐसा जनाया है जो ख्याति लाभ पूजादिक लौकिकप्रयोजनके अर्थ नाहीं रच्या है. जिनवचनका ज्ञान श्रद्धान भया है ताकौं बारम्बार भावना स्पष्ट करना यातैं ज्ञानकी वृद्धि होय कषायनिका प्रलय होय ऐसा प्रयोजन जनाया है. बहुरि दूजा प्रयोजन चंचल मनकौं थांभनेके अर्थ रची है. इस विशेषणतैं ऐसा जानना जो मन चंचल है सो एकाग्र रहै नाहीं. ताकौं इस शास्त्रमें लगाइये तौ रागद्वेषके कारण जे विषय तिनिविषै न जाय. इस प्रयोजनके अर्थ यह अनुप्रेक्षा ग्रंथकी रचना करी है. सो भव्य जीवनिकौं इसका अभ्यास करना योग्य है. जातैं जिनवचनकी श्रद्धा होय, सम्यग्ज्ञानकी बधवारी होय. अर मन चंचल है सो इसके अभ्यासमें लगै अन्य विषयनिविषै न जाय ॥ ४८७ ॥

आगें अनुप्रेक्षाका माहात्म कहि भव्यनिकौं उपदेशरूप फलका वर्णन करै हैं,—

बारसअणुपेक्खाओ भणिया हु जिणागमाणुसारेण ।
जो पढइ सुणइ भावइ सो पावइ उत्तमं सोक्खं ॥

भावार्थ-ए बारह अनुप्रेक्षा जिन आगमके अनुसार लै प्रगटकरि कही हैं ऐसा वचनकरि यह जनाया है जो मैं क

तैं कर्मकी निर्जरा होय है अर संवर होय है सो ए दोऊ
मोक्षके कारण हैं सो जो मुनिव्रत लेयकरि वाह्य अभ्
भेदकरि कह्या जो तप ताकौं तिस विधानकरि आचरै
सो मुक्ति पावै है, तब ही कर्मका अभाव होय है. या
अविनाशी वाधा रहित आत्मीक सुखकी प्राप्ति होय है.
बारह प्रकारके तपके धारक तथा इस तपका फल पां
साधु च्यारि प्रकारकरि कहे हैं. अनगार, यति, मु
ऋषि, तहां सामान्य साधु गृहवासके त्यागी मूलगुणनि
धारक ते अनगार हैं. बहुरि ध्यानमें तिष्ठैं श्रेणी मांडैं
यति हैं. बहुरि जिनकौं अवधि मनःपर्ययज्ञान होय तथ
केवलज्ञान होय ते मुनि हैं. बहुरि ऋद्धिधारी होय ते ऋ
हैं. तिनके च्यारि भेद. राजऋषि, ब्रह्मऋषि, देवऋषि,
मऋषि, तहां विक्रिया ऋद्धिवाले राजऋषि, अक्षीण महान
ऋद्धिवाले ब्रह्मऋषि, आकाशगामी देवऋषि, केवलज्ञान
परमऋषि हैं ऐसें जानना ॥ ४८६ ॥

आगें या ग्रंथका कर्त्ता श्रीस्वामिकार्त्तिकेयनामा मुनि
हैं सो अपना कर्त्तव्यप्रगट करै हैं,—

जिणवयणभावणट्टं सामिकुमारेण परमसद्धाए ।
रइया अणुपेक्खाओ चंचलमणरुंभणट्ठं च ॥४८७॥

भावार्थ—यह अनुप्रेक्षा नाम ग्रंथ है सो स्वामिकुमार जे
स्वामिकार्तिकेय नामा मुनि तानैं रच्या है. गाथारूप रचना
करी है. इहां कुमार शब्दकरि ऐसा सूच्या है जो यह मुनि

जन्महीतैं ब्रह्मचारी हैं तानैं यह रची है, सो श्रद्धाकरि रची है. ऐसा नाहीं जो कथनमात्रकरि दिई हो इस विशेषणतैं अनुप्रेक्षातैं अति प्रीति सूचै है. बहुरि प्रयोजन कहै हैं कि,- जिन वचनकी भावनाकी अर्थ रच्या है. इस वचनतैं ऐसा जनाया है जो ख्याति लाभ पुजादिक लौकिकप्रयोजनके अर्थ नाहीं रच्या है. जिनवचनका ज्ञान श्रद्धान भया है ताकौं वारम्वार भावना स्पष्ट करना यातैं ज्ञानकी वृद्धि होय कषायनिका प्रलय होय ऐसा प्रयोजन जनाया है. बहुरि दूजा प्रयोजन चंचल मनकौं थांभनेके अर्थ रची है. इस विशेषणतैं ऐसा जानना जो मन चंचल है सो एकाग्र रहै नाहीं. ताकौं इस शास्त्रमें लगाइये तौ रागद्वेषके कारण जे विषय तिनिविषै न जाय. इस प्रयोजनके अर्थ यह अनुप्रेक्षा ग्रंथकी रचना करी है. सो भव्य जीवनिकौं इसका अभ्यास करना योग्य है. जातैं जिनवचनकी श्रद्धा होय, सम्यग्ज्ञानकी वधवारी होय. अर मन चंचल है सो इसके अभ्यासमें लगै अन्य विषयनिविषै न जाय ॥ ४८७ ॥

आगें अनुप्रेक्षाका माहात्म्य कहि भव्यनिकौं उपदेशरूप फलका वर्णन करै हैं,—

वारसअणुपेक्खाओ भणिया हु जिणागमाणुसारेण ।
जो पढइ सुणइ भावइ सो पावइ उत्तमं सोक्खं ॥

भावार्थ–ए वारह अनुप्रेक्षा जिन आगमके अनुसार ले प्रगटकरि कही हैं ऐसा वचनकरि यह जनाया है जो मैं

तैं कर्मकी निर्जरा होय है अर संवर होय है सो ए दोऊ ही मोक्षके कारण हैं सो जो मुनिव्रत लेयकरि बाह्य अभ्यंतर भेदकरि कह्या जो तप ताकौं निस विधानकरि आचरै है सो मुक्ति पावै है, तब ही कर्मका अभाव होय है. याहीतैं अविनाशी बाधा रहित आत्मीक सुखकी प्राप्ति होय है. ऐसें बारह प्रकारके तपके धारक तथा इस तपका फल पावैं ते साधु च्यारि प्रकारकरि कहे हैं. अनगार, यति, मुनि, ऋषि, तहां सामान्य साधु गृहवासके त्यागी मूलगुणनिके धारक ते अनगार हैं. बहुरि ध्यानमें तिष्ठैं श्रेणी मांडैं ते यति हैं. बहुरि जिनकौं अवधि मनःपर्ययज्ञान होय तथा केवलज्ञान होय ते मुनि हैं. बहुरि ऋद्धिधारी होय ते ऋषि हैं. तिनके च्यारि भेद. राजऋषि, ब्रह्मऋषि, देवऋषि, परमऋषि, तहां विक्रिया ऋद्धिवाले राजऋषि, अक्षीण महानस ऋद्धिवाले ब्रह्मऋषि, आकाशगामी देवऋषि, केवलज्ञानी परमऋषि हैं ऐसें जानना ॥ ४८६ ॥

आगें या ग्रंथका कर्त्ता स्वामिकार्त्तिकेयनामा मुनि हैं सो अपना कर्त्तव्यप्रगट करै हैं,—

जिणवयणभावणट्ठं सामिकुमारेण परमसद्धाए ।
रइया अणुपेक्खाओ चंचलमणरुंभणट्ठं च ॥४८७॥

भावार्थ-यह अनुप्रेक्षा नाम ग्रंथ है सो स्वामिकुमार जो स्वामिकार्त्तिकेय नामा मुनि तानैं रच्या है. गाथाका रचना करी है. इहां कुमार शब्दकरि ऐसा सूच्या है सो यह मुनि

जन्महीतैं ब्रह्मचारी हैं तातैं यह रची है, सो श्रद्धाकरि रची है. ऐसा नाहीं जो कथनमात्रकरि दिई हो इस विशेषणतैं अनुप्रेक्षातैं अति प्रीति सूचै है. बहुरि प्रयोजन कहै हैं कि,- जिन वचनकी भावनाकी अर्थ रच्या है. इस वचनतैं ऐसा जनाया है जो ख्याति लाभ पुजादिक लौकिकप्रयोजनके अर्थ नाहीं रच्या है. जिनवचनका ज्ञान श्रद्धान भया है ताकौं वारम्वार भावना स्पष्ट करना यातैं ज्ञानकी वृद्धि होय कषायनिका प्रलय होय ऐसा प्रयोजन जनाया है. बहुरि दूजा प्रयोजन चंचल मनकौं थांभनेके अर्थ रची है. इस विशेषणतैं ऐसा जानना जो मन चंचल है सो एकाग्र रहै नाहीं. ताकौं इस शास्त्रमें लगाइये तौ रागद्वेषके कारण जे विषय तिनिविषै न जाय. इस प्रयोजनके अर्थ यह अनुप्रेक्षा ग्रंथकी रचना करी है. सो भव्य जीवनिकौं इसका अभ्यास करना योग्य है. जातैं जिनवचनकी श्रद्धा होय, सम्यग्ज्ञानकी वधवारी होय. अर मन चंचल है सो इसके अभ्यासमें लगै अन्य विषयनिविषै न जाय ॥ ४८७ ॥

आगें अनुप्रेक्षाका माहात्य कहि भव्यनिकौं उपदेशरूप फलका वर्णन करै हैं,—

वारसअणुपेक्खाओ भणिया हु जिणागमाणुसारेण ।
जो पढइ सुणइ भावइ सो पावइ उत्तमं सोक्खं ॥

भावार्थ—ए वारह अनुप्रेक्षा जिन आगमके अनुसार प्रगटकरि कही हैं ऐसा वचनकरि यह जनाया है जो मैं

तैं कर्मकी निर्जरा होय है अर संवर होय है सो ए दोऊ ही मोक्षके कारण हैं सो जो मुनिव्रत लेयकरि बाह्य अभ्यंतर भेदकरि कह्या जो तप ताकौं तिस विधानकरि आचरै है सो मुक्ति पावै है, तब ही कर्मका अभाव होय है. याहीतैं अविनाशी बाधा रहित आत्मीक सुखकी प्राप्ति होय है. ऐसैं बारह प्रकारके तपके धारक तथा इस तपका फल पावैं ते साधु च्यारि प्रकारकरि कहे हैं. अनगार, यति, मुनि, ऋषि, तहां सामान्य साधु गृहवासके त्यागी मूलगुणनिके धारक ते अनगार हैं. बहुरि ध्यानमें तिष्ठै श्रेणी मांडैं ते यति हैं. बहुरि जिनकौं अवधि मनःपर्ययज्ञान होय तथा केवलज्ञान होय ते मुनि हैं. बहुरि ऋद्धिधारी होय ते ऋषि हैं. तिनके च्यारि भेद. राजऋषि, ब्रह्मऋषि, देवऋषि, परमऋषि, तहां विक्रिया ऋद्धिवाले राजऋषि, अक्षीण महानस ऋद्धिवाले ब्रह्मऋषि, आकाशगामी देवऋषि, केवलज्ञानी परमऋषि हैं ऐसैं जानना ॥ ४८६ ॥

आगै या ग्रंथका कर्त्ता श्रीस्वामिकार्त्तिकेयनामा मुनि हैं सो अपना कर्त्तव्यप्रगट करै हैं,—

जिणवयणभावणट्ठं सामिकुमारेण परमसद्धाए ।
रइया अणुवेक्खाओ चंचलमणरुंभणट्ठं च ॥४८७॥

भावार्थ-यह अनुप्रेक्षा नाम ग्रंथ है सो स्वामिकुमार जो स्वामिकार्त्तिकेय नामा मुनि तानैं रच्या है. गाथाका रचना करी है. तहां कुमार शब्दकरि ऐसा सूच्या है जो यह मुनि

जन्महीतैं ब्रह्मचारी हैं तानै यह रची है, सो श्रद्धाकरि रची है. ऐसा नाहीं जो कथनमात्रकरि दिई हो इस विशेषणतैं अनुप्रेक्षातैं अति प्रीति सूचै है. बहुरि प्रयोजन कहै हैं कि,- जिन वचनकी भावनाकी अर्थ रच्या है. इस वचनतैं ऐसा जनाया है जो ख्याति लाभ पूजादिक लौकिकप्रयोजनके अर्थ नाहीं रच्या है. जिनवचनका ज्ञान श्रद्धान भया है ताकौं वारम्बार भावना स्पष्ट करना यातैं ज्ञानकी वृद्धि होय कषायनिका प्रलय होय ऐसा प्रयोजन जनाया है. बहुरि दूजा प्रयोजन चंचल मनकौं थांभनेके अर्थ रची है. इस विशेषणतैं ऐसा जानना जो मन चंचल है सो एकाग्र रहै नाहीं. ताकौं इस शास्त्रमें लगाइये तौ रागद्वेषके कारण जे विषय तिनिविषै न जाय. इस प्रयोजनके अर्थ यह अनुप्रेक्षा ग्रंथकी रचना करी है. सो भव्य जीवनिकौं इसका अभ्यास करना योग्य है. जातैं जिनवचनकी श्रद्धा होय, सम्यग्ज्ञानकी वधवारी होय. अर मन चंचल है सो इसके अभ्यासमें लगै अन्य विषयनिविषै न जाय ॥ ४८७ ॥

आगें अनुप्रेक्षाका माहात्म्य कहि भव्यनिकौं उपदेशरूप फलका वर्णन करै हैं,—

बारसअणुपेक्खाओ भणिया हु जिणागमाणुसारेण ।
जो पढइ सुणइ भावइ सो पावइ उत्तमं सोक्खं ॥

भावार्थ-ए बारह अनुप्रेक्षा जिन आगमके अनुसार ले प्रगटकरि कही हैं ऐसा वचनकरि यह जनाया है जो मैं

च परमगुरु अरु जिनधर्म । जिनवानी भापै सब मर्म ॥
त्य चैत्यमंदिर पढि नाम । नमूं मानि नव देव सुधाम ११

दोहा ।

संवत्सर विक्रमतणूं, अष्टादशशत जानि ।
त्रेसठि सावण तीज वदि, पूरण भयो सुथानि ॥१२॥
जैनधर्म जयवंत जग, जाको मर्म सु पाय ।
वस्तु यथारथरूप लखि, ध्यावैं शिवपुर जाय ॥१३॥

इति श्रीस्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा जयचंदजीकृत
वचनिकासहित समाप्त ।